एस.सी.ई.आर.टी., बिहार
द्वारा विकसित

F11

दो वर्षीय सेवापूर्व डिप्लोमा इन एलिमेन्ट्री एजुकेशन

कला समेकित शिक्षा

भाग-1 (प्राथमिक स्तर)

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (एस.सी.ई.आर.टी.),
महेन्द्रू, पटना, बिहार

बिहार सरकार

एस.सी.ई.आर.टी., बिहार द्वारा विकसित

दो वर्षीय सेवापूर्व
डिप्लोमा इन एलिमेण्ट्री एजुकेशन

कला समेकित शिक्षा

F-11

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (एस.सी.ई.आर.टी.),
महेन्द्रू, पटना, बिहार–800006

तकनीकी सहायता: Implementation Support Agency, SCERT Bihar

प्रकाशक

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्
(एस.सी.ई.आर.टी.), महेन्द्रू, पटना, बिहार

एस.सी.ई.आर.टी., बिहार

विश्व बैंक सम्पोषित परियोजना के अन्तर्गत

डी.एल.एड. (फेस–टू–फेस) के साधनसेवियों एवं प्रशिक्षुओं हेतु

आमुख

मनुष्य में कला के प्रति आकर्षण एक सहज भाव है, जो विविध प्रकार से उसके जीवन में शामिल है। सामाजिक – सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी कला का अपना विशेष महत्व है। समकालीन विमर्श में कला को विद्यालयीय शिक्षा से भी जोडने पर बल दिया जा रहा है, क्योंकि शिक्षार्थियों के सृजनात्मक क्षमता के विकास में कला की अहम भूमिका है। कला न सिर्फ उनकी संवेदनाओं को झकझोरती है बल्कि अन्य विषयों के ज्ञान को प्राप्त करने तथा उन्हें समझने का बहुपरिप्रेक्षीय नजरिया भी सुझाती है। साथ–ही कला के माध्यम से शिक्षार्थीगण अपने विचार एवं भावनाओं को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करने के कई उपागमों से भी अवगत होते हैं। इस तरह विद्यालयी पाठ्यचर्या–पाठ्यक्रम के संदर्भ में कला के दो स्वरूप दिखते हैं। पहला – बच्चों के सह– शैक्षिक (को–स्कोलास्टिक) विकास के अहम पहलू के तौर पर, और दूसरा, शिक्षणशास्त्रीय उपागम के तौर पर। इसके लिए कला समेकित शिक्षण कें विविध प्रकारों के संदर्भ में प्रशिक्षुओं की अपनी तैयारी होनी चाहिए, जिसका भरपूर अवसर इस विषय पत्र में है। यहाँ कला समेकित शिक्षा की अवधारणा के साथ–साथ प्रशिक्षुओं को कला के दो प्रकार – दृश्य कला और प्रदर्शन कला से अवगत कराया जाएगा तथा इसे विद्यालय में किस प्रकार उपयोग में लाया जाना है उसकी समझ बनाई जाएगी।

हमारे बिहार के विद्यालयों में ऐसे शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं की ज़रूरत है जिसके लिए शिक्षण वृत्ति एक स्वाभाविक प्रतिबद्धता हो और जो शिक्षण को एक आनन्ददायी कार्य मानते हों। उन्हें पढ़ाये जाने वाले विषय व पढ़ाने के कौशल तो अच्छी तरह से आते ही हों, साथ–ही वह उन बच्चों को भी बेहतर तरीके से जानते व समझते हों जिन्हें वे पढ़ा रहे हैं। अतः विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि, खासकर उपेक्षित वर्ग से आनेवाले बच्चों के प्रति विद्यालय के शिक्षकों में सजगता एवं संवेदनशीलता होना सबसे जरूरी है, जिसके बिना उन बच्चों को विद्यालयी शिक्षा की प्रक्रिया में शामिल कर पाना असम्भव है। साथ–ही, एक शिक्षक या शिक्षिका में लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति लगाव उसे सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को रोचक व सहज बनाने में सहायक होता है। बिहार जैसे बहुलतावादी समाज में बेहतर शिक्षा तभी संभव हो सकती है जबकि हम 'समता' व 'बहुलता' की समझ को अपनी शिक्षा प्रक्रिया के केन्द्र में रखें।

बीसवीं सदी के आख़िरी दशक और इस सदी के शुरुआत में पाठ्यक्रम का बदलाव एक गहरा सामाजिक और राजनैतिक सवाल बनकर उभरा है। जब पाठ्यक्रम में बदलाव 'तेज़ी' से हो रहा हो तो 'शिक्षक' में इस संभावना को खोजा जाना लाज़मी है कि वह नयी अकादमिक स्थितियों से सामंजस्य कर सके और ज़रूरत हो तो उनसे मुक़ाबला भी कर सके। उदाहरण के तौर पर, एक संकुचित अवधारणा यह है कि शिक्षक पाठ्यक्रम की बातों को गन्तव्य (बच्चों) तक पहुँचाने वाला एक एजेन्ट मात्र है जो बच्चों को पाठ्य–पुस्तकों में लिखी बातों को रटवायेगा व बच्चे उसे परीक्षा में पुनरोत्पादित करेंगे। शिक्षक की इस रूढ़ीगत भूमिका को तत्काल बदले जाने की ज़रूरत है। नवीन पाठ्यचर्या पर आधारित इस विषयपत्र के माध्यम से यह अपेक्षा है कि प्रशिक्षित शिक्षक अपनी नयी भूमिका में बच्चों को उन स्थितियों को आलोचनात्मक तरीके से समझने में मदद करेंगे जिनमें वे रहते हैं। बच्चें विभिन्न माध्यमों (पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक, शिक्षक, परिवेश इत्यादि) से दिये जाने वाले 'ज्ञान' को मात्र स्वीकार न करें बल्कि उनपर प्रश्नचिह्न भी लगा सकें।

ऐसी आदर्श शैक्षिक स्थिति का निर्माण एक सक्षम शिक्षक या शिक्षिका के माध्यम से ही हो सकता है, जिसकी तैयारी की आशा इस विषयपत्र के विभिन्न इकाइयों के विषयवस्तु के माध्यम से की गई है। प्रयास यह किया गया है कि प्रस्तुत पठन सामग्री, सरल, तथ्यात्मक रूप से सटीक, विषयवस्तु में निरन्तरता बनाए हुए हो। यथास्थान गतिविधियों के माध्यम से प्रशिक्षुओं को सक्रिय रूप से सहभागिता निभाने का अवसर दिया गया। आशा है आप इस पाठ्यसामग्री के माध्यम से शिक्षा की समकालीन आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील हो सकेंगे।

अंत में, यह बात स्पष्ट करना जरूरी है कि इस पठन सामग्री को आप अंतिम न मानें। इसके साथ–साथ, प्रारम्भिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों और विभिन्न प्रकार की आई.सी.टी. सामग्रियों को भी अपने अध्ययन का हिस्सा अनिवार्य रूप से बनाएं, तभी आपकी समझ में खुलापन और जिज्ञासा बनी रह पाएगी, अन्यथा आपका विद्यालयीय शिक्षण का कार्य नीरस हो जाएगा। इस पठन सामग्री को और संवर्द्धित करने के लिए आपके सुझाव सदैव आमंत्रित हैं।

निदेशक
राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, बिहार, पटना

पाठ्य पुस्तक विकास समूह

पत्र–F-11

(कला समेकित शिक्षा)

दिशाबोध	श्री दीपक कुमार सिंह, भा.प्र.से., अपर मुख्य सचिव, शिक्षा विभाग, बिहार, पटना श्री सज्जन राजसेकर, भा.प्र.से., निदेशक, राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, महेन्द्रू, पटना डॉ० एस.पी.सिन्हा, सलाहकार, शिक्षा विभाग, बिहार, पटना
समन्वयक	डॉ० रीता राय, विभाग प्रभारी, अध्यापक शिक्षा विभाग, एस.सी.ई.आर.टी. बिहार, पटना
लेखक समूह	श्री कात्यायन कुमार त्रिपाठी, प्राथमिक विद्यालय नया गाँव, गुलजारबाग, पटना
	श्री संतोष कुमार राणा, व्याख्याता, डायट रामबाग, मुजफ्फरपुर
	श्री अजीत कुमार, व्याख्याता, डायट डुमरांव, बक्सर
	श्री गोपाल प्रसाद, प्रधानाध्यापक, एम.एस.कॉटी कसाव, मुजफ्फरपुर
समीक्षक	श्री कृष्ण मोहन, व्याख्याता, सी.टी.ई तुर्की, मुजफ्फरपुर
	श्रीमती अनीता कुमारी, व्याख्याता, डायट, दिग्घी, वैशाली

पाठ–सूची

इकाई	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1	कला समेकित शिक्षा की समझ	9-33
2	दृश्य कला	34-65
3	प्रदर्शन कला	66-107
4	कला अनुभव का शिक्षण में सृजनात्मक प्रयोग	108-130
5	कला समेकित शिक्षा में आकलन एवं मूल्यांकन	131-146
6	संदर्भ सूची	147

इकाई 1

कला एवं कला समेकित शिक्षा की समझ

परिचय

कला अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। साथ–ही यह मनुष्य में छिपी हुई सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति का अवसर भी प्रदान करती है। प्रायः सभी लोगों में कला के प्रति आकर्षण सहज होता है, जो विविध प्रकार से उनके जीवन में दृष्टिगोचर होता है। सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी कला का अपना विशेष महत्व है। हम पाते हैं कि समाज में विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से कला की शिक्षा निरन्तर चलती रहती है। संधारित इतिहास जैसे भित्ति चित्रों, शिलालेखों, सिक्कों, मोहरों, पुस्तकों तथा अन्य साक्ष्यों को आधार बनाते हुए यदि हम विचार करें, तो पायेंगे कि मानव सभ्यता के विकास, सम्प्रेषण, सीखने और ज्ञाननिर्माण की प्रक्रिया में कला का विशेष योगदान रहा है। मनुष्य प्राचीन काल से ही अपने विचारों, भावों एवं कल्पनाओं को अभिव्यक्त व परिलक्षित करने के लिए जाने–अनजाने कला के किसी न किसी स्वरुप का उपयोग करता आया है। यहां, जाने–अनजाने शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है क्योंकि कला के किसी भी क्षेत्र में निपुणता हासिल किये बिना भी मानव में कलाबोध सदैव विद्यमान रहा है। पीढ़ी–दर–पीढ़ी चली आ रही सभ्यता–संस्कृतियों के वाहक के रूप में कला की महत्वपूर्ण शैक्षिक भूमिका रही है। हालांकि, औपचारिक शिक्षा में कला अभी भी अपनी सर्वमान्य भूमिका बनाने के लिए संघर्षरत है। व्यक्तित्व व सौंदर्यबोध के विकास और प्रवृत्तियों व मूल्यों के निर्माण में कला का प्रत्यक्ष योगदान है, जिसका उपयोग विद्यालय की शैक्षिक प्रक्रियाओं को रोचक बनाने में कारगर होगा। कला और शिल्प की शिक्षा, शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व के विकास का उपयोगी जरिया हो सकता है। शिक्षाशास्त्रीय उद्देश्य से कला, शिल्प और संस्कृति का अनेक तरीके से उपयोग किया जा सकता है। संसाधन के रूप में, माध्यम के रूप में, कौशल के रूप में विकसित किए जा सकते हैं। कलाएँ जहाँ हमारे जीवन और अधिगम को समृद्ध बनाते हैं, वहीं इनका उपयोग शिक्षण–अधिगम प्रक्रियाओं को सरल, सुगम, आनन्ददायी और रोचक बनाने में भी किया जा सकता है।

एक लम्बे अर्से से कला को विद्यालयी शिक्षा से भी जोड़ने पर बल दिया जाता रहा है, क्योंकि शिक्षार्थियों के सृजनात्मक क्षमता के विकास में कला की अहम भूमिका है। कला न सिर्फ उनकी संवेदनाओं को झकझोरती है, बल्कि अन्य विषयों के ज्ञान को प्राप्त करने तथा उन्हें समझने का बहुपरिप्रेक्षीय नज़रिया भी सुझाती है। कला के माध्यम से शिक्षार्थीगण अपने विचार एवं भावनाओं को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करने के कई उपागमों से भी अवगत होते हैं। कला एक विषय के रूप में ही नहीं है, बल्कि रोचक शिक्षण प्रक्रिया के रूप में भी है। माध्यम के रूप में, सीखने की प्रक्रिया में कला समेकित शिक्षा कि भूमिका अति महत्वपूर्ण है। यह शिक्षार्थियों को अभिप्रेरित करने के साथ–साथ उनके संज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं मनोगत्यात्मक विकास को भी बड़े सहजता से आगे बढ़ाने का काम करती है। कला के सभी रूपों यथा दृश्य कला एवं प्रदर्शन कला को शिक्षण प्रक्रिया का माध्यम बनाना प्रभावी होता है। आड़ी–तिरछी रेखाएँ खींचना, फिर देखकर मुग्ध होना, कागज फाड़ना या हठात कुछ बना डालना, मिट्टी के लौंदें से खेलना, किसी की नकल करना, कुछ गाने की कोशिश करना या कुछ बनाना इत्यादि, बच्चों की रूचियों में सहज भाव से शामिल हैं। दृश्य कला की विभिन्न सामग्रियाँ अपने निर्माण की प्रक्रिया से लेकर उत्पाद की शक्ल ग्रहण करने तक सीखने के असीम अवसर उपलब्ध कराती हैं।

बचपन में हमारा लगाव कला एवं खेल सम्बन्धी गतिविधियों से अधिक होता है। बच्चे कला एवं खेल सम्बन्धी गतिविधियों में प्राकृतिक रूप से सम्मिलित हो जाते हैं और आनंद का अनुभव करते हैं। उसकी दुनिया अपने आप में एक निराली दुनिया होती है। अगर हम गौर करें तो बच्चों द्वारा किए जानेवाली कई कलात्मक गतिविधियों में सीखना अपने–आप शामिल होता है और सीखने की कई गतिविधियों में कला का समावेश स्वतः हो जाता है। ये बात विशेष रूप से जानने और समझने योग्य है कि ये प्रक्रियाएँ बच्चों को क्यों आनंदित करती हैं और बच्चे कैसे इनमें सहजता से शामिल हो जाते हैं। ये प्रक्रियाएं उसके विकास क्रम की यात्रा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उसे व्यक्तिगत, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक विकास के अवसर प्रदान करती हैं। एक आयु के बाद बच्चों में कला सम्बन्धी जुड़ाव कम होने लगता है, मगर ऐसे साक्ष्य हमारे पास मौजूद हैं कि अवसर प्राप्त होते ही पुनः कला सम्बन्धी गतिविधियों में हमारी अभिरूचि दिखने लगती है। वस्तुतः कला हमारे जीवन का अभिन्न हिस्सा है। अभिरूचि के अनुसार हमारी कलात्मक अभिव्यक्ति होती रहती है। शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में भी कला का समावेश प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दृष्टिगोचर होती है जैसे भाषा अधिगम में कविता की लयबद्ध प्रस्तुति, सौन्दर्यानुभूति, गणित में विभिन्न गणितीय अवधारणाएँ, प्रतिरूप, आकृतियाँ इत्यादि, पर्यावरण अध्ययन के परिवेश की विभिन्न वस्तुओं का उपयोग। अतः यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि कला सम्बन्धी अपने पूर्व अनुभवों का उपयोग कला शिक्षा तथा कला के माध्यम से शिक्षा हेतु सहजता से किया जाए।

> **"कलाकार कोई विशिष्ट व्यक्ति नहीं होता है मगर हर व्यक्ति एक विशिष्ट कलाकार होता है"।**
>
> *कला चिंतक आनन्द कुमारस्वामी*

कला शिक्षाः अवधारणा एंव महत्त्व

गुरू रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार **"एक शिक्षार्थी के प्रखर व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास में साहित्य, संगीत और कला सभी आवश्यक है"**।

स्वतन्त्रता के बाद अनेक शासकीय प्रपत्रों में विद्यार्थियों के सम्पूर्ण विकास के लिए कला शिक्षा को एक महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में देखने का प्रयास किया गया है। नई शिक्षा नीति–2020 में स्पष्ट उल्लेख है, 'सभी प्रकार की भारतीय कलाओं को शिक्षा के सभी स्तरों पर स्थापित किया जाए।' ऐसे में कला शिक्षा की अवधारणा एवं महत्व पर गंभीर चिंतन की आवश्यकता प्रतीत होती है।

कला शिक्षा की अवधारणा पर चर्चा करने से पहले इस सवाल पर विचार करना सार्थक है कि ''कला क्या है?'' हम अपने आस–पास कला के कई तत्वों को देखते हैं और कई बार तो स्वयं कला का इस्तेमाल अपने कई कार्यों में करते हैं। क्या उन अनुभवों के आधार पर हम कला की परिभाषा को गढ़ सकते हैं या कला को पूर्ण रूप से परिभाषित कर पाना हमारे दायरे में ही नहीं है। नंदलाल बसु ने अपने आलेख में कला से सम्बंधित इन सवालों का गहन विश्लेषण किया है, जिसकी चर्चा आगे की जा रही है।

ज्यादातर कलाकार यह मानेंगे कि कला को परिभाषित करना उचित नहीं है। कला को परिभाषित करना उसे सीमित करना होगा जो किसी कलाकार को स्वीकार्य नहीं होगा। दूसरी बात यह है कि हर इंसान कला की कुछ तो समझ रखता है और अपने जीवन में उसका व्यवहार करता है। इस कारण कला का तात्पर्य हर इंसान हर समाज व समय के लिए अलग–अलग होगा।

कला का संबंध कहीं–न–कहीं सुन्दरता, सौन्दर्यबोध व रचनात्मकता से है। शायद प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में सौन्दर्य की खोज में रहता है और उसे अपने आकृतियों में उतारना चाहता है। लेकिन यहां एक पेंच है। मानव समाज अक्सर सुन्दरता का मापदण्ड निर्मित कर देता है और उसकी मदद से सौन्दर्य को आंकने का प्रयास करता है। लेकिन मनुष्य इस माप या परिभाषा से बंधना पसंद नहीं करता है और सतत सौन्दर्य के नए आयामों को खोजता रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि किसी बात को जिसे आज समाज कुरुप या भद्दा मानता है, वह प्रायः एक नए सौन्दर्यशास्त्र का आधार बन जाता है।

कला ऐंद्रिक होती है यानी कलात्मक चीज़ों को हम अपने इन्द्रियों से अनुभव करते हैं अर्थात अपने इन्द्रियों से देख, सुन, छू, सूंघ, और चख भी सकते हैं। कला कल्पना या सोचने के साथ–साथ ठोस निर्माण भी है। रंग, आकार, टेक्स्चर, आवाज़, स्वाद व गंध के माध्यम से कला के नए–नए आयाम खुलते रहते हैं। इससे हमारी इंद्रियां परिष्कृत व बारीक बातों के प्रति संवेदनशील होती जाती हैं और हमें हर पल नए रंग, नई आकृतियाँ आदि दिखने लगती हैं।

कला को मनुष्य जीवन के बाकी अंगों से अलग नहीं किया जा सकता है। मनुष्य के उत्पादन कार्य, उसकी जीवन यापन की क्रियाओं, आत्म छवि, सामाजिक संघर्षों व विडंबनाओं को कला प्रतिबिम्बित करती है, प्रभावित करती है और प्रभावित होती है। लेकिन इन सबके बीच कोई यांत्रिक प्रभाव का रिश्ता नहीं है। यह रिश्ता बहुत सरल और सहज है।

अब यदि हम कला और शिक्षा के अंतर्सम्बंधों की बात करें तो सामान्यतः दो तथ्य उभरकर सामने आते हैः–

- कला में शिक्षा या कला शिक्षा (Education in Arts)
- शिक्षा में कला या कला समेकित शिक्षा (Arts in Education/ Art Integrated Education)

कला में शिक्षा

कला में शिक्षा से तात्पर्य है कला की किसी खास विधा के सिद्धान्त, प्रक्रिया, तकनीक एवं नियमों का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करना। शिक्षा में कला से तात्पर्य है कला शिक्षा के सभी पक्षों के साथ–साथ वे तमाम तथ्य जो किसी व्यक्ति की वृद्धि और विकास में योगदान देते हैं। वस्तुतः शिक्षा में कला ज्ञान के साथ–साथ कौशल, सम्बन्धित गुणों एवं अनुभवों का संश्लिष्ट रूप है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'कला शिक्षा' सीखने एवं अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया है, जबकि 'कला', सम्बन्धित रचनात्मक प्रक्रिया का उत्पाद है जो कि चित्रकला, नाटक, नृत्य, संगीत, गीत इत्यादि के रूप में प्रस्तुत होता है। कला शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसके अन्तर्गत वे सभी तथ्य शामिल होते हैं जो किसी न किसी प्रकार हमारी संवेदना और सौन्दर्यानुभूति को प्रभावित करते हैं। कला शिक्षा संवेदी अन्वेषणों को प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया है। यह विचार और सामग्रियों के साथ कार्य करते हुए अभिव्यक्ति के सृजन हेतु आधार प्रदान करती है, जिन्हें केवल शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है। यह गीत, संगीत या प्रदर्शन कलाओं के माध्यम से अशाब्दिक अभिव्यक्तियों को सामने लाने हेतु प्रोत्साहित करती है।

कला शिक्षा को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता हैः–

1. **दृश्य कला**ः– दृश्य कला से तात्पर्य कला की उन सभी विधाओं से है जिनकी कलात्मक अभिव्यक्ति को हम मूर्त रूप में देख सकते हैं जैसेः चित्रकलाएँ मूर्तिकला, डिजाईन, कोलाज, मुद्रण (print), मुखैटा, पुतली कला इत्यादि।
2. **प्रदर्शन कला**ः– प्रदर्शन कला से तात्पर्य कला की उन विधाओं से है जिसे देखा, सुना या प्रदर्शित किया जा सके। जैसेः संगीत, गायन, वादन, नाटक, नृत्य, पुतली, मूक अभिनय इत्यादि। इस कला की प्रमुख विशेषता इसकी क्षणभंगुरता है अर्थात् इस कला को हम जितनी बार अनुभव करना चाहते हैं उतनी बार इसकी रचना करनी होती है।

इसे निम्न फ़्लोचार्ट से भी समझा जा सकता है।

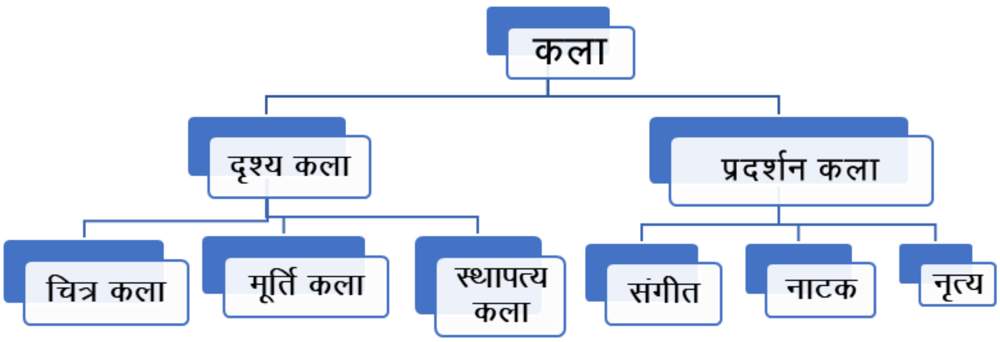

कला एवं शिल्प – कला एवं शिल्प दोनों ही सृजनात्मक गतिविधियां हैं। शिल्प से तात्पर्य उपयोगी और दैनिक जीवन में काम आने लायक चीजें बनाना है जैसे – मिट्टी के बर्तन बनाना, लकड़ी की सामग्री बनाना, वस्त्र बुनना आदि। कलाओं में भी ये कौशल शामिल हैं लेकिन तकनीकी कौशलों से आगे इसमें कल्पना की अनिवार्यता होती है। कला और शिल्प को निम्न फ्लो चार्ट से समझा जा सकता है।

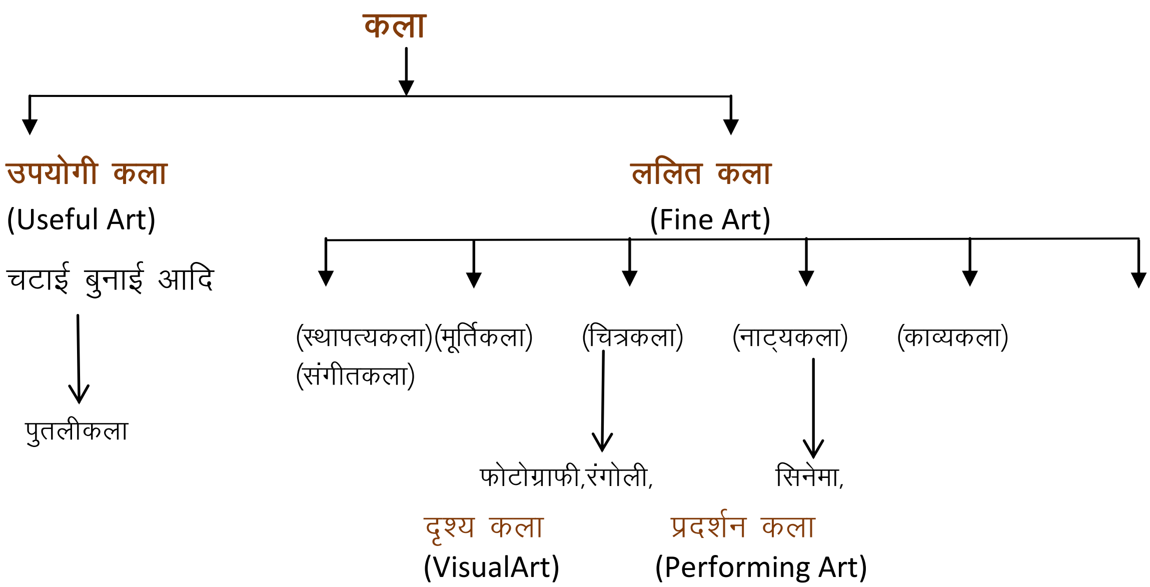

कला समेकित शिक्षाः अवधारणा एवं महत्व

कला समेकित शिक्षा, सीखने–सिखाने की वैसी प्रक्रिया है जिसमें कला को एक माध्यम के रूप में उपयोग किया जाता है। अर्थात कला की कई विद्याओं जैसे दृश्य कला के अन्तर्गत चित्रकला, मूर्तिकला कई प्रकार के शिल्प जैसे मुखौटे बनाना, विभिन्न सामग्रियों से कई कलात्मक वस्तुओं का निर्माण तथा प्रदर्शनकारी कलाओं में नाटक, नृत्य, गीत–संगीत इत्यादि को विषयों के साथ जोड़ कर बच्चों को आनन्ददायी वतावरण में विषयगत अवधारणाओं की समझ और अधिक स्पष्ट करना। कला समेकित शिक्षा में शिक्षक को कला की इतनी समझ होनी चाहिए जिससे वे कला की सराहना कर सके। कला समेकित शिक्षा के लिए शिक्षक को कला विशेषज्ञ होना आवश्यक नहीं हैं। परन्तु यह आवश्यक है कि उन्हें कला विधाओं की इतनी समझ होनी चाहिए, जिसका समावेशन वे समझदारी से विभिन्न विषयों में करा सकें। कला समेकित शिक्षण तकनीक में बच्चों को अपनी अभिव्यक्ति की पूरी स्वतंत्रता होती है। इसके लिए आवश्यक है कि एक आनन्ददायी वातावरण का निर्माण हो और यह तभी संभव है जब बच्चा विद्यालय को अपनी मनपसंद जगह मानने लगे। इसके लिए यह आवश्यक है कि विद्यालय की सम्पूर्ण गतिविधियों में बच्चा स्वतंत्र रूप से अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सके। इस प्रक्रिया में शिक्षक को एक सशक्त योजना बनानी चाहिए, जिसमें यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि विद्यालय एक कला विद्यालय में न बदल जाए अपितु यह एक ऐसी जगह में तब्दील हो जाए जहाँ प्रवेश करते हीं बच्चा आनन्द से भर कर स्वतः सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में संलग्न हो जाए। हमें चाहिए कि विद्यालय में चेतना–सत्र से छुट्टी की अवधि तक प्रतिदिन एक नवाचारी कला गतिविधियों के लिए योजना तैयार रखें जिसमें भागीदारी के लिए बच्चे उत्साहपूर्वक प्रतीक्षारत रहें। जैसे – चेतना सत्र में बच्चों को नये–नये तरीके से खड़ा होना या बैठना, नई प्रार्थना, गीत–संगीत, लघु नाट्यइत्यादि का समावेश करना, कई अन्य गतिविधियों का समावेशन करना, खेल एवं कला की घंटी का सार्थक एवं कलात्मक उपयोग करना, प्रतिदिन विद्यालयीयचर्या का समापन एक लघु प्रार्थना, गीत आदि से करना। इस संपूर्ण प्रक्रिया में संवेदनशील नवाचार करने के असीम गुंजाईश मौजूद है। विद्यालय परिसर को सुरूचिपूर्ण तरीके से सजाने के लिए भी उन्हें प्रेरित किया जा सकता है।

- **समकालीन क्षेत्रीय कलाओं, कलाकारों एवं कारीगरों से परिचयः**

हमारे देश में व्यापक भौगोलिक विस्तार के साथ साथ विविध क्षेत्रीय संस्कृतियों का भी अद्भूत विस्तार मिलता है। इन क्षेत्रीय संस्कृतियों में पारम्परिक कलाओं एवं शिल्प का पोषण सदियों से चला आ रहा है जिसमें विभिन्न पारम्परिक तकनीकों, प्रौद्योगिकीयों, तरह–तरह की क्षेत्रीय सामग्रियों इत्यादि का विशेष प्रयोग होता है। प्रत्येक क्षेत्र की कलाओं की एक विशिष्ट शैली होती है जिनमें अपने क्षेत्रीय भाषाओं, परंपराओं, रीतियों, कहानियों, श्रुतियों, इत्यादि की झलक होती है। क्षेत्रीय कलाएं अपने क्षेत्र विशेष के इतिहास, भूगोल व अर्थशास्त्र को भी दर्शाती हैं और लोगों को अपने समुदाय की पृष्ठभूमि, रीति–रिवाजों व परंपराओं से जोड़ती है। बिहार में लोक कला की समृद्ध परंपरा रही है। मौर्य तथा गुप्त शासन में बिहार प्रमुख प्रशासनिक केन्द्र था, इसके अतिरिक्त बौद्ध, जैन, सिख इत्यादि धर्मों का प्रसिद्ध स्थल भी रहा है। अतः स्वाभाविक है सांस्कृतिक विकास के साथ–साथ लोक कला का भी चहुँमुखी विकास बिहार में होता रहा है। बिहार लोक कला के विविध रूपों में से कुछ के विषय में आगे चर्चा की गई है।

लोक चित्रकलाः चित्रकला मनुष्य के भावनाओं को अभिव्यक्त करने का प्रभावी माध्यम है। लिपि का प्रथम रूप हमें चित्रकला से ही प्राप्त हुआ। बिहार में चित्रकला की जड़ें काफी गहरी हैं।

चित्र–क *मधुबनी चित्रकला*

चित्र–ख *जादोपटिया चित्रकला*

मधुबनी या मिथिला चित्रकलाः मिथिला चित्रकला की प्रसिद्धी आज पूरे विश्व में है। यह कला मधुबनी, दरभंगा, सहरसा और पूर्णिया जिले की प्रमुख लोक कला है। इसे प्राकृतिक रंगों द्वारा चित्रित किया जाता है। दीये की स्याही से काला रंग, गेरूये से लाल तथा नील द्वारा ब्लू, हल्दी से पीला और सेम के बीज से अन्य रंगों को तैयार किया जाता हैं। काले और लाल रंग से स्पष्ट रेखायें खींची जाती है तथा आड़ी–तिरछी रेखाओं द्वारा उसे भरा जाता है, जिसे कचनी और भरनी कहा जाता है। इसमें गहरे और चटकीले रंगों का प्रयोग किया जाता है।

इसके प्रमुख कलाकार

सीतादेवी – जितवारपुर गांव की मधुबनी पेंटिंग को अधिकारिक पहचान तब मिली जब 1969 में सीता देवी को बिहार सरकार ने मधुबनी पेंटिंग के लिए सम्मानित किया। इन्हें

1984 में मधुबनी पेंटिंग के लिए पद्मश्री से भी सम्मानित किया गया। वर्ष 2006 में इन्हें बिहार और शिल्प गुरु सम्मान से भी सम्मानित किया गया।

गंगा देवी – मधुबनी चित्रकला के प्रमुख कलाकार थी। भारत के बाहर मधुबनी चित्रकला को लोकप्रिय बनाने में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। वर्ष 1928 में इनका जन्म हुआ। मिथिला के पारंपरिक पेंटिंग शिल्प से इतर कच्छनी (रेखा चित्र) शैली का निर्माण किया। अमेरिका के मास्को होटल में अमेरिकी लोकजीवन के उत्सव और राइड इन रोलर कोस्टर आदि कई उत्सव में इनके चित्र प्रदर्शित की गई। इन्हें वर्ष 1984 में भारत के सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार पद्मश्री से सम्मानित किया गया।

महासुंदरी देवी – मिथिला कला के चित्रकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। मुश्किल से साक्षर महासुंदरी देवी ने अपनी चाची से मधुबनी कला को चित्रित करना शुरू किया। 1961 में उन्होंने उस समय की प्रचलित घूंघट प्रथा को छोड़ दिया और कलाकार के रूप में अपनी पहचान बनाई। मिथिला हस्तशिल्प कलाकार औद्योगिकी सहयोग समिति नामक एक सहकारी समिति की स्थापना की जिसने हस्तशिल्प और कलाकारों के विकास का समर्थन किया। इनके द्वारा चित्रित पेंटिंग कला की किंवदंती मानी जाती है। मिथिला पेंटिंग के अलावा महासुंदरी देवी मिट्टी, पेपर मेसी, सुजनी और सिक्की कला में अपनी विशेषज्ञता के लिए जानी जाती है। वर्ष 1982 में इन्हें राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी से राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। वर्ष 1995 में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा तुलसी सम्मान तथा वर्ष 2011 में इन्हें भारत सरकार से पद्मश्री पुरस्कार मिला।

जादोपटिया चित्रकलाः बिहार की प्रमुख लोक चित्रकला है। इस शैली के चित्र कपड़े या कागज के टुकड़े पर चित्रित किए जाते हैं, जिसमें मुख्यतः भूरा, हरा, पीला और काला रंग प्रयुक्त होता है। इसमें भी प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता है। यह कला संथालों द्वारा पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होती रही है। अंग प्रदेश की यह प्रसिद्ध चित्रकला रही है।

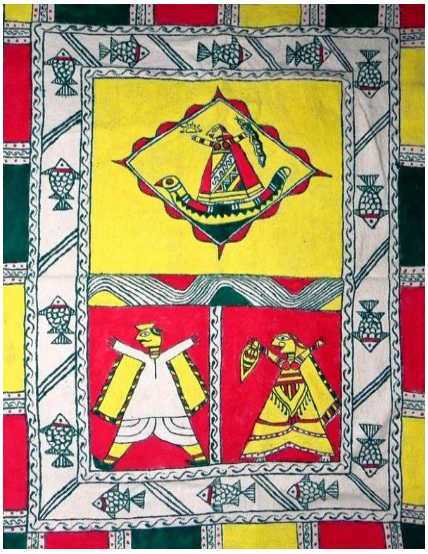

चित्र– *मंजूषा चित्रकला*

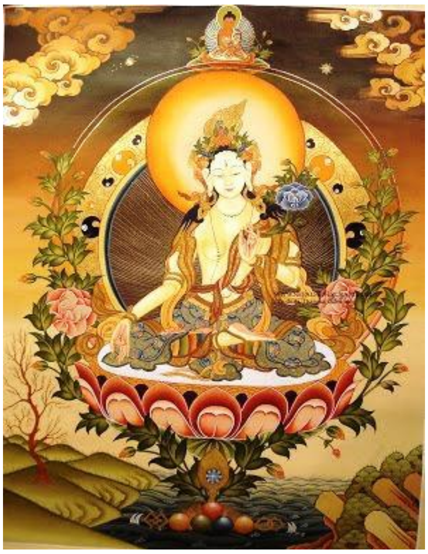

चित्र– *थंका चित्रकला*

थंका चित्रकलाः मूलतः तिब्बती शैली का बिहारी संस्करण है। इस शैली के चित्र बौद्ध धर्म एवं संत तथा जातक कथाओं के कथानक पर आधारित हैं।

मंजूषा चित्रकलाः बिहार की प्रमुख चित्रकला शैली है। इस शैली में कागज के ऊपर प्राकृतिक रंगों से चित्र बनाए जाते हैं। लाल, पीला, नीला तथा हरे रंगों का प्रयोग अधिक होता है। इस शैली में जानवरों एवं देवी–देवताओं के चित्र ज्यादा बनाएं जाते हैं। यह शैली अंग प्रदेश और मिथिला में प्रसिद्ध है।

इसके प्रमुख कलाकार

चक्रवर्ती देवी – इस लोक कला की वरिष्ठ चित्रकार मानी जाती हैं। इनका परिवार भी केवल इस लोक कला पर आधारित पारंपरिक मंजूषा बनाने का ही काम कर रहा है।

उलूपी झा – ये मूल रूप से नवगछिया की रहने वाली हैं। इन्होने भागलपुर की लुप्त होती मंजूषा कला को राष्ट्रीय पहचान दिलवाई है। मंजूषा कला को विश्व की प्रथम कथा आधारित चित्रकला माना जाता है। इसे स्नेक कला, अंगिका कला, भागलपुर कला, अंग कला के नाम से जाना जाता है। यह बिहुला विषहरी की धार्मिक गाथा पर आधारित है।

पटना कलम या पटना शैलीः पटना कलम का विकास ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन काल में हुआ। इस शैली के चित्र अधिकतर कागज पर बनाए गए हैं। बहुत कम संख्या में हाथी–दाँत पर भी बनाए गए हैं। पटना कलम में हाथी दाँत, अबरख तथा नेपाल द्वारा निर्वातित बाँस से निर्मित कागज पर अनेक चित्र बने। इनमें गेरू (इण्डियन रेड), वानस्पतिक रंग, गुलाब के फूल से नीला, हर सिंगार के फूल से लाल रंग, हरताल से पीला, रामरज से पीली मिट्टी का रंग (एलो ओकर) हिंगूल से सिन्दूरी, सीप से सफेदी, कालिख से काला रंग, सोना चांदी के तबक भी व्यवहार करते थे। चित्र फलक पर रंगों को ठीक से चिपकाने के लिए या रंग को दीर्घायु करने के लिये रंग में बबूल का गोंद मिलाया जाता था। इनके अतिरिक्त कोहवर, अरिपन, तांत्रिक इत्यादि चित्रकला की प्रमुख शैलियाँ बिहार में प्रचलित हैं।

इसके महत्वपूर्ण कलाकार

ईश्वरी प्रसाद वर्मा– भारत के प्रसिद्ध चित्रकार ईश्वरी प्रसाद वर्मा पटना कलम शैली के अंतिम चित्रकार माने जाते हैं। उन्होंनें पटना सिटी में अपने नाना शिवलाल जी के यहां रहकर शिक्षा ग्रहण की। इसके बाद कोलकाता स्कूल में प्रोफेसर और फिर वहीं से वाइस प्रिंसिपल के पद से सेवानिवृत्त हुए। कागज और हाथी दांत के काम में हर प्रकार से दक्ष थे। 1949 ईस्वी में पटना में ही उनका स्वर्गवास हो गया।

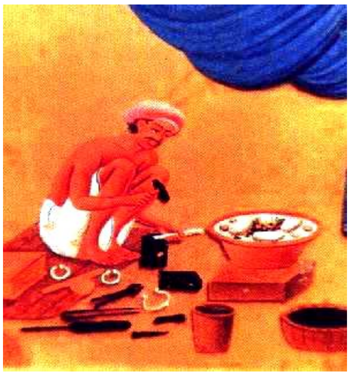

चित्र– पटना कलम या पटना शैली

हस्त–कला

हस्त शिल्प प्राचीन कला से ही अपने विशिष्ट सौंदर्य के कारण लोकप्रिय रहा। बिहार में मृण्मूर्ति, सिक्की, बुनाई–कढ़ाई, लाह शिल्प, गुड़िया शिल्प इत्यादि प्रमुख हस्त शिल्प हैं। मृणमूर्ति तथा खिलौने आदि का निर्माण मांगलिक अवसरों के लिए किया जाता है। सिक्की–कला में कुश का उपयोग कर उनसे रंग–बिरंगे दउरी या पौती (पात्र) का निर्माण किया जाता है। मांगलिक

अवसरों पर इन पात्रों का उपयोग शुभ माना जाता है। कढ़ाई बुनाई शिल्प में सुई और धागे का उपयोग प्रमुखता से होता है। महिलाओं के बीच यह शिल्प अति लोकप्रिय है। इसी प्रकार लाह शिल्प एवं गुड़िया शिल्प भी प्रदेश का प्रमुख हस्तशिल्प है।

सुजनी कलाः मिथिलांचल क्षेत्र की यह काफी लोकप्रिय कला हैं जिसमें सुई और धागें से मनोरम आकृतियों उकेरी जाती हैं इसमें रंगीन मोटे–धागे का उपयोग किया जाता है।

चित्र– *सुजनी शैली*

बुनाई–कढ़ाईः इस शिल्प में सुई और धागे का उपयोग कर मनमोहक कपड़े पर डिजाइन बनाई जाती है। इसमें भिन्न–भिन्न रंगों के धागे का उपयोग किया जाता है। यह शिल्प महिलाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय है।

लाह–शिल्पः लाह–शिल्प के प्रमुख केन्द्र के रूप में मुजफ्फरपुर जिला राष्ट्रीय स्तर पर ख्यात है। लाह से निर्मित कलात्मक चुड़ी–लहठी कई प्रकार के डिजाइन में मिलती है और अलग–अलग नामों से जानी जाती हैं।

सिक्की कलाः सिक्की कला में कुश का उपयोग कर रंग–बिरंगे दऊरी या पौती (पात्र) का निर्माण किया जाता है। सिक्की कला में जिस कुश का उपयोग किया जाता है उसे मनपसंद रंगों से रंगा जाता है। विशेष रूप से लाल हरा, पीला, नारंगी, नीले रंगों का प्रयोग कर बहुरंगी सजावट और बुनावट की जाती है।

लोक–नृत्यः बिहार के लोक नृत्यों की सूची काफी लम्बी है। इनमें निम्नांकित महत्त्वपूर्ण हैं –

1. **नारदी** – यह एक कीर्तनिया नाच है। इसमें परम्परागत साज मृदंग एवं झाल का प्रयोग किया जाता है। कीर्तनकार इस नृत्य के दौरान विभिन्न प्रकार के स्वांग किया करते हैं।
2. **गंगिया** – पतित पावनी गंगा मात्र एक नदी ही नहीं अपितु भारतीय संस्कृति की जननी है। गंगा बिहार की प्रमुख नदियों में से एक है। ऐसी मान्यता है कि इसके पवित्र जल से स्नान करने से मानव अपने समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। गंगा स्तुति महिलाओं के द्वारा नृत्य के माध्यम से की जाती है जिसे गंगिया नृत्य कहा जाता है।
3. **मांझी नृत्य** – नदियों में नाविकों द्वारा यह गीत नृत्य मुद्रा में गाया जाता है।
4. **घो–घो रानी** – छोटे–छोटे बच्चों का खेल, जिसे लोक शैली में घो–घो रानी कहा जाता है। इस नृत्य में एक लड़की बीच में रहती है तथा चारों तरफ से लड़कियाँ गोल घेरा बनाकर गीत गाती हैं और घूमती हैं।
5. **गोदनी** – इस लोक नृत्य में मछली बेचने वाली तथा ग्राहकों का स्वांग किया जाता है।
6. **लौढ़ियारी** – इसमें नायक जो एक किसान होता है, अपने बथान (गाय, भैंस बाँधने की जगह) पर भाव भंगिमाओं के साथ गाता और नाचता है।
7. **धन–कटनी** – फसल कट जाने के बाद किसान सपरिवार खुशियाँ मनाता हुआ गाता और नाचता है। जो धन कटनी नाच के रूप में जाना जाता है।

8. **बोलबै** – यह नृत्य पति के परदेश जाते समय के प्रसंग से जुड़ा है। यह अंगप्रदेश (भागलपुर) तथा इसके आस–पास के इलाकों में प्रचलित है।
9. **सामा–चकेवा** – यह नृत्य बिहार के मिथिलांचल का एक महत्त्वपूर्ण नृत्य है। इसमें महिलाएँ अपने भाईयों की रक्षा के लिए निवेदन करती हैं। इसे कार्तिक मास में किए जाने की परम्परा है।
10. **घंटो** – भारत देश की परम्परा है अतिथि देवो भव। परंतु जब घर में कुछ खाने का न हो तब अतिथि का आगमन दुःख का विषय होता है। इस नृत्य के माध्यम से ससुराल में रह रही गरीब बहन को जब भाई के आने की सूचना मिलती है तो वह काफी खुश हो जाती है, लेकिन खाने का अभाव उसे परेशान कर देता है। सत्कार की चिंता में विरह गीत गाया जाता है तथा बेचैनी भरा नृत्य भी किया जाता है।
11. **झिझिया** – यह मिथिला का बहुत ही लोकप्रिय लोक नृत्य है जिसे दुर्गापूजा के अवसर पर महिलाओं के द्वारा किया जाता है। इस नृत्य का संबंध तंत्र–मंत्र से भी बताया जाता है।
12. **इरनी–बिरनी** – यह लोक नृत्य अंगिका का एक प्रमुख नृत्य है। इस नृत्य की विषयवस्तु पति–पत्नी के बीच मनमुटाव है।
13. **डोमकच** – शादी–ब्याह के अवसर पर महिलाओं द्वारा समूह में स्वांग एवं नृत्य के रूप में किया जाने वाला यह एक लोकप्रिय नृत्य नाटिका है। जब बारात दुल्हन के घर शादी के लिए रवाना हो चुकी होती है और घर पर सिर्फ महिलाएँ ही रह जाती हैं तो महिलाओं द्वारा पुरुषों का वेश बनाकर नृत्य नाटिका किया जाता है।
14. **देवहर** – देवी–देवताओं का प्रतिनिधित्व करता हुआ अत्यन्त प्राचीन गीत एवं नृत्य है। बिहार और झारखंड में यह प्रचलित है। कहीं–कहीं इस नृत्य को भगता नाच के नाम से भी जाना जाता है।
15. **बगुलो** – यह उत्तर बिहार का अत्यन्त लोकप्रिय लोक नृत्य है। इसमें ससुराल से रूठकर जाने वाली एक स्त्री का राह चलते दूसरे स्त्री के साथ नोंक–झोंक का बड़ा ही सजीव चित्रण किया जाता है।
16. **कजरी** – यह सावन के महीने में गाया और खेला जाने वाला एक नृत्य नाटिका है। जो सावन के सुहावने मौसम को और भी सुहावना बना देता है।
17. **झरणी** – मुसलमानों द्वारा मुहर्रम के अवसर पर झूमते हुए गाया जाने वाला एक प्रकार का नृत्य और गीत है।
18. **जट–जटिन** – एक विशेष जाति जाट और उनकी पत्नी जटिन के द्वारा किया जाने वाला गीत और नृत्य है। इसे सामान्यतः इन्द्र भगवान को मनाने के लिए वर्षा ऋतु में किया जाता है।
19. **होरी** – बसंत के आगमन पर गाया जाने वाला गीत और नृत्य होली के दिन अपने चरम पर होता है।
20. **जोगीरा नाच** – होली के अवसर पर पुरुषों द्वारा महिलाओं का स्वांग रच के किया जाने वाला नृत्य।
21. **नटुआ नाच** – मिथिला में पुरुषों के द्वारा महिलाओं का नृत्य नटुआ नाच कहलाता है।
22. **पावड़िया नृत्य** – शिशु के जन्म होने पर किन्नरों के द्वारा किया जाने वाला बधाई गीत और नृत्य पावड़िया नृत्य कहलाता है।
23. **लौंडा नाच** – यह एक विशेष प्रकार का नृत्य है जिसमें पुरुष महिला का स्वांग करके नृत्य करते हैं। बिहार में इसकी प्राचीन परम्परा है।
24. **विद्यापत** – मिथला में मैथिल कोकिल विद्यापति के गीतों का नृत्य के रूप में प्रस्तुति विद्यापत कहलाता है।

25. **झमटा** – बिहार के पश्चिम चम्पारण में रहने वाली एक मात्र जनजाति समुदाय थारूओं का लोकनृत्य झमटा अपने आप में एक सांस्कृतिक विरासत है।

11 नंबर लेख के संदर्भ में चित्रः– झिझिया नृत्य

लोक नृत्य के प्रमुख नर्तक

विश्व बंधु

लोक नाट्यः

बिहार के प्रमुख लोक नाट्य में बिदेसिया, जट–जटिन, सामा चकेवा, कीर्तिनिया, डोमकच, गोंड नाच (हुड़क) इत्यादि प्रमुख हैं। बिदेसिया नाटक की लोकप्रियता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि भिखारी ठाकुर को भोजपुरी का शेक्सपीयर कहा जाने लगा। डोमकच शादी–विवाह के अवसर पर घर की महिलाओं द्वारा किया जाने वाला लोक नाटक है। रामलीला और रासलीला भी प्रदेश के प्रमुख लोक नाट्यों में है। मिथिलांचल में इस तरह की धार्मिक लोकनाट्य मंडलियाँ काफी प्रसिद्धि लिए हुए है।

प्रमुख समकालीन रंगकर्मी

भिखारी ठाकुर –छपरा के कुतुबपुर गाँव में भिखारी ठाकुर का जन्म 18 दिसंबर 1887 ईस्वी को हुआ। इनकी मृत्यु 10 जुलाई 1971 को हुई। भोजपुरी के समर्थ लोक गायक, लोक कलाकार, रंगकर्मी, लोक जागरण के संदेश वाहक, लोकगीत तथा भजन कीर्तन के अनन्य साधक थे। ये बहुआयामी प्रतिभा के धनी थे। भोजपुरी गीतों एवं नाटकों की रचना एवं अपने सामाजिक कार्यों के लिए ये प्रसिद्ध हैं। ये एक महान लोक कलाकार थे, जिन्हें भोजपुरी का शेक्सपियर कहा जाता है। ये एक–ही साथ कवि, गीतकार, नाटककार, निर्देशक, संगीतकार और अभिनेता थे। उन्होंने भोजपुरी को ही काव्य और नाटक की भाषा बनाया जो उनकी मातृभाषा थी। उनकी कृतियाँ गांव और ग्रामीण समाज के चारों ओर ही विकसित नहीं हुए बल्कि कोलकाता, पटना, बनारस और अन्य छोटे–बड़े शहरों में भी बहुत प्रसिद्ध हो गए जहाँ प्रवासी मजदूरों और गरीब अपनी आजीविका की खोज में गए। देश की सीमाओं के बाहर उन्होंने अपनी मंडली के साथ मॉरीशस, केन्या, सिंगापुर, नेपाल, ब्रिटिश गुयाना, सुरीनाम, युगांडा, मेडागास्कर 3जी और अन्य जगहों पर भी दौरा किया जहां भोजपुरी संस्कृति कम या ज्यादा समृद्ध है। उनकी प्रमुख कृतियां हैं:– विदेशिया, बेटी–बेचवा, बिरहा–बहार, नकल भांड अनटुआ के, शिव विवाह, राम लीला गान, चौवर्ण पदवी, नाई बहार, शंका समाधान इत्यादि जिसने भिखारी ठाकुर को भोजपुरी भाषा और संस्कृति का बड़ा नाटककारों–कलाकारों में से एक के रूप में स्थापित किया।

अन्य कलाकार जैसे–

रामचन्द्र मांझी

सतीश आनंद

परवेज अख्तर

संजय उपाध्याय

लोक संगीत

बिहार के कण–कण में लोक संगीत की खनक विद्यमान है। शादी–विवाह से शुरू ये गीत व्रत–त्योहारों में तो गूँजते ही हैं, विशेष ऋतु में विशेष गीत, रोपनी या कटनी के समय के गीत अर्थात् हर मौसम हर अवसर पर लोक संगीत की परंपरा यहाँ है। चैती, फाग, कजरी, सोहर, झूमर, निर्गुण, पूर्वी, जोगीरा, लोरीकायन इत्यादि प्रमुख लोकगीत हैं।

महेंद्र मिश्र–महेंद्र मिश्र पूर्वी गायन शैली के बेताज बादशाह हैं महेंद्र मिसिर को प्रेम की कोमलता और विरह की पीड़ा भरे उनके अनेक गीतों के लिए हमेशा याद किया जाएगा। बिहार में छपरा के पास मिश्रवलिया गांव में 16 मार्च 1886 को इनका जन्म हुआ। पढ़ने में मन नहीं लगता था। बचपन के खेलों में रूचि थी तथा भोजपुरी गीत और नाच नौटंकी में इनका मन लगता था। किशोरावस्था में वे छपरा के एक बड़े जमींदार और चर्चित संगीत प्रेमी सहाय के संपर्क में आए उनके यहां उनके पिता शिव शंकर मिश्र कामकाज के सिलसिले में आते जाते रहते थे। सहाय का प्रोत्साहन और उनके दरबार में जुटने वाले गायकों का साथ पाकर महेंद्र मिश्र की गायकी परवान चढ़ने लगी। उनके गीतों के बोल जन जन तक पहुंचने लगे। महेंद्र मिसिर एक बेहतरीन गायक और गीतों का उनका रचना संसार बहुत व्यापक था। उनकी भाषा में लचक प्रवाह और राग राग रागिनी का संगम देखते ही बनता था। संगीत गीत भजन निर्गुण और बारहमासा की रचना की और भोजपुरी गीतों की शक्ल में रामायण की रचना की कृतियों में भीष्म प्रतिज्ञा, कवितावली और अपूर्व रामायण प्रसिद्ध है। लोकमान्य से सीधा संवाद करने वाले उनके गीत आज भी लोगों की पहली पसंद है। उनके कुछ सर्वाधिक लोकप्रिय गीत है – अंगूरी में डसले पिया नगिनिया हो, आधी–आधी रतिया के कुंड के कोयलिया कोयलिया पटना से बैदा बुलाई द नजर आ गईली दोनों परानी पनिया के जहाज से पलटनिया बन के पिया भोजपुरी गीत भोजपुरी पर कोई विवाद नहीं है। इनके बगैर भोजपुरी गीतों का इतिहास लिखा नहीं जा सकता।

विंध्यवासिनी देवी – इनका जन्म बिहार के मुजफ्फरपुर में सन 1920 में जनवरी में हुआ। विंध्यवासिनी देवी ने लोकगीतों के क्षेत्र में काफी ऊंचाइयों को छुआ है। विंध्यवासिनी देवी की शादी महज 14 वर्ष की उम्र में हो गई। सन 1945 ईस्वी में जब पटना आई थी तब उनके पति सहदेश्वर चंद्र वर्मा ने उन्हें संगीत सिखाया। मैथिली भोजपुरी और मगही में पारंपरिक गीतों के लिए काफी चर्चित हुई हैं। विश्व स्तर पर बिहार की हर भाषा को उन्होंने एक नई पहचान दिलाई। ऑल इंडिया रेडियो पटना में लोक संगीत के निर्माता के रूप में उन्होंने काम किया। 1974 में भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया। 1921 में संगीत नाटक अकादमी, 1988 में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा अहिल्याबाई सम्मान से सम्मानित किया गया। 18 अप्रैल 2006 को पटना के कंकड़बाग में स्थित उनके आवास पर 86 वर्ष की आयु में इनका निधन हो गया। विंध्यवासिनी देवी ने बिहार के लोकगीतों को एक नई पहचान दी।

शारदा सिन्हा – शारदा सिन्हा भोजपुरी, मैथिली, बज्जिका, हिन्दी, मगही में लोक गीतों को अपनी आवाज से प्रसिद्ध करने वाली समर्थ लोक गायिका हैं। शारदा सिन्हा का जन्म 1 अक्टूबर 1952 ईस्वी में बिहार के सुपौल जिले के हुलास गांव में हुआ। पटना विश्वविद्यालय से स्नातक की पढ़ाई पूरी की। संगीत की ओर झुकाव बचपन से ही था। उनके पिता सुखदेव ठाकुर जो बिहार सरकार के शिक्षा विभाग के अधिकारी थे, घर पर ही संगीत शिक्षक द्वारा इन्हें संगीत सीखने की व्यवस्था की। वर्तमान में समस्तीपुर कॉलेज में संगीत की प्रधानाध्यापिका हैं। विद्यापति, भिखारी ठाकुर, महेंद्र मिश्र तथा अन्य लोक भाषा के कवियों के गीतों को अपनी आवाज दी। वर्ष 1921 में वर्ष 1991 में भारत सरकार द्वारा पद्मश्री एवं पद्म भूषण, बिहार कोकिला, देवी अहिल्या सम्मान मध्य प्रदेश सरकार द्वारा 2005–06 में दिया गया है। हिंदी सिनेमा मैंने

प्यार किया है तथा हम आपके हैं कौन में पार्श्व गायन किया है। लोक गायन हेतु इन्हें पद्मभूषण से अलंकृत किया गया है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि बिहार में लोक कला की समृद्ध परंपरा रही है।

भारतीय समकालीन चित्रकला

(आजादी के पहले और बाद की भारतीय चित्रकला):

समकालीन अर्थात् आज का। हमने आदिम और लोकचित्रकला भी देखी। सालों–साल अपनी विशिष्टताओं के साथ इनका निर्माण होता रहा है पर कला प्रवाह अपना मूलस्वरूप कायम रखकर दृश्यप्रवाह बदलता रहा है, जैसे अजंता के बुद्ध चित्र, मुगल लघुचित्र और राजपूत चित्र शैली। 17वीं शती में भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का आगमन हुआ। व्यापार उद्योग के लिए आयी हुई इस कंपनी ने धीरे–धीरे यहां के राजकाज और समाजकाज में भी अपना पैर पसारना शुरू किया। बाद में पूरे भारत पर ही कब्जा किया। भारत को अपनी स्वतंत्रता के लिए बड़ा संघर्ष करना पड़ा। 1947 में भारत आजाद हुआ। इस दौरान का इतिहास सभी को ज्ञात है। भारत की स्वतंत्रता के पूर्व और पश्चात की चित्रकला इसी इतिहास से संबंधित है। इतिहास का नाम सुनकर घबराइए मत। यह पूरा इतिहास चित्रमय है। 17वीं सदी के मध्य में चित्रकला से संबंधित और एक घटना घटी। मद्रास, कलकत्ता, मुंबई औरलाहौर में कला–शिक्षा देने वाली संस्थाएं ब्रिटिश मार्गदर्शन में शुरू हुईं। उसका परिणाम आपके सम्मुख है। भारत की पारंपरिक चित्रकला निर्मिति ठंडी हो गई। भारतीय चित्रकला ब्रिटिश पद्धति से दी जाने वाली शिक्षा लेने लगे। इसमें यथार्थवादी चित्रण कैसे करें, यथार्थ दृश्य में पास और दूर की चीजें कैसे दिखाएं, वस्तु पर दिखने वाले छाया–प्रकाश और मौसम का परिणाम कैसे दिखाएं, यह सब सिखाया जाता था। भारतीय चित्रकारों ने पहले कभी इसके बारे में सोचा नहीं था। भारतीय चित्रकार इन बाहरी चीजों की बजाय आत्मा, मन, जैसे विषय पर चित्र निर्मिति करते थे। यहां से हमारी चित्र निर्मिति में पूरा बदलाव आया।

भारत के प्रमुख चित्रकारों का संक्षिप्त परिचय

राजा रवि वर्मा–राजा रवि वर्मा भारत के प्रसिद्ध चित्रकारों में सबसे प्रमुख नाम है। इनका जन्म 29 अप्रील 1848 में केरल के किलिमानूर गाँव में हुआ। भारत में कला शिक्षण शुरू होने का यह समय था। राजा रवि वर्मा ने रावण–जटायु युद्ध , कृष्ण–बलराम, नल–दमयंती, शकुंतला, मत्स्यगंधा जैसे पौराणिक विषय पर चित्र बनाए। इसके लिए इस्तेमाल किया हुआ केनवास और तैलरंग माध्यम पाश्चात्य थे। उनके द्वारा बनाया हुआ केरल स्त्री का चित्र 'नायर सुंदरी' के नाम से बड़ा ही मशहूर है। पाश्चात्य देशों में अपने चित्र प्रदर्शित करने वाले ये पहले भारतीय चित्रकार थे। राजा रवि वर्मा का इस क्षेत्र में एक और महत्त्वपूर्ण योगदान है। वह है 'ओलियोग्राफ' की निर्मिति। ओलियोग्राफ मुद्रा–चित्रण का प्रकार है। वहां उन्होंने अपने चित्रों का मुद्रण करके उसकी प्रतियां निकालीं। कैनवास पर बना मूल चित्र खरीदना सामान्य लोगों के बस में नहीं था। पर उनका पसंदीदा चित्र उनके पास हो, इसलिए यह अच्छा उपाय था। भारत के आम लोगों के घरों में राजा रवि वर्मा के चित्र पहुंचने का यही कारण था।

अवनीन्द्रनाथ टैगोर – अपने देश में बनने वाली वस्तुओं का ही विचार करना है यह विचार 'स्वदेशी' आंदोलन के माध्यम से सामने आया। राष्ट्राभिमान जगाने का प्रयास शुरू हुआ। 'स्वेदशी' आंदोलन ने भारत में इतिहास रचा। ऐसा ही एक पूरक आंदोलन

बंगाल में शुरू हुआ, जिससे 'बंगाल स्कूल' या 'बंगाल शैली' कहा गया। अवनीन्द्रनाथ टैगोर इस आंदोलन के उद्‌गाता थे। यह सर्वपरिचित रवीन्द्रनाथ टैगोर के भतीजे थे। अवनीन्द्रनाथ खुद एक चित्रकला शिक्षक थे। 'कलकत्ता स्कूल ऑफ आर्ट' और शांति निकेतन के 'कलाभवन' में उन्होंने विद्यादान का कार्य किया। नंदलाल बोस, असित कुमार हलधर, के. व्यंकटप्पा, क्षितेंद्रनाथ मजूमदार जैसे कलाकारों की एक पीढ़ी का उन्होंने निर्माण किया। अवनीन्द्रनाथ का शिक्षक के रूप में योगदान महत्त्वपूर्ण है ही, लेकिन वे एक उत्तम चित्रकार भी थे। 'भारतमाता' उनकी शैली का उत्तम उदाहरण है। अवनीन्द्रनाथ के चित्रविषय अरबीयन नाईट्स, उमर खयाम, साहित्य और भारतीय पुराण–कथाओं पर आधारित हैं।

रवीन्द्रनाथ टैगोर – रवीन्द्रनाथ टैगोर का नाम अधिकतर लोगों को साहित्यकार के रूप में मालूम है। शांति निकेतन और रवीन्द्रनाथ टैगोर का एक–दूसरे से अटूट रिश्ता है। इतिहास की किताबों में रवीन्द्रनाथ चित्रकार थे, ऐसा पढ़ने को मिलता है। लिखाई के कोरे कागज, स्याही, लेखनी यही उनके चित्र के माध्यम थे। उसी से लिखना, उसी से चित्र बनाना और रंग भरना भी उसी से। इन चित्रों के विषय अधिकतर मन के काल्पनिक आकार, आसपास की औरतें, बच्चों के दुखी चेहरे होते थे। रवीन्द्रनाथ का संवेदनशील मन दुखी मन की ओर खिंच जाता और उनके चित्रों में वह व्यक्त होता था। वे कहते थे, 'मैं निर्णय लेकर चित्र नहीं बनाता, चित्र बनाते–बनाते प्रतिमाएं आकार लेती हैं'।

अमृता शेरगिल – **अमृता शेरगिल** का जन्म यूरोप में हुआ। उनके पिता सिख और माता हंगेरियन थीं। उनकी पढ़ाई यूरोप में हुई और उन्होंने कला शिक्षा का 'मक्का' समझे जाने वाले पेरिस के आर्ट स्कूल से कला की शिक्षा प्राप्त की। स्वाभाविक तौर पर उनके कार्य में यूरोपीय संस्कृति के स्फूर्त और स्वतंत्र विचार दिखते थे। 1934 में वे यूरोप से भारत लौटीं और भारतीय संस्कृति की खोज में पूरे भारत में घूमीं। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के विचारों को समझकर उन्होंने उससे एक कदम आगे जाने का प्रयास किया। अमृता शेरगिल ने रवि वर्मा की तरह कैनवास और तैलरंगों का इस्तेमाल किया। इसकी वजह यह थी कि वे अपनी भावनाएं इस माध्यम में अधिक अच्छी तरह से व्यक्त कर सकती थीं। लेकिन उनके चित्र विषय ग्रामीण जनजीवन से संबंधित रहे। उनके चित्र देखने पर समझ में आता है कि स्त्री को उन्होंने केवल सुडौल, सुंदर, आकर्षक नहीं दिखाया है। उन्होंने स्त्री के अंतर्मन तक पहुंचने की कोशिश की है। ऐसी संवेदनशीलता का भाव उनके चित्र में दिखाई देता है।

नंदलाल बोस– इनका जन्म 3 दिसंबर 1882 में बिहार के मुंगेर जिले के तारापुर में एक मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ। इन्होंने 1905 से 1910 ईस्वी के बीच कोलकाता गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ आर्ट में अवनींद्रनाथ टैगोर से कला की शिक्षा ग्रहण की। इनकी प्रतिभा और मौलिक शैली को गगनेंद्रनाथ टैगोर, आनंद कुमार स्वामी और ओ.सी. गांगुली जैसे प्रख्यात कलाकारों और कला समीक्षकों ने भी माना। इन्होंने भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के आमंत्रण पर भारतीय संविधान की मूल प्रति को अपनी चित्रकारी से सजाया। कुल 22 चित्र भारतीय संविधान की मूल प्रति में बनाया गया। इनके चित्र ग्रामीण जीवन महिलाओं और पौराणिक कथाओं से संबंधित हैं। दांडी मार्च, संथाली कन्या, सती का देह त्याग इत्यादि इनके प्रसिद्ध चित्र हैं।

एम.एफ. हुसैन – प्रोगेसिव आर्टिस्ट ग्रुप स्वतंत्र भारत के कलाकारों का पहला संगठन था। इसमें से कई कलाकार देश विदेश में स्थापित हुए। गायतोंडे, सामंत, रायबा, हजरनीस ऐसे कुछ कलाकार इस संगठन में सहभागी हुए। इस ग्रुप के रजा, हुसैन, और गायतोंडे का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। विलक्षण बुद्धिमत्ता व कल्पना–शक्ति और बेजोड़ मेहनत के बल पर चित्रकार हुसैन का व्यक्तित्व बनता गया। बचपन से ही होर्डिंग के बड़े आकारों को रंगने की आदत की वजह से बड़ा चित्र बनाने का दबाव

उनके मन में कभी आया ही नहीं। शुरू के दिनों में उन्होंने खुद की मिट्टी से, बचपन की यादों से, आजू–बाजू के लोगों से प्रेरित होकर चित्रों का निर्माण किया। मदर टेरेसा, जमीन, सरस्वती, घोड़े जैसी उनकी विविध चित्र–शृंखलाएं प्रसिद्ध हैं। इसमें घोड़े की चित्र–श्रृंखलाएं अपनी रेखाओं और रंग–योजना के कारण काफी मशहूर हुईं।

उपेंद्र महारथी – इनका जन्म 1960 में उड़ीसा के पूरी जिले में हुआ था। ये 'कोलकाता स्कूल ऑफ आर्ट्स' में पढ़े और बिहार को अपनी कर्मभूमि बनाई। इनकी कला में कलिंग की संस्कृति, बौद्ध काल की झलक और भारतीय पुनर्जागरण आंदोलनों के नायकों से जुड़ा दर्शन है। उपेंद्र महारथी के कला संसार में कला और शिल्प के वह तमाम रूप शामिल हैं, जो हमारी समृद्ध परंपरा और लोक शैली की बारीकियों को दर्शाता है। इन्होंने मधुबनी की पारंपरिक चित्रकला के साथ–साथ साड़ी बुनने की एक नई तकनीक और कला विकसित की जो बावनबूटी के नाम से जानी जाती है। फरवरी 1981 में 73 वर्ष की उम्र में उनका निधन हुआ। बिहार के राजगृह (राजगीर) के मशहूर विश्व शांति स्तूप से लेकर जापान के गोटेम्बा पीस पगोड़ा की डिजाइनिंग उपेंद्र महारथी की देन है। बोधगया का मशहूर महाबोधि मंदिर, नालंदा का नव नालंदा महाविहार हो या वैशाली म्यूजियम तथा गया का गांधी मंडप, यह सभी उपेंद्र महारथी की देन है। अपनी शानदार पेंटिंग्स और कृतियों के माध्यम से भारत के गौरवशाली इतिहास और परंपराओं को इन्होंने जीवंत किया। यशोधरा की पीड़ा, समुद्रगुप्त के किस्से, शिव और पार्वती का सौंदर्य, मौर्य कला की चेतना, गौतम बुध का दर्शन, गांधी का दृष्टिकोण और बुद्ध से जोड़ने का काम उपेंद्र महारथी की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। उपेंद्र महारथी एक बेहतरीन चित्रकार और वास्तु शिल्पी थे। इनका कला संसार वृहद और व्यापक रहा है।

सुबोध गुप्ता – बिहार के खगौल निवासी और पटना कला महाविद्यालय से शिक्षा प्राप्त सुबोध गुप्ता ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाई है। शिल्पकार होने के साथ–साथ ये चित्रकारी, फोटोग्राफी और वीडियो पर भी काम करते रहे हैं। इनके द्वारा बनाई गई मूर्तियों में रोजाना इस्तेमाल होने वाली स्टील की वस्तुएं जैसे टिफिन बॉक्स, कड़ाही और अन्य बर्तनों का उपयोग है। बिहार के छोटे से कस्बे में जन्मे और पले बढ़े सुबोध गुप्ता आज चमकदार स्टेनलेस स्टील के बर्तनों से बनाए अपने अनोखे मूर्ति शिल्प और इंस्टॉलेशन से ग्लोबल ब्रांड बन गए हैं। लगभग विगत 25 वर्षों से कला कर्म से जुड़े सुबोध गुप्ता 1996 से लगातार इंस्टॉलेशन कला पर काम कर रहे हैं। इनकी पत्नी भारती खेर भी चित्रकार हैं। युवा चित्रकार और संस्थापन यानी इंस्टॉलेशन की कला में विश्वव्यापी ख्याति अर्जित कर चुके हैं सुबोध गुप्ता को अपनी मातृभाषा भोजपुरी से बेहद लगाव रहा है।

प्रोफेसर श्याम शर्मा – इनका जन्म 8 जनवरी 1941 को गोवर्धन, मथुरा, उत्तर प्रदेश में हुआ। सन् 1966 में पटना कला महाविद्यालय में छापा कला विभाग की स्थापना कर तीस वर्षों तक अध्यापन का कार्य करते हुए सन् 2000 में कुशलता पूर्वक अपने दायित्व का निर्वहन कर, प्राचार्य के पद से सेवा मुक्त हुए। अपने शिक्षण काल में उन्होंने अनेक कला विद्यार्थियों को छापा कला में प्रवीण किया, जो आज भारत और बिहार का गौरव राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बढ़ा रहे हैं। चित्रकला में छापा कला बहुत महंगा और श्रमसाध्य माध्यम है। इसमें चित्रों के ब्लॉक मशीन से बनाए जाते हैं। परंतु प्रयोगधर्मी छापाकार, श्याम शर्मा ने सर्वसाधारण कला विद्यार्थियों के लिए सुगम मिट्टी के ब्लॉक से बिना मशीन के सुगम छापा पद्धति का विकास किया। प्रोफेसर शर्मा के छापा चित्रों पर प्रसिद्ध अंतर्राष्ट्रीय अमेरिकन छापाकार कर्नाड एटकिन (प्रोफेसर, यूनिवर्सिटी आफ केलिफोर्निया डेविस) ने प्रशंसापूर्ण आलेख लिखा है। प्रोफेसर श्याम शर्मा स्थापित भारतीय छापा चित्रकार है। सन् 1988 में इनके छापा चित्र पर इन्हे राष्ट्रीय पुरस्कार 'राष्ट्रीय ललित कला अकादमी' से सम्मानित किया

गया। इसके अतिरिक्त इन्हें आठ अखिल भारतीय कला पुरस्कार भी मिल चुके हैं। वर्ष 2020 में उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया गया। इनकी प्रमुख प्रकाशित पुस्तक काष्ठ छापा कला, बिहार की कला और शिल्प, सौ साल में बिहार कला और कलाकार, गांधी समय का सच, अपनी माटी, पटना कलम आदि हैं। संप्रति कला सृजन कला लेखन, प्रदर्शन और समाज को कला से जोड़ने में सक्रिय हैं।

क्षेत्रीय कलाएं एवं शिल्प का कला समेकित शिक्षा में अनुप्रयोग

क्षेत्रीय कला एंव शिल्प का हमारे सामाजिक जीवन से गहरा जुडाव होता है। अपने गौरवशाली इतिहास, परंपरा एंव सांस्कृतिक विरासत को संजोये रखने में हमारी मदद करता है। क्षेत्रीय कला एंव शिल्प को पर्यावरण अध्ययन से सहजता से जोड सकते हैं क्योंकि इन कलाओं में उपयोग की जानेवाली सामग्रियाँ प्रकृति प्रदत्त हैं। सिक्की कला में बनाये गए डिजाईन एंव सुजनी कला में उकेरी गयी आकृतियों के माध्यम से ज्यामितिय समझ एंव पैटर्न की अवधारणा को स्पष्ट किया जा सकता है। क्षेत्रीय कला एंव शिल्प के माध्यम से गढ़ी गयी मूर्तिया एवं उकेरे गए चित्र हमारी भाषा और संस्कृति को मजबूती प्रदान करता है। इनमें बनाए गए चित्र हमारे रीति–रिवाज, लोक व्यवहार से संबंधित है जिनके उपर विभिन्न प्रकार के गीतों का निर्माण सामान्य लोगो द्वारा किया गया जो भाषा को एक लयात्मकता प्रदान करती है। इन कलाओं के माध्यम से हम भाषा गणित पर्यावरण के विभिन्न विषय वस्तुओं को आसानी से जोड़ सकते हैं। विद्यालय स्तर पर मिट्टी से वर्तन बनानेवाले कारीगर को बुलाकर, बर्तन बनाने वाली मिट्टी के निर्माण में जल और मिट्टी का अनुपात की स्पष्ट समझ दे सकते हैं। साथ–ही उनके द्वारा निर्मित मिट्टी के बर्तन से बडा–छोटा, लम्बाई, मोटाई, गहराई इत्यादि की समझ दे सकते हैं।

- ## 'कला शिक्षा' से 'कला समेकित शिक्षा' की ओरः अवधारणात्मक समझ

बाल कला की समझ

कला अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। कला के जरिए हम अपने अनुभव, विचार आदि प्रकट करते हैं, दूसरों से साझा करते हैं। बच्चों के संदर्भ में भी यह एक स्वाभाविक क्रिया है। वस्तुतः बच्चों की यह प्रवृति होती है कि जो कुछ उन्हें अनुभव होता है उसे तुरंत साझा करना चाहते है। साथ–ही उनमें कुछ भी न छिपाने का गुण भी उन्हें अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करता है। बच्चों द्वारा बनाए गए चित्र, अन्य कलात्मक कार्य के माध्यम से उनके आंतरिक विकास का दर्शन होता है तथा उनके गुणों का प्रत्यक्षण होता है। बच्चों में कला विकास में निरंतरता होती है। जिसकी अवस्थाएँ समय के साथ बदलती रहती हैं। सामान्यता बच्चों में कला अनुभव के विकास की चार अवस्थाएँ होती है। यद्यपि इन अवस्थाओं को विभाजित करने वाली कोई कठोर रेखा नहीं है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था, दूसरी से तीसरी, तीसरी से चौथी अवस्था में बच्चा कब प्रवेश करता है यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। वास्तव में यह सब बच्चों के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। बच्चों के कला विकास क्रम की मुख्य अवस्थाएँ निम्नवत हैं–

1. कीरम–कांटे अवस्थाः 4–5 साल से पहले
2. प्रतीक–काल अवस्थाः 4–5 से लेकर 8–9 साल तक
3. वास्तविक–परिचय काल अवस्थाः 8–9 साल से 12–13 साल तक
4. किशोर–अवस्था और उसके बादः 13–14 साल से आगे

कीरम–कांटे अवस्था : यह अवस्था बच्चों की शारीरिक हलचल और साधनों से परिचय की अवस्था है। बच्चा पेंसिल को पकड़ने की कोशिश करता है। कागज पर आड़ी–तिरछी लकीरें खींचता या घसीटता है। हाँलाकि उसके द्वारा खींची गई लकीरें किसी खास विषय से संबंधित नहीं होती है।

प्रतीक–काल अवस्था : पेंसिल पकड़ने, हाथ घुमाने या चलाने की क्षमता आने के बाद बच्चा वैसे चित्र या रचना करना शुरू करता है जिसमें आकार का संबंध होता है। वह जो भी अनुभव करता है उन्हें आकारों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। आकार का संबंध उनके द्वारा देखी गई वस्तुओं से होता है। यह अवस्था बच्चों के अनुभव को व्यक्त करती है। वह चीजों को जैसा जानता है, अनुभव करता है वैसा चित्र बनाता है न कि वस्तु जैसी दिखती है वैसा एक बच्चा इस अवस्था में कई चीजों से संबंधित प्रतीक बना लेता है। इस अवस्था के चित्र प्रतीक–प्रधान होते हैं। जैसे – बच्चा, आदमी के चेहरे के लिए एक गोला और उसके अंदर तीन–चार छोटे–छोटे गोले, कुछ लकीर दो आँख, नाक की लकीर, मुँह का गोला या लकीर, इसी तरह हर वस्तु के प्रतीक नए–नए अनुभवों के आधार पर उसके दिमाग में बनते और बदलते रहते हैं।

वास्तविक–परिचय काल अवस्था : बच्चों में अनुभव के साथ–साथ प्रतीकों की व्यवस्था भी बदलती जाती है। अनुभव का असर चीजों के प्रतीक पर पड़ता है। जो क्रमशः विकसित होता है, उसमें कुछ चीजें जुड़ जाती है या बदल जाती है, जैसे – पूर्व की अवस्था में आदमी के चेहरे के प्रतीक में इस अवस्था में नाक, कान, बाल इत्यादि भी जुड़ जाते है। यहाँ आकार के साथ–साथ तुलना भी होने लगती है। अतः बच्चा वास्तविकता के बारे में अधिक सचेत हो जाता है। इसलिए इस अवस्था की वास्तविक–परिचय–काल कहा जाता है। वस्तुतः इस अवस्था में बच्चा बहिर्मुखी होने लगता है। उसकी दुनिया बदलने लगती है। वह बाहर की दुनिया के साथ अपना संबंध समझने लगता है। उसकी आत्म–अनुभूति और अभिव्यक्ति का स्वरूप भी बदल जाता है। इस प्रकार बाह्य दुनिया की वास्तविकता से परिचय का अनुभव उसके विचारों नजरिये को वास्तविकता प्रधान बनाती है। अतः उसके चित्र और अन्यकृतियाँ भी वास्तविक होने लगती है। वास्तविक परिचय अवस्था बच्चे के सामाजीकरण और सामाजिक अंतःक्रिया से भी प्रभावित होती है। एक सामाजिक प्राणी के रूप में उसके अस्तित्व का भाव उसे स्वयं के साथ अपने समाज के लिए भी कुछ करने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार उसका यह पहलू जो के उसे दूसरों के लिए कुछ करता है, यानी वह काम जो वह दिखाने के लिए करता है, उसे बड़ों जैसा करने में मदद करता हैं इस कारण भी उसके चित्र एक उम्र आने पर वास्तविक होने लगते हैं।

किशोर अवस्था : किशोरावस्था बच्चों के लिए एक नया अनुभव होता है। उनमें शरीरिक और मानसिक बदलाव होते है। इन बदलावों का प्रभाव कला की अभिव्यक्ति पर भी दिखाई पड़ता है। वह एक चित्र बनाने जाता है, किंतु फिर उतना वास्तविक नहीं बनता जितना उसे दिखता है। उसकी आँखें वस्तु में और उसके चित्र में कोई फर्क नहीं चाहती लेकिन उसका हाथ हार मान जाता हैं उसकी हिम्मत टूट जाती है और कला की तरफ से उसका दिल हटने लगता हैं। यद्यपि यह अवस्था विकास की प्राकृतिक सीढ़ी है, लेकिन इस अवस्था में कला शिक्षकों या सुसाधकों द्वारा अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

बच्चों की संज्ञानात्मक क्षमता के विकास में कला समेकित शिक्षा की भूमिका

हम जानते है कि बच्चें स्वाभाविक तौर पर ग्रहणशील और संवेदनशील होते हैं। इस संदर्भ में उनके संज्ञानात्मक क्षमता की भी विशेष भूमिका होती है। जिस प्रकार भाषा से हमारा तात्पर्य केवल बोलना नहीं है, वैसे हीं कला से तात्पर्य सिर्फ अच्छा चित्र बनाना नहीं है। कला का अर्थ सिर्फ कलात्मक वस्तुओं का सृजन करना ही नहीं है अपितु

रोजमर्रा की वस्तुओं और घटनाओं का अवलोकन करना, उनमें कला का एहसास करना और उनकी सराहना करना भी शामिल है। हर शिक्षार्थी में कलात्मकता होती है, जो कहीं किसी प्रसंग पर मजेदार कविता का सृजन कर देते हैं तो कहीं अपनी कल्पनाशीलता से कबाड़ जैसी वस्तु से भी अनूठे कलात्मक वस्तुओं और खिलौने बना लेते हैं। शिक्षार्थी की सृजनशीलता एवं कलात्मकता का सही मूल्यांकन इसकी मौलिकता में ही होती है। एक की तुलना दूसरे की कला से नहीं की जा सकती है। हमारी जिम्मेवारी है कि शिक्षार्थियों को अपनी कलात्मक सोच को पहचानने, प्रदर्शित करने और निखारने का अवसर उपलब्ध कराएँ।

क्या आपको याद है आप बचपन में किस तरह के चित्र बनाते थे? जैसे–जैसे बड़े होते गये आपके चित्रांकन में किस तरह का बदलाव आया? बचपन में की गई चित्रकारी और उसमें उम्र के साथ अधिकतर बदलाव स्वाभाविक है। आइये चित्रकला को केन्द्र में रखते हुए कला के विकास को बाल विकास के संदर्भ में समझे। जब पियाजे अपनी अवस्था आधारित सिद्धांत पर कार्य कर रहे थे। उसी दौरान, जी. एच. लुकुए (फ्रांसीसी कला अध्येता) ने चित्रकला का अध्ययन कर इसके आधार पर बाल विकास को चरणबद्ध तरीके से समझने की कोशिश की।

आपने पाँच वर्ष से कम उम्र के बच्चों को जहाँ–तहाँ कलम, पेन्सिल, चॉक, रंग इत्यादि किसी भी चीज से घसीटे मारते देखा होगा। इस उम्र के बच्चों को अक्सर घर की दीवारों पर अपनी कला के नमूने बनाने पर खूब डाँट पड़ती है। इसे कुछ समाजों में 'सिक्रबल स्टेज' कहा जाता है। मन लगने वाली लकीरें खिचतें हुए बच्चें इन आकृतियों को नाम देते हैं। इस स्टेज को लुकुए 'आकस्मिक यथार्थवाद कहते हैं, क्योकि यहाँ अंजाने में घसीटों का बिम्ब उस चीज से मेल खाता है जिसका नाम बच्चे लेते हैं। ऐसा पहले से सोचा समझा नहीं होता। जैसा कि हम जानते है, इस उम्र के बच्चों का सुक्ष्म मनोगतिक क्रियाओं (fine moter skills) पर नियंत्रण अभी नहीं होता, इसलिए ''घसिटो'' की अहमियत समझनी चाहिए। यही अभ्यास का अवसर है जिससे बच्चे अन्य जरूरी कौशलो का भी विकास करते हैं।

अगली अवस्था में बच्चे चित्र बनाने के पहले यह बता पाते हैं कि वे क्या बनाना चाहते हैं। 4 से 9 वर्ष के उम्र के दौरान चलनेवाली इस अवस्था में बच्चे मानसिक संरचनाएँ बनाने लगते हैं, यानि, ठोस वस्तुओं व शब्दों की एक छवि बच्चों के दिमाग में बनने लगती है लेकिन उनका दृष्टिकोण स्वकेन्द्रित होता है जिसके कारण वे दूसरों के नजरिये से चीजों को नहीं देख पाते हैं। इसके फलस्वरूप आप पाएंगे कि कोई बच्चा यह तो कह देता है कि वह पेड़ बनाने वाला है और बनने के बाद भी उस आकृति को पेड़ ही कहता हैं, पर संभव है कि उस बच्चे का कोई हम उम्र साथी उस आकृति को पेड़ न समझे। इस अवस्था के चित्रों को समझने में समस्या का कारण मानसिक संरचना का पूर्णतः सुदृढ़ न होना भी हो सकता है। मष्तिष्क में बनी छवि इतनी परिपक्व और प्रभावी नहीं होती है कि जब उसे कागज पर उतारा जाए तो वह हमारे प्रत्यक्ष खड़े वास्तविक पेड़ से जरा भी मेल खाए।

इसी अवस्था के उतरार्ध तक बच्चों के बढ़ते अनुभवों से होने वाली कौशल और ज्ञान वृद्धि उनके चित्रों में झलकने लगती है। अब चाहे उनकी झोपड़ी का वास्तविक चित्र झोपड़ी से मेल न खाता हो, पर कोई वयस्क या कोई बच्चा उसे देख कर झोपड़ी ही कहेगा। एक अन्य खास बात यह है कि घर मकान बंगला जैसी किसी भी रहने की जगह को भी बच्चा झोपड़ीनुमा चित्र से चिह्नित करेगा। बरगद, केला, आम, कीकर सभी पेड़ो के लिए संभव है कि एक ही तरह का पेड़ बनाए। तो बच्चे चित्रों का इस्तेमाल प्रतीक के रूप में करते हैं और उस चित्र के कुछ ऐसे लक्षण होते हैं जो सभी श्रेणी को संतुष्ट करते हैं। इसे लुकुए तार्किक या बौद्धिक यथार्थवाद कहते हैं।

यह बहुत रोचक अवस्था है जब बच्चों के दिमाग में बननें वाली छवियों (मानसिक संरचनाओं) को हम उनके चित्रों के माध्यम से समझने लगते हैं।

गतिविधि

आपके अनुसार बच्चे द्वारा घसीटे लगाते चित्रों से उनके कलात्मक विकास पर क्या प्रभाव पड़ेगा? क्या आप इस तरह के कलात्मक कार्यों के लिए बच्चों को स्वतंत्र छोड़ेगें? उपरोक्त प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए अपने संस्थान पर एक परिचर्चा का आयोजन करें।

लुकुए की अगली अवस्था पियाजे के तीसरे चरण के समान है। इसे लुकुए दृश्य यथार्थवाद की अवस्था कहते हैं। इसमे वे सभी लक्षण प्रभावी होते हैं। जैसेः—

- सूक्ष्म क्रियाएँ करने में पूर्णतः पेन्सिल व अंगुलियों पर नियंत्रण।
- स्वयं व अन्यों के परिप्रेक्ष्य की बेहतर समझ।
- एकाग्रता की अवधि में वृद्धि, एक काम ज्यादा समय लगाकर करना।
- सूक्ष्मताओं पर ध्यान देना।
- कोण, परिणाम, दूरी इत्यादि का अहसास बेहतर होना, आदि।

इस अवस्था में बच्चे वस्तुओं की पृष्ठभूमि पर भी ध्यान देते हैं उसे भी अपने चित्रों में समायोजित करते हैं। इसके लिए उन्हें निम्नलिखित बातों का ख्याल रखना पड़ता है।

1. वस्तुएँ एक—दूसरे को ढकती हुई प्रतीत होती है, यह कैसे दिखाया जाए।
2. दूर रखी वस्तुओं का आकार छोटा प्रतीत होता है और पास रखी वस्तुओं का बड़ा।
3. असल में सभी वस्तुएँ त्रिआयामी होती हैं इसे कैसे दर्शाया जाए।

कला के माध्यम से शिक्षार्थियों में जीवन के विभिन्न पहलुओं पर अपने विचार और भावनाओं को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करने की क्षमता का विकास होता है। बच्चों में निरीक्षण अन्वेषण एवं अभिव्यक्ति द्वारा सभी संवेदनाओं का विकास होता है। कला का संबंध संवेदनशीलता से है जो हमें वस्तु, व्यक्ति, प्रकृति एवं परिवेश के प्रति संवेदनशील बनाता है। यह पर्यावरण में उपलब्ध संसाधनों यथा मिट्टी, जल, फूल—पत्ती, पेड़—पौधे इत्यादि का शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सहजता से प्रयोग हेतु सक्षम बनाती है। बच्चों के संज्ञानात्मक क्षमता के विकास में कला की महत्वपूर्ण भूमिका है। जैसा की हम जानते हैं कि कला के विभिन्न आयामों से हमारा जुड़ाव नैसर्गिक रूप से रहा है। जैसे आड़ी—तिरछी लकीरों से आकृति बनाना, विभिन्न वस्तुओं से ध्वनि यंत्रों का निर्माण करना, ध्वनि तालों पर अनायास ही हमारा थिरकना तथा जीवन की वास्तविक घटनाओं का अनुकरण करना, विभिन्न प्रकार की संज्ञानात्मक चीजों से हमें जोड़ता है। कला स्फुरण, स्वाभाविक रूप में हमारे भीतर होना तथा उनके प्रति हमारा आकर्षण हमें संज्ञानात्मक क्षमता के विकास की ओर अग्रसर करता है। कला के विभिन्न माध्यमों से हम विभिन्न विषयों के संज्ञानात्मक क्षमता का विकास सुगमता से कर सकते है। जहाँ

एक ओर कला शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को रोचक बनाता है वहीं दुसरी ओर बच्चों को खुद से कुछ करने के लिए प्रेरित करता है। कला के माध्यम से भाषा, गणित, पर्यावरण के संज्ञानात्मक तथ्यों का विकास बहुत हीं सुगमता से किया जा सकता है तथा बच्चों को ज्ञान के सृजन के लिए प्रेरित भी किया जा सकता है। इन सब के विषय में आगे के खण्डों में चर्चा की गई है।

गतिविधि

संभव हो लैब विद्यालय की कक्षा में दीवार पर एक पट्टी या जमीन/फर्श का एक टुकड़ा बच्चे की मुक्त अभिव्यक्ति के लिए छोड़ दें। बच्चे उस पर जो चाहे लिख सकें, बना सकें। उसे पोछ कर फिर तैयार कर सके। एक माह तक उनके काम का अवलोकन करें उस पर रिर्पोट लिखें।

प्रारंभिक स्तर की पाठ्यचर्या से कला समेकित शिक्षा का जुड़ाव

हम जानते हैं कि कला संवेदना के विकास एवं अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। अतः प्राथमिक स्तर पर इसकी सार्थकता सहज ही स्पष्ट होती हैं। शिक्षार्थी अपने परिवेश के विभिन्न तथ्यों के प्रति न केवल संवेदनशीलता का प्रदर्शन करते हैं बल्कि उनसे सक्रियता के साथ अंतःक्रिया भी करते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें अपने अनुभवों के सार्थक अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है। इसके साथ–ही शिक्षार्थी अपनी प्रारम्भिक शिक्षा के वर्षो में सृजनात्मकता में रूचि रखते हैं। परन्तु कक्षा छः तक पहुँचते–पहुँचते कला शिक्षा में उनकी रूचि क्रमशः कम होती जाती है। जिसके अनेक कारण हैं। इन कारणों में विद्यालयों में मुख्य विषयों पर अधिक बल दिया जाना और कला को ज्ञान के महत्वपूर्ण स्वरूप के तौर पर न मानना है।

इस परिस्थिति में एक शिक्षक/शिक्षिका को कला–शिक्षा के प्रति संवेदनशील बनाने की आवश्यकता है जो उनके शिक्षण में भी मददकारी होगा। कला शिक्षा, एक शिक्षक/शिक्षिका को यह दृष्टि प्रदान करती है कि किस प्रकार अनुकूल परिस्थितियों का सृजन किया जाए जो बच्चों के अनुभव को मुखरता से अभिव्यक्त कर सके। दूसरे शब्दों में इससे बाल केन्द्रित सृजनात्मक वातावरण के निर्माण में मदद मिलती है। पुनः कला शिक्षा विषयों के प्रकृति के अनुरूप उनसे समन्वय तथा अपेक्षित अधिगम सामग्रियों के चयन का आधार भी है।

वास्तव में कला शिक्षा शिक्षार्थियों के संपूर्ण विकास के लिए आधार तैयार करती है। कला शिक्षार्थियों के इन्द्रीय विकास को उत्प्रेरित करती है, उनमें एकाग्रता का विकास करती है। महत्त्वपूर्ण रूप से यह शिक्षार्थियों की कल्पनाशीलता को बताती है, साथ–ही कल्पना के अनुरूप सृजन एवं अभिव्यक्ति का सहज माध्यम बनती है। कला शिक्षार्थियों की सोच में एक सार्थक दिशा प्रदान करती है।

कला शिक्षा के माध्यम से शिक्षार्थियों में जीवन के विभिन्न पहलुओं पर अपने विचार और भावनाओं को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करने की क्षमता का विकास होता हैं। शिक्षार्थी में अवलोकन, अन्वेषण एवं अभिव्यक्ति द्वारा सभी संवेदनाओं का विकास होता है। कला शिक्षा एक तरफ प्रकृति एवं परिवेश के प्रति संवेदनशील बनाती है तो दूसरी तरफ प्रकृति और परिवेश में उपलब्ध संसाधनों यथा मिट्टी, बालू, फूल–पत्ती, पेड़–पौधे इत्यादि का शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में सहजता से प्रयोग हेतु सक्षम बनाती है। इसके

द्वारा शिक्षार्थियों में विभिन्न कलाओं, कलात्मक पहलुओं के पहचान और सराहने की क्षमता का विकास होता है।

कला शिक्षा सांस्कृतिक विरासत और विविधता को समझने तथा उसकी निरन्तरता को बनाए रखने का उपयुक्त साधन है। कला शिक्षा के माध्यम से शिक्षार्थीगण अनेक प्रकार के कलाओं से अवगत होंगे तथा उन्हें सीखेंगे। इससे वे न सिर्फ उन कलाओं का प्रयोग करेंगे बल्कि कला की उन विरासतों को आगे भी प्रसारित करेंगें। इससे कलाओं का पीढ़ी दर पीढ़ी निरंतर विकास होता रहेगा और वे कलाएं बची रहेंगी जिनका निरन्तर लोप होता जा रहा है। साथ–ही, कलाएं जहाँ एक तरफ भावनात्मक दृढ़ता प्रदान करती हैं वहीं राष्ट्रीय एकता की भावना का भी विकास करती हैं।

उपरोक्त विशेषताओं को देखते हुए एक शिक्षक/शिक्षिका के रूप में हमें अपने शिक्षार्थियों के कला के प्रति लगाव को प्रारम्भिक स्तर से बरकरार रखते हुए कला शिक्षा के माध्यम से आगे तक ले जाने की आवश्यकता है। साथ–ही कला शिक्षा के माध्यम से अन्य विषयों को भी समाकलित करने की आवश्यकता है। अतः कला के विविध रूपों एवं उनके माध्यम से विषयों का समाकलन सरल तरीके से कैसे संभव हो सकता है इस पर चिंतन एवं क्रियान्वयन आवश्यक है।

प्रारम्भिक स्तर की पाठ्यचर्या में कला समेकित शिक्षा की आवश्यकता को हम निम्न बिन्दुओं से देख सकते हैं –

- सीखने को आनंदमयी और आकर्षक बनाना
- सूक्ष्म अवलोकन और बाधा रहित अन्वेषण के माध्यम से पर्यावरण की जागरूकता और संवेदनशीलता को प्रोत्साहित करना
- स्वतंत्र अभिव्यक्ति, सम्प्रेषण और सृजनात्मक भागीदारी को प्रेरित करना
- समावेशी वातावरण में रहना सीखना
- आस–पास की दुनिया में गणित और विज्ञान की अवधारणाओं की खोज करना
- अन्तः विषयी सम्बन्धों के बारे में जागरूक होना
- अवलोकन, जिज्ञासा, अन्वेषण, रचनात्मक और स्वतंत्र अभिव्यक्ति को बढ़ावा देना
- शरीर, उसकी गतियों और संबंध का पता लगाना और समझना
- सृजन, भावपूर्ण सम्प्रेषण और आलोचनात्मक चिंतन व कौशलों का विकास करना
- अधिगम और ज्ञान के प्रति जिज्ञासु अभिवृति को बढ़ावा देना
- अपनी भावनाओं को समझना और नियंत्रित करना
- समृद्ध विरासत और सांस्कृतिक विविधता के प्रति संवेदनशील बनाना और जागरूकता उत्पन्न करना

कला समेकित शिक्षाः अवधारणात्मक समझ एवं शैक्षिक उपयोगिता

कलात्मकता मनुष्य का नैसर्गिक गुण है। वह जन्म से ही कलाकार होता है। वह बचपन से ही कला सृजन की सतत् प्रक्रिया में लगा रहता है, चाहे दीवार पर आड़ी तिरछी रेखाएँ खींच रहा हो या अपने आस–पास के किसी व्यक्ति की नकल कर रहा हो या कोई गीत अपने अन्दाज में गा रहा हो या किसी डिब्बे को पीट–पीट कर मनचाही आवाज निकालने की कोशिश कर रहा हो या मिट्टी के खिलौने बना रहा हो। इन गतिविधियों में उसे जो आनन्द आता है उसके शब्दों में कहा जाना कठिन है।

इससे स्पष्ट होता है कि कला की एक विशेषता आनन्द की प्राप्ति भी है। इसी वजह से प्रायः यह देखा जाता है कि बच्चे निःसंकोच कई प्रकार की कला गतिविधियों में मशगूल पाये जाते हैं। कभी अकेले और कभी समूह में उनके क्रियाकलाप चलते रहते हैं। जैसे गुड्डे–गुड़िया का खेल, बरसात में कागज की नाव चलाना, जानवरों की आवाज की नकल करना, लकीरों के माध्यम से अपनी दुनिया एवं काल्पनिक दुनिया के लोगों का चित्रण करना, चाहे वह आपको अच्छा लगे या नहीं परन्तु उसमें उनकी सृजनात्मकता दिखाई पड़ती है।

सामान्यतः यह देखा जाता हैं कि बच्चे उन कार्यों को करना चाहते हैं जिनमें उन्हें मजा आता हो और यह भी सत्य है कि मजा के साथ किया गया कार्य सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में प्रभावी होता है। अब यह प्रश्न उठता है कि प्रभावी रूप से सीखने–सिखाने के लिए ऐसा क्या किया जाए जिसको बच्चे मजा लेकर करें। सामान्यतः विद्यालयों में जब सीखने–सिखाने की प्रक्रिया शिक्षक केन्द्रित होती है तब उसमें निरसता आने लगती है। बच्चों को शिक्षक के निर्देशानुसार कार्य करना पड़ता है भले ही वह करना चाहते हों या नहीं। प्राथमिक विद्यालयों मे कुछ ऐसा किये जाने की आवश्यकता है जिससे बच्चे को विद्यालय में रूचि उत्पन्न हो, तथा वह प्रतिदिन कुछ नया सोच कर विद्यालय जाता हो और वहाँ वह जो भी करता हो उसमें उसे मजा आता हो। ऐसा देखा गया है कि कला की प्रक्रियाओं में बच्चों को अत्यधिक मजा आता है। अब यहाँ पर यह समझ लेना चाहिए की कला में अन्तिम उत्पाद महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि प्रक्रिया अत्यधिक महत्व रखता है। इसका मतलब यह कतई नहीं हुआ कि उत्पाद कोई मायने नहीं रखता बल्कि यह तो उस बच्चे की पहचान है जिसे वह अपना सृजन कहता है और जो अपने आप में विशिष्ट होता है लेकिन यह भी सच है कि बच्चे को अत्यधिक मजा कला सृजन की प्रक्रिया में आता है। इन तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि विषयों के शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में कला को एक माध्यम के रूप में उपयोग करने से बच्चें मजे के साथ विषयों की अवधारणा आसानी से समझ सकेगें और साथ–ही सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में रूची भी लेने लगेंगे। इस प्रकार की शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को कला समेकित शिक्षा कहते हैं।

आइए, कला समेकित शिक्षा की कक्षा में चलते हैं। शिक्षक ने कक्षा के सभी बच्चों को उनकी संख्या के अनुसार कई समूहों में विभाजित कर उन्हें कुछ सामाग्रियाँ दी हैं, जैसे – कुछ गीली मिट्टी, रंग, अखबार, क्रेयान, इत्यादि। उन्हें अपनी–अपनी पसंद के अनुसार कलात्मक सामग्री निर्माण करने को कहा है। इस बात की स्वतंत्रता दी गई है कि बच्चे अपनी पसंद के अनुसार कार्य करें। समय और स्थान बच्चों ने अपने अनुसार निर्धारित किया और अलग–अलग समूह में विद्यालय परिसर में बैठ कर अपने काम करने लगे। शिक्षक लगातार उनके कार्य का अवलोकन कर रहे हैं। शिक्षक भी बच्चों के साथ घुल–मिल कर काम कर रहे हैं। कुछ देर के बाद बच्चों ने अपनी कलाकृतियों को कक्षा में सजा कर प्रदर्शित किया है। किसी ने अपने चित्र में अपना घर बनाया है तो किसी ने मिट्टी का साँप बनाया है, किसी ने कागज की रंग–बिरंगी टोपी बनाई है तो किसी ने टोकरी। बच्चे अपनी–अपनी कलाकृति को देखकर मुग्ध हो रहे थे तथा इसके बनाने में अपने अनुभव एक–दूसरे से बाँट रहे थे। अब शिक्षक ने सभी बच्चों से बारी–बारी से अपने अपने कला अनुभव बाँटने को कहा। बच्चों ने अपनी भाषा में अपने शब्दों के सहारे अपनी बात रखने का प्रयास किया। मैंने महसूस किया कि बच्चें सोच कर बोलने की दक्षता प्राप्त करने की प्रक्रिया में स्वतः जुड़ गये थे। बच्चे स्वतः सुनने और बोलने की अधिगम प्रक्रिया में जुड़ गये थे। सभी बच्चों ने अपने बनाये उस मिट्टी के साँप की लम्बाई हथेली से, बित्ते से तथा स्केल से मापा। बच्चे अपनी–अपनी तरह से साँप की लम्बाई माप रहे थे और लम्बाई की अवधारणा देखकर, मापकर, अंदाजा लगाकर समझ रहे थे। कुछ बच्चे तो साँप के घर, साँप के प्रकार पर

आपस में बात कर रहे थे और शिक्षक से भी पूछ रहे थे। एक बच्चे ने साँप को अपनी बनायी गयी टोकरी में रख कर यह बताया की मेरे गाँव में एक सपेरा आया था और वह जीवित साँप को इस प्रकार टोकरी में रखे हुए था। कोई अपनी बनाई गई टोपी और उसमें लगाये गये पंख को दिखा रहा था तथा यह भी बता रहा था कि इसको खोलने पर कई प्रकार के त्रिभुज और चतुर्भज की आकृति इसमें दिखाई पड़ती है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रही जब तक शिक्षक ने बच्चों को आज की क्रियाकलाप पर सभी बच्चों को धन्यवाद नहीं दे दिया। मैंने महसुस किया कि बच्चे इस कक्षा में सभी विषयों को एक साथ सीख रहे थे। शिक्षक ने बताया की मैंने पहले से एक योजना बना ली थी तथा कक्षा के पाठ के अनुसार ही विषयों पर बात किया। अन्त में शिक्षक ने कुछ कार्य घर से करके लाने के लिए भी दिये। इस प्रकार कला समेकित शिक्षा एक ऐसी शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया है जो आनन्द पूर्वक स्वतः सीखने–सिखाने का अवसर पैदा कर देती है।

केस स्टडी – अर्चना कुमारी की कहानी

अर्चना कुमारी उत्तर बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के सर्वाधिक गरीब एवं पिछड़े इलाके के एक छोटे से गांव की रहने वाली है। चौदह वर्ष की उम्र में उसने विद्यालय की पढ़ाई–लिखाई छोड़ दी और इलाके में पारंपरिक सुजनी कढ़ाई का काम कर कुछ पैसे कमाने में जुट गई। सत्रह वर्ष की आयु में उसके रचनात्मक कौशल की जानकारी अदिति नामक एक गैर सरकारी संगठन (एन.जी.ओ.) और कनाडा के कपड़ा विशेषज्ञ डॉ. स्काई मॉरिसन को मिली जिन्होंने संयुक्त प्रयास से उसे छात्रवृत्ति देकर नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ फैशन टैक्नोलॉजी (NIFT) में प्रशिक्षण के लिए भेज दिया। अंग्रेजी की जानकारी नहीं होने और शैक्षणिक योग्यता में फिसड्डी रहने के बावजूद उसने अपने सत्र में सर्वश्रेष्ठ डिजाइन संग्रह का पुरस्कार हासिल किया और NIFT ने आगे के अध्ययन के लिए उसे चुन लिया। उसका कहना है कि वह उसकी हाथ की कारीगरी एवं शिल्प के क्षेत्र में कार्य करने के अनुभव की बदौलत ही वह अन्य बच्चों पर भारी पड़ी है। उसे इस बात का मलाल है कि उसके स्थानीय विद्यालय ने उसे या अन्य बच्चों को इस दिशा में ऐसा कोई शुरुआती आधार प्रदान नहीं किया जिससे वह हस्तशिल्पी महिला एवं उद्यमी के रूप में सशक्त बन सके।

समेकन

इस इकाई के माध्यम से हमने जाना कि कला शैक्षिक प्रक्रिया के साथ–साथ सौंदर्यानुभूति एवं अभिव्यक्ति का भी सहज माध्यम है। जब हम शिक्षा और कला की बात करते हैं तो 'कला में शिक्षा' और 'शिक्षा में कला' जैसे तथ्य उभरकर सामने आते हैं। प्रारंभिक स्तर पर कला शिक्षा, शिक्षार्थियों के संवेदना, सृजनात्मकता एवं परिवेश के प्रति सक्रियता का महत्वपूर्ण आधार है। यह सांस्कृतिक विरासत और विविधता को समझने तथा उसकी निरंतरता को बनाए रखने का उपयुक्त साधन है। महत्वपूर्ण रूप से लोक कलाएं भावनात्मक दृढ़ता प्रदान करने के साथ–साथ राष्ट्रीय एकता की भावना को भी विकसित करती है। अतः कला एवं शिल्प एक विषय के रूप में तो महत्वपूर्ण है ही साथ–ही अन्य विषयों के साथ भी इसका गहरा संबंध है। बाल कला एवं उसके विकास क्रम की समझ विद्यार्थियों के विकास को समझने एवं उन्हें प्रोत्साहित करने में मदद करती है। इन सब के साथ, हमें यह भी समझना होगा कि सिर्फ सयानो के दृष्टिकोण से बच्चों की शिक्षा व्यवस्था को नहीं देखा जाना चाहिए क्योंकि सीखने वाला बच्चा है ना कि सयाना। बच्चे की दृष्टि बड़ों की दृष्टि से काफी अलग होती है – इस बात पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

मूल्यांकन के प्रश्न

1. कला समेकित शिक्षा क्या है? इसकी क्या उपयोगिता होनी चाहिए?
2. क्या कला समेकित शिक्षा के माध्यम से शिक्षक का कार्य आसान हो जाता है? क्यों या क्यों नहीं?
3. बच्चों के संज्ञानात्मक विकास में कला की क्या उपयोगिता है? उदाहरण देते हुए समझाएं।
4. आप स्वयं कला को अपने शिक्षण के साथ जोड़ पाने में कितना सक्षम हैं?
5. अपने आस–पास के विभिन्न कलाकारों व शिल्पकारों की जानकारी एकत्रित करें तथा उन्हें अपने अध्ययन केन्द्र पर आमंत्रित करके उनसे संबंधित कलाओं के बारे में चर्चा करें।
6. अपने आस–पास प्रचलित उन लोकगीतों की सूची बनाएं जो विभिन्न महीनों में गाए जाते हैं। उन गीतों को लिपिबद्ध करें।
7. कुछ ऐसे कला समेकित गतिविधियों का उदाहरण दें जिसके माध्यम से आप अपनी कक्षा में समूह भावना को प्रोत्साहित कर सकते हैं।
8. भिन्न–भिन्न राज्यों के लोकनाटकों की सूची बनाएं तथा उनके इतिहास के विषय में पता लगाएं।

9. विभिन्न कला से संबंधित संस्थाओं का पता लगाएं तथा पता करें कि उन कलाओं के विकास के लिए वे क्या–क्या करते हैं? इसपर एक रिपोर्ट भी तैयार करें।
10. कुछ नाटकों का चयन करें तथा अपने अध्ययन केन्द्र पर अन्य प्रशिक्षुओं की मदद से उनका समूह मंचन करें। उन नाटकों को करने के दौरान आपके जो अनुभव रहें उन पर समूह में चर्चा करें।
11. कुछ ऐसे कला समेकित गतिविधियों का उदाहरण दें जिसके माध्यम से आप अपनी कक्षा में बच्चों को सक्रिय बनाने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

इकाई 2

दृश्य कला

परिचय

बच्चों में जन्म के साथ–ही रंग–बिरंगे खिलौने, उनकी रूनझुन आवाजों, आदि के प्रति आकर्षण रहता है। हमने छोटे बच्चों को आड़ी–तिरछी लाइनें खींचते या वैसा कुछ बनाते जरूर देखा होगा जो हमारी समझ में नहीं अता है और जिसे हम उनकी नासमझी मानते हैं। लेकिन, असल में यह उनके लिए अभिव्यक्ति का जरिया है। कला के प्रति बच्चों का जो जन्मजात सम्मोहन है, वह गुण एक सुधी शिक्षक/शिक्षिका के लिए अधिगम प्रक्रिया को रोचक और त्वरित करने का एक सशक्त माध्यम है। इसके लिए आवश्यक है कि हमें कला की समझ तो हो ही, कला शिक्षा के बेहतर उपयोग की भी समझ हो। इससे हमारे पास अभिव्यक्ति का एक और माध्यम जुड़ जाता है जिसका प्रयोग हम विद्यालय के विभिन्न कार्यक्रमों के साथ–साथ सीखने के महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में कर सकते हैं।

अतः हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम कला शिक्षा के सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक पक्षों पर समान रूप से अपनी समझ बनाएं। साथ–ही, हम कला प्रयोग की कुशलता एवं बारिकियों से स्वयं परिचित हों एवं इनका उपयोग करें। इस इकाई में हम दृश्य एवं शिल्प कला को प्रायोगिक तौर पर समझने की कोशिश करेंगे। साथ–ही, प्रयोग के क्रम में अपनाई जानेवाली प्रक्रिया एवं उत्पाद को अन्य विषयों से जुड़ी अवधारणाओं, कुशलताओं, क्षमताओं, इत्यादि के विकास एवं समझ हेतु उपयोग किया जा सकेगा।

बच्चे/बच्चियों द्वारा धरती पर लकड़ी या पत्थर के छोटे टुकड़े से खींची गई आड़ी–तिरछी लकीरें हो या आंचलिक खेल 'कित–कित' सहित अन्य खेलों के लिए बनाई जाने वाली खाँचे, हमारे समाज में भिन्न जानवरों, पेड़–पौधों, पशु–पक्षियों इत्यादि के चित्र खींचने की प्राचीन परंपरा रही हैं। चँवर या तालाब की तलछट मिट्टी से विविध आकृतियाँ बनाना, ईंट या पत्थर के टुकड़े को जोड़कर घर बनाना, बालू के टीले में पैर डालकर घरौंदा बनाना, विभिन्न जलीय पौधों से ग्रीवाहार बनाने, इत्यादि

का कौशल हमारे बचपन का या आज के बच्चे/बच्चियों के हिस्से का सच है। बेशक, बदलते समय और बदलती परिस्थितियों के साथ–साथ, उपर्युक्त क्रियाकलापों से बच्चे/बच्चियों की दूरी बनी भी तो उन्होंने हाँथों में पेंसील और क्रेयोन्स थाम लिए हैं। इस प्रकार, कला के कई रूपों से हम स्वतः ही जुड़े हुए हैं।

दृश्य कला के विविध स्वरूपों का प्रयोग हमारे जीवन में निरन्तर होता रहता है। अपने घर या विद्यालय में इनके प्रयोग को आप आसानी से पहचान सकते हैं। इस खण्ड में हम दृश्य कलाओं की अवधारणा और इसके विविध प्रकार व सामग्री निर्माण के विषय में समझेंगे।

दृश्य कला की अवधारणा एवं शैक्षिक उपयोगिता

कला का वह पक्ष या कलात्मक अभिव्यक्ति जिन्हें हम देख पाते हैं या जिनकी मूर्त अनुभूति होती है दृश्य कला की श्रेणी में आते हैं जैसे – फोटोग्राफी, छपाई, चित्रकला, चलचित्र, मूर्तिकला इत्यादि। दृश्य कला द्विविमीय या त्रिविमीय हो सकती है, जैसे – चित्र, पेंटिंग, कोलाज इत्यादि द्विविमीय दृश्य कला के उदाहरण हैं जबकि मूर्तिकला, पुतलीकला, मूर्ति या शिल्प, काष्ठकला इत्यादि त्रिविमीय दृश्यकला के उदाहरण हैं। दृश्यकला के आवश्यक तत्व है – रेखा, आकृति, स्वरूप, स्थान, बनावट, मूल्य और रंग।

साथ–ही दृश्य कलाओं के माध्यम से प्राप्त अनुभव शिक्षार्थियों के मस्तिष्क में स्थायी छाप छोड़ती हैं। महत्त्वपूर्ण रूप से दृश्य सामग्री विभिन्न अवधारणाओं की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि को व्यावहारिक आधार प्रदान करती है। दृश्य कलाएँ लोक एवं क्षेत्रीय कलाओं के साथ–साथ सांस्कृतिक निरन्तरता को भी प्रोत्साहित करती हैं। दृश्य कलाएँ ऐन्द्रिक अनुशासन और नियंत्रण को प्रोत्साहित करती हैं। दृश्य कला में आंतरिक भाव सहजता और पूर्णता में अभिव्यक्त होते हैं। दृश्य कला की सबसे बड़ी विशेषता है इससे संबंधित कार्यो का संग्रहण एवं प्रदर्शन। वस्तुतः दृश्य कलाएँ आसानी से संग्रहित और प्रदर्शित की जा सकती है, अर्थात–भविष्य में भी उनका प्रयोग सहजता से किया जा सकता है। दृश्य कला के अन्तर्गत किए गए कार्य भविष्य के कार्य के लिए दृष्टि प्रदान करते हैं तथा आधार भी बनते हैं।

दृश्य कला के विविध प्रकार एवं सामग्री विकास

कला शिक्षा में दृश्य कला का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैसे तो कला के माध्यम से कल्पना की अभिव्यक्ति होती है लेकिन जिस सहजता से कल्पनाओं की सार्थक अभिव्यक्ति दृश्य कला के माध्यम से होती है वह अपने–आप में अद्वितीय है। दृश्य कला शिक्षार्थियों के अशाब्दिक–भावों को सहजता से अभिव्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं, खास कर दृश्य कला में प्रयुक्त सामग्री, दृश्य अभिव्यक्ति को और भी जीवन्त बनाते हैं। दृश्य कलाएँ नए अनुभवों के सृजन और पुराने अनुभवों की निरन्तरता को सुनिश्चित करती है। दृश्य कला की विभिन्न विधाओं के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की सामग्रियों का प्रयोग किया जाता है, जैसे – रेखाचित्र के लिए पेन्सिल, चारकोल, स्केचपेन, रंगीन चॉक इत्यादि। पेंटिंग के लिए पेस्टल रंग, जल रंग तैल रंग एक्रेलिक के रंग, पोस्टर रंग, ब्रश इत्यादि। कोलाज के लिए रंगीन कागज, कपड़े की कतरन, रद्दी सामग्री, गोंद, फेवीकोल इत्यादि। छपाई के लिए सब्जी का टुकड़ा, चाकू, विभिन्न प्रकार के रंग, गोंद, इत्यादि। मूर्तिकला में तालाब की मिट्टी, बर्तन बनाने की मिट्टी, प्लास्ट ऑफ पेरिस, धातु, मूर्तिकला के औजार, इत्यादि। आइए, इनमें से कुछ के उपयोग को समझते हैं।

दृश्य कला के विकास में सहायक कुछ सामग्रियों से परिचय

1. **पेंसिलः** मनुष्य अपने प्रारंभिक जीवन में पत्थर के टुकड़े, कमाची, छोटे–छोटे कंकड़ इत्यादि का प्रयोग करता है, फिर पेंसिल को हाथों में पकड़ घसीटना शुरू कर देता है। सच पूछिए तो प्रारंभिक स्तर पर पेंसिल ही बच्चों को टेढ़े–मेढ़े अक्षरों से उभार निकलने की गतिविधि प्रदान करता है। पेंसिल के कई प्रकार है जो अपने भिन्न–भिन्न गुणों के कारण अलग–अलग कामों में प्रयुक्त होते हैं। उनमें से रंगीन और ग्रेफाइट पेंसिल का प्रयोग हम अक्सर करते रहते हैं।

   रंगीन पेंसिल (Coloured Pencil): इसमें मोम के साथ रंगीन पदार्थ मिले होते हैं। यह पेंसिल एक साथ कई रंगों में उपलब्ध होता है।

   ग्रेफाइट पेंसिल (Graphite Pencil): ये पेंसिल के सामान्य एवं प्रचलित रूप

   हैं। ये ग्रेफाइट एवं क्ले के मिश्रण से बने होते हैं जो वास्तविक रूप में मुलायम लकड़ी के अंदर बंद रहते हैं। कठोर पेंसिल (H) एवं मुलायम तथा काले (B) पेंसिल बाजारों में उपलब्ध है।

2. **पेस्टल रंग (Pastel Colour):** यह एक प्रभावी कला माध्यम है इसके चूर्ण में रंग द्रव्य मिलाकर बंधा जाता है। इसमें वही रंग द्रव्य मिलाया जाता है जो अन्य कला माध्यमों में मिलाया जाता है। पेस्टल सुखे एवं तैलीय होते हैं। सूखे हुए पेस्टल (Dry Pastel) तीन प्रकार के होते हैं।

i. कठोर पेस्टल (Hard Pastel): ये अत्यंत कठोर बंधन और कम रंगद्रव्य वाले होते हैं। इनसे बाहरी लाईन (outer line) खींचने का काम होता है। इसमें रंगों की चमक सामान्य होती है। यह चित्र पटल पर ज्यादा दिनों तक स्थाई नहीं रहता है।

ii. मुलायम पेस्टल (Soft Pastel): इसमें रंग द्रव्य अधिक होता है और बंधन हल्का होता है। इस पेस्टल से खींचे गये स्ट्रोक को अपनी सुविधा से घिस कर मिलाया या मिश्रित किया जा सकता है, जिससे छाया प्रकाश को प्रभावी ढंग से उभारा जा सकता है और इससे व्यक्ति चित्र को जीवंत बनाया जा सकता है। यह रंग चमकीला होता है। चित्र बनाने के बाद घिसकर स्थायी बनाया जा सकता है।

iii. आयल पेस्टल (Oil Pastel): यह अपेक्षाकृत मुलायम और चमकीला होता है। इसके रंगों को मिश्रित करना कठिन होता है। इसे स्थायी करने के लिए अलग से कोई प्रक्रिया जरूरी नहीं है।

पेस्टल एक प्रभावी माध्यम है, विशेष कर बच्चों के लिए जिन्हें रंग, ब्रश को नियंत्रण करना नहीं आता। इसमें रंग बरबाद नहीं होता है और बच्चे मनचाहे रंगों का उपयोग अपने द्वारा बनाए गए चित्रों के लिए करते हैं। इसके चमकीले रंग बच्चों को आकर्षित करता है। उन्हें जल में मिश्रित कर ब्रश से फैलाया जाता है।

3. पोस्टर रंग: पोस्टर रंग चिपचिपा, अपारदर्शी एवं गोंद की तरह तुरंत सुख जाने वाला जल रंग (Water colour) है। बाजार में छोटी–छोटी शीशियों में या उपलब्ध है। यह रंग मूलतः अपारदर्शी होता है लेकिन इसे अधिक जल में घुलाकर पारदर्शी भी बनाया जा

सकता है। इनका प्रयोग पोस्टर लिखने, टेम्परा रंग के रूप में विभिन्न प्रकार के कार्ड, पेपरमेशी, पॉलिश रहित सेरामिक इत्यादि पर रंग रोगन हेतु किया जाता है।

पोस्टर कलर का उपयोगः प्रायः प्राकृतिक दृश्यों, पेंटिंग एवं व्यवसायिक कला में इसका उपयोग किया जाता है। जीवन चित्रण, प्रदर्शन एवं शैक्षिक कार्यों में इसका उपयोग किया जाता है।

4. कलम और स्याहीः चित्रांकन में पेंसिल की तरह ही कलम का भी प्रयोग किया जाता है। कलम और स्याही से चित्र की बाह्य रेखा (Outline) आड़ी–तिरछी रेखा खींचना (Cross Latching) और घसीटने का कार्य पेंसिल की तरह ही होता है। हाँ, पेंसिल की अपेक्षा कलम से किया गया कार्य कुछ मुश्किल अवश्य होता है लेकिन परिणाम रोचक होता है।

आज बाजार में बहुत तरह के कलम उपलब्ध हैं, यथा – नीब पेन, मार्कर (नुकिला), जेल–पेन, इत्यादि। हालांकि हम कलम बना भी सकते हैं, जैसे – बाँस की कलम, सरकंडे की कलम, पक्षियों के पंख की कलम इत्यादि। चित्रांकन में कलम के प्रयोग के साथ सावधानी होनी चाहिए कि स्याही टपककर कोई अनावश्यक धब्बा न बना दे। गौरतलब है कि मधुबनी पेंटिंग, पटना कलम या आंध्रा की कलमकारी इत्यादि में पारंपरिक रूप से कलम एवं स्याही का उपयोग आज भी जारी है।

5. **रंगोलीः** रंगोली बनाने की कला भारत में प्राचीन कला का रूप है। इसकी परम्परा धार्मिक एवं सामाजिक रूप में भारत नहीं बल्कि दुनिया के कई देशों में दिखाई पड़ती है। सामान्यतः रंगोली बनाने के लिए परिवेश में उपलब्ध सामग्रियों का इस्तेमाल किया जाता है। जैसे – लकड़ी का बुरादा, अबीर, गुलाल, अन्न के दाने, बालू, कई रंगों के फूल, पत्थर के छोटे–छोटे टुकड़े, सुखे हुए पत्ते इत्यादि। नई तकनीकें एवं आधुनिकता के परिवेश में रंगोली कि नई–नई आधुनिक तकनीके प्रचलीत हो रही है।

रंगोली देश की पारंपरिक सजावटी लोककला है। हिन्दू पर्व–त्योहारों के दौरान इसे घरों के सामने, बरामदे आदि में बनाया जाता है। इसे विभिन्न राज्यों में अलग–अलग नाम से भी जाना जाता है, यथा राजस्थान में मंडाना, प. बंगाल में अल्पना आदि। रंगोली सरल ज्यामितीय आकृति सहित स्वास्तिक, कलम, लक्ष्मी–पद आदि आकार में बनाए जाते हैं। रंगोली बनाने में प्रयुक्त सामग्री विभिन्न राज्यों में अलग–अलग तरह की होती है।

विचार करें:

रंगोली और गणित, दोनों ही पैटर्न का अनुकरण करते हैं। फिर क्या रंगोली सिर्फ सजावटी उद्देश्यों तक सीमित है? गणित विषय के विभिन्न अवधारणाओं और कठिन बिन्दुओं को समझने में इसकी क्या उपयोगिता हो सकती है? इसपर चर्चा करें।

दृश्य कला के विभिन्न वस्तुओं का विकास

दृश्यकला की विभिन्न विधाओं के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की सामग्री का प्रयोग किया जाता है, जिनमें से कुछ के बारे में आपने ऊपर पढ़ा। इन वस्तुओं का कलात्मक प्रयोग कलाकार अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए आवश्यकतानुसार करता है। जैसे–रेखांकन के लिए पेंसिल, चारकोल, क्रेयॉन इत्यादि वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है, जबकि चित्रकला में रंगों के विभिन्न माध्यम यथा पेस्टल–रंग, जल–रंग, तैल रंग तथा कभी–कभी प्राकृतिक रंगों का भी प्रयोग आवश्यकतानुसार किया जाता है। पेंटिंग की विभिन्न शैलियों में विभिन्न प्रकार के रंग माध्यम का प्रयोग होता है। इतना ही नहीं इनके निर्माण की कई पारम्परिक विधियाँ भी हैं। जैसे मिथिला पेंटिंग (मधुबनी पेंटिंग) में प्राकृतिक रंग जैसे, हल्दी, काजल, सेम का बीज, गेरू, नील, इत्यादि रंगों का प्रयोग किया जाता है। कलाकार इन रंगों को आवश्यकतानुसार तैयार करते हैं। इस चित्र कला को सामान्यतः दिवार पर किया जाता है। इसी प्रकार ब्लॉक प्रिंटिंग भी

दृश्य कला का एक प्राचीन नमूना है। इसके माध्यम से कपड़े की छपाई एवं साज–सज्जा किया जाता है। सामान्यतः लकड़ी के ब्लॉक बनाने की परंपरा रही है, तथा इनका निर्माण भी कारीगरों तथा बारिक औंजारों के मदद से लकड़ी के विभिन्न आकार के टुकड़ों के माध्यम से किया जाता है। दरअसल ब्लॉक लकड़ी के शिल्प का एक नमूना है। ऐसे तो दृश्य कला में शिल्प की एक लम्बी सूची है, परन्तु इस इकाई में इनमें से कुछ विधाओं की चर्चा यहाँ की जा रही हैं – जैसे कोलाज, मुखौटा एवं पुतली कला, पेपर मैसी एवं क्ले इत्यादि। इन सब का विद्यालय में बच्चों के साथ प्रयोग करना ज्यादा सहज है।

1. चित्रांकन

दृश्य कला में चित्रांकन एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। चित्र कला का प्रथम सोपान चित्रांकन है, चित्रांकन में किसी भी विषय या चित्र की रूप रेखा तैयार कि जाती है। चित्रांकन की प्रथम सोपान स्थिर चित्रांकन है। पहले यह अपेक्षा की जाती थी कि चित्रांकन के लिए रखे गये वस्तु समूह का बिलकुल उसी रूप में चित्रण किया जाय और उस चित्र में सारे विवरण उसी प्रकार चित्रित किए जाएँ जैसे वे मूल रूप में दिखाई देते हैं अर्थात उनका हू–ब–हू चित्रण करने की अपेक्षा की जाती है। इसका कारण यह कि उन दिनों इस विषय का नाम ही वस्तु चित्रण (Object Drawing) था, पर अब इस विषय का नाम और उससे संबंधित मूलभूत दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया है। चित्रांकन के लिए प्रयोग होने वाली सामग्रियों का इस्तेमाल आवश्यकतानुसार किया जाता है तथा शिक्षार्थी अपनी कल्पनाशीलता के अनुसार इनका प्रयोग कर सकता है, जैसे विभिन्न प्रकार के पेंसिल का प्रयोग प्रकाश तथा छाया (Light & shade) रचना तथा आकृति (Structure and shape) में किया जाना।

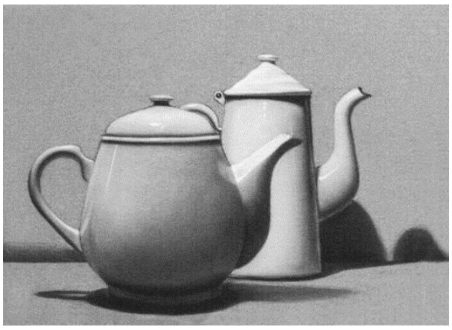

टोन (Tone): प्रकाश तथा छाया का प्रभाव टोन कहलाता है। यह गहरे से हल्के या हल्के से गहरे रंग के तल को जाहिर करता है। इससे चित्र में गहराई उत्पन्न होती है। रंगों में इसका विशेष महत्व है। रंग का हल्का–भारीपन प्रकाश तथा छाया की शक्ति को बढ़ाता है।

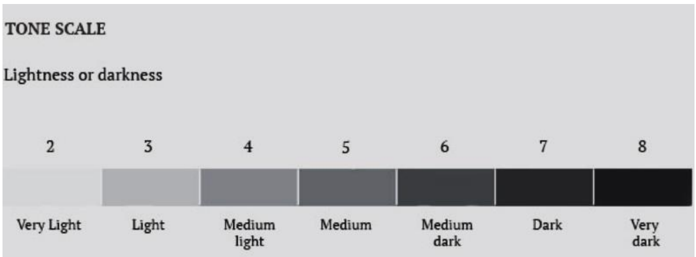

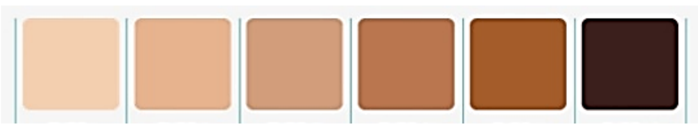

टेक्सचर (Texture): इससे तल की बनावट ज़ाहिर होती है। विभिन्न प्रकार के चिकने और खुरदरे तल हो सकते हैं। चटाई, खद्दर इत्यादि को छूकर हम इसका अनुभव कर सकते हैं। वस्तुतः टेक्सचर के फ्लैट सतह को उभारता है। रंग, शेड एण्ड लाइट या स्क्रीन द्वारा सतह पर सतह पर टेक्सचर का प्रभाव पैदा किया जाता है।

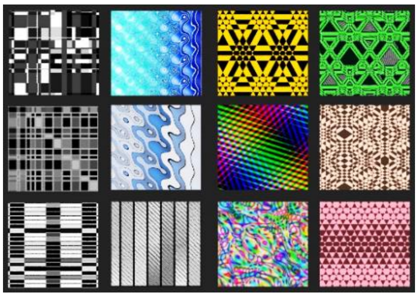

संतुलन (Balance): चित्र में आकार तथा रचनाओं को ठीक ढंग से क्रम देना ही संतुलन कहलाता है। आकार, रचनाओं और रंगों में संतुलन रखना ही कला की कसौटी है।

संगति (Harmony): चित्र के कुछ भाग सामान्य होते है या कह लीजिए कि वे एक ही परिवार के होते हैं, जैसे–वर्ग, आयत, चतुर्भुज। इसी प्रकार रंगों में नारंगी तथा पीला रंग भी एक ही परिवार से संबंध रखते हैं। चित्र बनाते समय रंगों तथा रचनाओं की संगति पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

रिदम (Rhythm): चित्र के भागों को दोहराने से रिद्म (लय–ताल) का प्रभाव पैदा होता हैं यह दोहराना दाएं से बाएं या ऊपर से नीचे हो सकता है। आलंकारिक अथवा सजावटी डिजाइनों में इसका विशेष महत्व है।

कंट्रास्ट (Contrast): टोन, रंग तथा आकृतियों के भेद से कंट्रास्ट उत्पन्न किया जाता है। रंगों और आकृतियों में भिन्नता न होने पर डिजाइन फ्लैट होकर रह जाता है। टेलीविजन में कंट्रास्ट कम या ज्यादा करके यह बात आसानी से समझी जा सकती है।

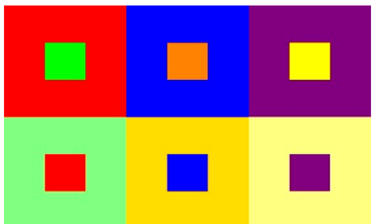

एम्फेसिज (Emphasis): चित्र में किसी एक भाग को विशेष प्रधानता जाती है। चित्र को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए उसके विशेष भाग को उभारना जरूरी हो जाता है। वास्तव में प्रत्येक कम्पोजीशन में एक फोकल प्वाईंट (Focal Point) होता है जिसे *प्वाइंट ऑफ इंटरेस्ट* या *चित्र का मुख्य भाग* भी कर सकते हैं। इसे आकृति, रचना और रंगों के कंट्रास्ट से उत्पन्न किया जा सकता है।

कला के तत्व किसी भी कला के निर्माणात्मक इकाई होते हैं । ये हैं – रेखा, आकृति, स्वरूप, स्थान, बुनावट, मान्यताएँ और रंग । आइये इन तत्वों के बारे में कुछ और जानकारी प्राप्त करते हैं:–

आइये इन तत्वों के बारे मे कुछ और जानकारी प्राप्त करते है।

रेखा – रेखा कई प्रकार की हो सकती है जैसे – मोटी, पतली, टुटी हुई, मुड़ी हुई, घुमावदार या चिकनी। रेखाओं की कई दिशाएँ हो सकती है जैसे क्षैतिज, लम्बवत, तिरछी, या टेढ़ी मेढ़ी । अलग–अलग रेखाएँ चित्र के अलग–अलग भावों को प्रकट करती हैं।

आकृति – रेखाओं द्वारा धिरे हुए क्षेत्र को आकृति कहते हैं। आकृतियाँ तो ज्यमितीय होती है या मौलिक। वर्ग, वृत्त, त्रिभुज आदि ज्यामितीय आकृतियाँ हैं। दूसरी तरफ मौलिक आकृतियों के तात्पर्य उन आकृतियों से है जो हमें प्रकृति से प्राप्त होती हैं जैस फूल, पत्ते आदि। प्रत्येक वस्तु हालाँकि जटिल होती है, लेकिन उसे सरल आकृतियों मे तोडा जा सकता है। बच्चों को इन आकृतियों को देखने में मदद कर उन्हें कागज पर प्रदर्शित करने हेतु प्रेरित कर सकते हैं।

स्वरूप (Form) – ऐसी कोई आकृति जिसमें मुटाई या गहराई हो, स्वरूप कहते हैं। कुछ स्वरूप हैं – गोला, बेलन घनाभ आदि। आप किसी आकृति को छायांकित कर एक सरल स्वरूप को बता सकते हैं जिसके लिए विभिन्न तकनीक यथा Hatching, Smudging या Stipping का उपयोग कर सकते हैं। स्वरूप सचित्र या संरचित हो सकते हैं।

रंग (Colour) – सतहों से प्रकाश के परावर्तन के माध्यम से रंगो को देखा जाता है। रंग प्राथमिक द्वितीयक और तृतीयक श्रेणी के होते हैं। पूरक रंग वैसे रंग होते हैं जो रंग चक्र पर एक–दूसरे के विपरीत होते हैं। इनका उपयोग विविधता के सृजन हेतु होता है। लाल, पीले, और नारंगी रंगों के समूह को चटकीले रंगों का समूह कहा जाता है। बैगनी, हरा और नीले रंगों के समूह को शांत रंगों का समूह कहा जाता है।

प्राथमिक रंग– प्राथमिक रंग वे मौलिक जिनके मिश्रण से बाकी सभी रंगों का निर्माण होता है। लाल, नीला और पीला प्राथमिक रंग है।

द्वितीयक रंग – जब दो प्राथमिक रंगों के सामान भाग को आपस में मिलाया जाता है तो द्वितीयक रंग मिलते हैं, जैसे लाल+नीला = बैंगनी।

स्थान (Space) – किसी खास वस्तु द्वारा घेरे गए क्षेत्र को स्थान कहते हैं। इसमें आगे का भाग, बीच का भाग तथा पार्श्व का भाग शामिल होता है। स्थान दो प्रकार के होते हैं – धनात्मक और ऋणात्मक स्थान। धनात्मक स्थान से तात्पर्य है

विषय–वस्तु का प्रतिनिधित्व करने वाली आकृति का स्थान। ऋणात्मक स्थान से तात्पर्य है, विषयवस्तु के बीच तथा चारों तरफ का स्थान।

बुनावट (Texture) – बुनावट से तात्पर्य है कोई वस्तु कैसी लगती है या लगने का भाव उत्पन्न करती है। कला में दो तरह की बुनावट है। वास्तविक बुनावट और Implied बुनावट। वास्तविक बुनावट के अंतर्गत सैंड पेपर, कॉटन बॉल, पेड़ की छाल या जानवरों के रोएँ शामिल हैं। Implied बुनावट एक तरीका है जिसमें वस्तु की सतह वैसी ही दिखती है जैसा महसूस होती है। बुनावट खुरदरी बुलबुला जैसा, कंकड़ीला हो सकता है लेकिन वास्तव मे ऐसा महसूस नहीं हो सकता है। इसे आरेखित या संरचित किया जा सकता है।

रंग (Colours) – रंगों से चित्र में सजीवता उत्पन्न होती है और उसका रूप निखर कर आता है। रंग वस्तु की वास्तविकता और समय को भी जाहिर करते हैं। नारंगी रंग – आग, ज्वाला, प्रकाश, गर्मी इत्यादि का प्रभाव दिखाता है। हरा और नीला रंग ठंडापन जाहिर करता है। रंगों से भाव भी प्रकट होता है, जैसे – लाल रंग से खतरा, खून, क्रोध, आग, युद्ध, जवानी, शक्ति इत्यादि। सफेद रंग शांति, पवित्रता और सम्मान का सूचक है। काला रंग दुःख और बुराई का भाव पैदा करता है। भूरा, ग्रे रंग बुढ़ापे को जाहिर करता है। पीला रंग – स्वर्ण, धन और सूर्य इत्यादि का प्रतीक है।

लाल, पीला और नीला रंग – यह तीनों प्राथमिक (Primary) रंग हैं। इनको रंगों के मिश्रण से नहीं बनाया जा सकता। बैंगनी, नारंगी, धानी, हरा ब्राउन इत्यादि इन्हीं रंगों के मिश्रण से बनते हैं। इनको गौण (Secondary) रंग कहा जाता है। सफेद, काला और भूरा, ग्रे रंग न्यूट्रल (Neutral) रंग कहलाते हैं। रंगों में सहयोगी और विरोधी रंग भी होते हैं जैसे –

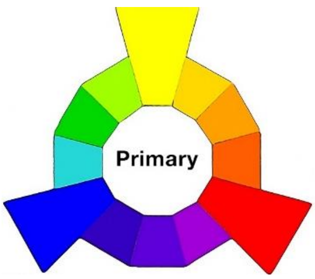

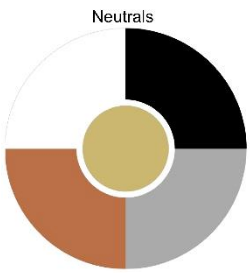

सहयोगी रंगः नारंगी तथा लाल, पीला तथा नारंगी, लाल तथा बैंगनी, नीला तथा आसमानी, बैंगनी तथा नीला, समुद्री हरा तथा धानी।

विरोधी रंगः लाल तथा समुद्री हरा, बैंगनी तथा धानी, नीला तथा पीला आसमानी नीला तथा पीला, आसमानी नीला तथा नारंगी, सफेद तथा काला।

चित्र कला

चित्र कला

स्थिर चित्रांकन
(Still-Life)

जीवन चित्रण
(Life study)

वस्तु चित्रण/स्थिर चित्रांकन (Object Drawing/Still-Life)

दृश्य कला में चित्रांकन एवं पेंटिंग एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। चित्रांकन की प्रथम सोपान रेखा चित्रांकन है। स्टिल लाइफ में यह अपेक्षा की जाती है कि चित्रांकन के लिए रखे गये वस्तु समूह का बिलकुल उसी रूप में चित्रण किया जाय और उस चित्र में सारे विवरण उसी प्रकार चित्रित किए जाएँ जैसे वे मूल रूप में दिखाई देते हैं अर्थात उनका हू–ब–हू चित्रण करने की अपेक्षा की जाती है। स्टिल लाइफ के लिए प्रयोग होने वाली सामग्रियों का इस्तेमाल आवश्यकतानुसार किया जाता है चित्रों को बनाते समय बच्चे विभिन्न कौशलों को भी सीखते–समझते तथा उन्हें प्रयोग में लाते हैं। इसके माध्यम से बच्चे आकार, रचनाओं और रंगों में संतुलन रखने का कौशल सीखते हैं। स्टिल लाइफ बनाते समय रंगों तथा रचनाओं की संगति, कन्ट्रास्ट के बारे में भी सीखते हैं।

दृष्टान्त चित्र (Illustrations): इसमें गतिशील या कार्य करते हुए चित्रों द्वारा हर प्रकार के भाव का चित्रण किया जाता है। जितने भी व्यक्ति हम अपने इर्द–गिर्द देखते हैं वे अवश्य कुछ–न–कुछ कर रहे होते हैं। चाहे बैठे हों या खड़े हों, लेटे हुए हों या किसी भी अवस्था में क्यों न हो, गतिशील प्रतीत होते हैं। ये सभी अवस्थाएँ दृष्टान्त चित्र के अन्तर्गत आते हैं। इलस्ट्रेशन पेंसिल, पेन तथा स्याही से अच्छी तरह बनाया जा सकता है, लेकिन आवश्यकतानुसार ब्रश, स्केच पेन, पेस्टल, क्रेयान इत्यादि का भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

दृश्य परिपेक्ष्य– (Perspective): वस्तुओं का चित्रांकन करते समय चित्र में वास्तविकता का आभास होना आवश्यक होता है। समीप की वस्तु अपेक्षा बड़ी दिखाई देती हैं इसी को दृश्य परिपेक्ष्य कहा जाता हैं समानांतर रेल की पटरियाँ लोपी बिन्दु (Vanishing point) पर एक–दूसरे से मिलती हुई दिखाई देती है।

Perspective को तीन भागों में बांटा जा सकता है।

1. **रेखीय परिपेक्ष्य– (Linear perspective):** कोई भी वस्तु जैसे–जैसे नजरों से दूर होती जाती है, वैसे ही लम्बाई–चौड़ाई में छोटी होती चली जाती है। उदाहरण स्वरूप चित्र देखें।

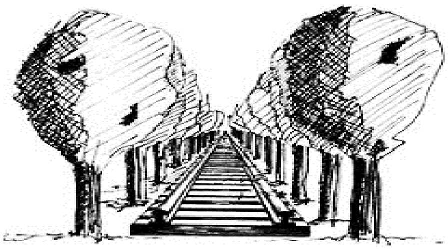

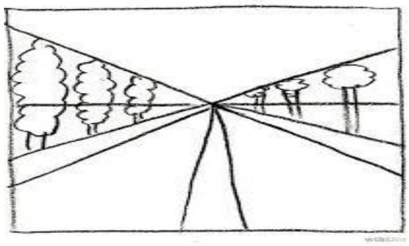

2. **वृत्तीय परिपेक्ष्य– (Circular perspective):** गोल रेखाएं नेत्र के समीप अधिक गोल दिखाई पड़ती है और दूर होने पर छोटी होती चली जाती है।

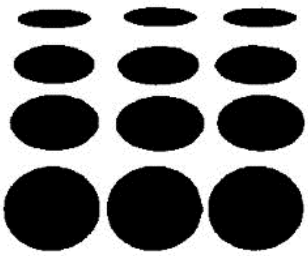

3. **रंग परिपेक्ष्य (Colour perspective):** दूर की चीजें हल्की और नीली दिखाई पड़ती है। नजदीक की वस्तुओं के वास्तविक रंग स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं।

रंगों (Colours) का प्रयोग: रंगों से चित्र में सजीवता उत्पन्न होती है और उसका रूप निखर कर आता है। कलाकार लाल, पीला और नीला को प्राथमिक (Primary) रंग मानते हैं। इनको रंगों के मिश्रण से नहीं बनाया जा सकता। बैंगनी, नारंगी, धानी, हरा ब्राउन इत्यादि इन्हीं रंगों के मिश्रण से बनते हैं। इनको गौण (Secondary) रंग कहा जाता है। सफेद, काला और भूरा, ग्रे रंग न्यूट्रल (Neutral) रंग कहलाते हैं।

चित्रांकन एवं पेंटिंग के उदाहरण

मिथिला पेंटिंग या मधुबनी पेंटिंग: यह क्षेत्र विशेष की सर्वाधिक लोकप्रिय कला है, जिसमें ज्यादातर कलाकार महिलायें है। सीता देवी, यशोदा देवी आदि ने विश्व स्तर पर इस कला को प्रदर्शित किया और क्षेत्र विशेष के लिए प्रेरणा की स्रोत बनी।

मिथिला कला मूल रूप से लोक संस्कृति और लोक व्यवहार को मूर्त रूप प्रदान करती है। इसमें पशु–पक्षी, कीट–पतंग, फुल–पत्ती, पेड़–पौधे और विभिन्न देवी–देवताओं की चित्रों को उकेरा जाता है। कुछ ज्यामितिय आकृति भी उकेरी जाती है, जो कुछ तांत्रिक कला का आभास कराती है।

विधियाँ और खोज: मिथिला चित्रकला मुख्य भितिचित्र, अरिपन, आलेखन में उकेरी जाती है। इसमें ज्यादातर प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता है जैसे–सेम के बीज, हल्दी, दीया के स्याही, नील, गेरूआ इत्यादि से विभिन्न रंगों का प्रयोग किया जाता

है। चित्र पटल पर हल्के गोबर का लेप लगाकर गाढ़े और स्पष्ट काले रंग से रेखायें खींची जाती है। प्रायः आकृति दोहरी रेखायें जो समानान्तर होती है, में खींची जाती है। आकृति उकेरने के पश्चात रंगों का प्रयोग किया जाता है। कई बार केवल काले या लाल रंग से आकृति उकेरी जाती है और आकृति को काले और लाल रंग की रेखाओं से भरा भी जाता है, जिसे कचनी और भरनी कहा जाता है। प्रायः दिवारों, कपड़ों और कागज पर इसकी चित्रकारी की जाती है। कपड़ों पर चित्रकारी करने के लिए नीब और स्याही का प्रयोग रेखाओं को खीचनें के लिए किया जाता है। प्राकृतिक रंगों की जगह अब प्रायः फेब्रिक रंगों का प्रयोग किया जाता है। कागज या कैनवास पर चित्रकारी के लिए वाटर कलर, पोस्टर कलर, एक्रेलिक, आयल रंगों का प्रयोग किया जाता हैं जहाँ इसके माध्यमों में बदलाव आया है वहीं इसके परंम्परागत विषय और आकृति में भी बदलाव देखा जा सकता हैं जैसे – प्राकृतिक रंगों की जगह, केमिकल रंगों का प्रयोग, तीज, त्यौहार, लोक संस्कृतिक के विषयों की जगह अब कुछ समकालीन विषयों का समावेश किया गया हैं समकालीन कला के साथ इसका फ्यूजन किया जा रहा है।

ब्लॉक प्रिंटिंगः किसी वस्तु को विशेषता प्रदान करने के लिए छपाई एक पसंदीदा विधि रहा है। भारत की प्राचीन कला विधियों में ब्लॉक प्रिंटिंग एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह कला इतना साधारण है जितना अंगुलियों के निशान लगाना। इसके लिए कई ऐसे साधारण तकनीक है जिसका उपयोग प्रारंभिक/प्राथमिक स्तर के बच्चों के साथ किया जा सकता है। ब्लॉक प्रिंटिंग का उपयोग सामान्यतः कपड़ों की छपाई के लिए भी किया जाता है। इसके लिए कई प्रकार के पारंपरिक और नवाचारी वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है।

सब्जियों के ब्लॉकः लकड़ी के ब्लॉक का इस्तेमाल करना अपेक्षाकृत प्राथमिक स्तर के बच्चों के लिए सही न हो अपितु कई अन्य माध्यमों का उपयोग इसके लिए किया जाता है। कई सब्जियों के कटे हुए हिस्सों को रंग में डुबों कर उनका इस्तेमाल ब्लॉक प्रिंटिंग में किया जाता है जैसे – भिंडी, आलू, फ्रेंचबीन इत्यादि। आलू को आधा काट कर उसके उपर कई प्रकार के डिजाईन बनाकर ब्लॉक की तरह प्रयोग किया जाता है। इनके माध्यम से कई प्रकार के पैटर्न भी बनाये जा सकते हैं।

प्राकृतिक छपाई (Nature Prints): कई ऐसी प्राकृतिक वस्तुएँ हैं जिनका प्रयोग ब्लॉक प्रिंटिंग में किया जाता है जैसे – विभिन्न प्रकार की पत्तियाँ, पंख, कागज के मुड़े हुए टुकड़े, धागों का गोला, पेंसिल का सिरा इत्यादि। इन वस्तुओं को कई प्रकार के रंगों में डुबो कर कागज और कपड़ों पर दबाया जाता है। फलतः कई प्रकार की कलात्मक आकृतियाँ उभर जाती हैं। बच्चे इस प्रकार की गतिविधियों में अत्यधिक रूची लेते हैं। प्रारंभिक कक्षा के बच्चों को इस माध्यम से कई कलात्मक चित्रों एवं पैटर्न का निर्माण कराया जा सकता है। साथ–ही इन्हे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में समावेशित भी किया जा सकता है।

हाथ/उंगली/अंगुठा से छपाई (Hand/Finger/Thumb Printing): आपने अपने घरों के दिवारों, विद्यालय के दिवारों पर बच्चों के पंजे एवं उंगलियों के रंग–बिरंगें छाप देखें होंगे। बच्चे जाने–अनजाने, खेल–खेल में इस प्रकार की कलात्मक क्रिया करते रहते हैं और ऐसा करके आनंदित होते हैं। दरअसल यह एक प्रकार का ब्लॉक प्रिंटिंग है। इसमें हाथ, उंगली और अंगुठों का प्रयोग ब्लॉक के रूप में किया जाता है। इनके उपयोग

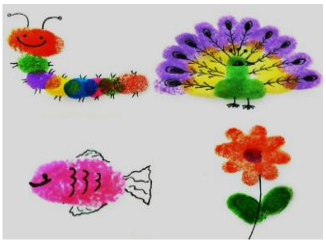

से कई प्रकार के सुन्दर चित्र एवं पैटर्न बनाये जा सकते हैं, आवश्यकता कल्पनाशीलता की है। बच्चे कल्पना की दुनिया में अनायास ही विचरण करते हैं, फलतः वे इस प्रकार के ब्लॉक प्रिंटिंग की विधा से अपने कल्पना को कोरे कागज और कपड़ों पर उकेरते रहते हैं। आपने सरकारी कागजों पर निरक्षरों के अंगुठों के निशान अवश्य ही देखें होंगे। क्या यह भी एक प्रकार का ब्लॉक प्रिंटिंग है? नववधू के पद चिह्न को अंकित करने की परंपरा भी भारत के कई क्षेत्रों में पाई जाती है। इनकी कलात्मकता भी ब्लॉक प्रिंटिंग की याद दिलाती है।

कुछ करें:

प्राकृतिक छपाई और हाथ, उंगलियों, अंगुठों, इत्यादि से छपाई छोटे बच्चे/बच्चियों में काफी लोकप्रिय रहा है। प्राथमिक कक्षाओं में इस तरह की छपाई शिक्षार्थियों से कराकर क्या–क्या किया जा सकता है? तैयार चित्रों की सहायता से कविता, कहानी के सृजन का अवसर, गणितीय संक्रियाओं की समझ सहित पर्यावरण के विभिन्न घटकों को समझने में किया जा सकता है, क्या? इसे वर्ग कक्ष में कर के देखें।

कोलाज एवं फ्लिप–बुक बनाना

कोलाज फ्रेंच शब्द है जिसका अर्थ है – साटना या चिपकाना। इसी तरह फ्लिप–बुक को भी विभिन्न प्रकार के चित्रों को एक प्रकार के कॉपी के रंगीन पन्नों पर चिपकाकर बनाया जाता है। कोलाज और फ्लिप–बुक बनाने में लगभग एक ही तरह का काम किया जाता है। जहां कोलाज बहुत बड़े चार्ट पेपर पर बनाया जाता है, वहीं फ्लिप–बुक के लिए अलग–अलग साईज के कॉपियों का प्रयोग किया जाता है। ऐसा भी नही है कि केवल विभिन्न चित्रों को काटकर चिपकाने का काम ही इसमें रहता है, बल्कि साथ में बहुत कुछ रेखांकित भी किया जाता है।

कोलाज में विभिन्न प्रकार की आकृतियों को उभारने के लिए भिन्न–भिन्न तरह के रंगीन कागज या कपड़े को आवश्यकतानुसार व्यवस्थित रूप से चिपकाना कोलाज है। कोलाज बनाने का आधार कागज, बोर्ड, प्लाई और कैनवास होता है। इसमें कलात्मक कार्य करने के लिए विभिन्न प्रकार के पदार्थो का उपयोग कल्पनाशीलता के आधार पर करते हैं जैसे – मुड़े हुये कागज, मैगजीन पेपर, समाचार पत्र, रंगीन कागज, पुराने कपड़े, बटन, धागा डब्बे, धातु (पत्तर) इत्यादि। कोलाज बनाने में प्रकृति में उपलब्ध सामग्री, रद्दी सामान या किसी प्रकार के बेकार समझें जाने वाली वस्तुओं का उपयोग कर अपनी कल्पनाशीलता से त्रिआयामी आकृतियों का निर्माण भी कर सकते हैं। अण्डे के छिल्के, डिस्पोजल ग्लास, रैपर, पुआल, छोटी छोटी लकडियाँ, शीशी, बोतल, फ्यूज बल्ब, पुराने बर्त्तन, फटे–पुराने कपड़े, रद्दी कागज, इत्यादि से कोलाज बनाया जा सकता है। कोलाज के निर्माण में बच्चों की रूचि ज्यादा बढ़ जाती है, क्योंकि इसमें चित्रांकन के लिए रेखाओं को व्यवस्थित करने जैसे कोई कठिन कार्य नहीं करना

पड़ता है। रंग और रेखाओं को व्यवस्थित करने के लिए कठिनाईयों का आभास होता है। परंतु कोलाज में बच्चे अपनी कल्पनाशीलता से विषयगत कई गम्भीर कार्य भी कर सकते हैं। जैसे प्रदूषण, स्वच्छ शहर आदि पर कोलाज बना सकते हैं। कोलाज बेकार की चीजों से बनाई जाने वाली ऐसी कलाकृति है, जो बच्चों के लिए रूचिकर है। विशेष कर वैसे बच्चों के लिए जो चित्राकंन और पेंटिंग में अपने को असमर्थ पाते हैं और कला के क्षेत्र में अपने को उपेक्षित मानते हैं, उन्हें प्रोत्साहित करता है।

विभिन्न विषयों पर बनने वाले कोलाज के उदाहरण निम्न हैं –

- प्रदूषण को दिखाने के लिए माचिस के डब्बे को गाड़ी के रूप में बच्चे प्रयोग कर सड़क पर धुआँ निकलते हुये दिखा सकते हैं।
- वृक्षारोपण को दिखाने के लिए बच्चे एक ग्लास में पौधे रखकर उसके पत्तियों वाले भाग को दिखा सकते हैं।
- स्वच्छता को दिखाने के लिए टॉफी, चॉकलेट और चिप्स के रैपर को चिपकाकर आकृति का निर्माण कर सकते हैं।

कोलाज का महत्त्वः

- इससे बच्चों में रचनात्मक गुणों का विकास होता है।
- यह वैसे बच्चों को कला के क्षेत्र में प्रोत्साहित करता है जो प्रभावी रेखांकन नहीं खींच पाते हैं और इस कारण कला के क्षेत्र में अपने को उपेक्षित महसूस करते हैं।
- यह बच्चों के एकाग्रता को बढ़ाता है, जब वे कागज के छोटे–छोटे टुकड़े को अपने विषय–वस्तु के निर्माण के लिए चिपकाते हैं।
- शिक्षक इसके माध्यम से नये–नये अवधारणाओं को प्रदर्शित कर सकते हैं। जैसे–फल, सब्जी आदि की आकृतियाँ।
- यह शिक्षार्थी के सीखने के वातावरण को रूचिकर और आनंददायी बनाता है।
- यह हाथ और आँख के बीच के समन्वय का महत्त्वपूर्ण विकास करता है।

मुखौटा

मुखौटा बच्चों के मन में विचित्रता का भाव भी उत्पन्न करता है, जिसके प्रति बच्चों का आकर्षण उनकी कल्पनाशीलता को विकसित करता है तथा वे इस कल्पना का प्रयोग कर अपनी रचनात्मक प्रवृत्ति का विकास करते हैं। मुखौटा बचपन से ही बच्चों के मनोरंजन का एक सर्वश्रेष्ठ साधन है। बच्चे उन्हें पहनकर आनन्दित हो झूमते रहते हैं। मुखौटों में अतीत और वर्तमान का एक समन्वय है। जो भविष्य को भी अपनी कड़ियों में जोड़ लेता है। मुहल्लों में या मेलों में अधिकतर पशु–पक्षी, राक्षस या किसी भी देवी–देवता के मुखौटों

का क्रय–विक्रय होता है। हमारा अनुभव हमें बताता है कि हर व्यक्ति ग्यारह साल की उम्र के बाद किशोर–अवस्था और उसके बाद भी सारे जीवन–काल तक किसी–न–किसी कला–प्रवृत्ति को अपने भाव–प्रकटन का माध्यम बनाये रखता है अगर वह ऐसा न करें तो उसकी प्रवृत्तियों को बाहर निकलने का मौका नहीं मिलेगा। मुखौटों के माध्यम से शिक्षा प्रणाली की कठिन पद्धति को भी रोचक एवं सरल बनाया जा सकता है। बच्चों को पारंपरिक तरीके से पाठ्यपुस्तक द्वारा पढ़ाई करना कई बार नीरस लगता हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षण में मुखौटों का प्रयोग बच्चों में नई रूचि जगाता है। बाल्यावस्था में दादी–नानी के मुँह से पशु–पक्षी की कथा या कहानी सुनते समय बच्चा उनके चरित्रों को कल्पना में बना लेता है और आगे चलकर यही पशु–पक्षी नाटक अथवा नृत्य–नाटक के माध्यम से मुखौटा पहनकर सजीव हो जाते हैं। बच्चों को इनके माध्यम से नैतिक शिक्षा दी जा सकती है तथा अन्य संस्कारों को भी डाला जा सकता है। विष्णु शर्मा रचित 'पंचतंत्र' की कहानियों द्वारा बच्चों में मानवीय गुण, सहयोग, सच्ची मित्रता, साहस इत्यादि गुणों का विकास किया जा सकता है। जिसकी हर कहानी के अंत में एक सीख है जो जीवन को प्रभावी बनाती है। मुखौटा किसी भी कला में पढ़ाये जाने वाले पाठ्यक्रम को सुरूचिपूर्ण बना सकता है। इसको बनाने में साधारण उपकरण तथा कम खर्चीली सामग्री का प्रयोग भी किया जा सकता है। यह किसी भी आयु वर्ग के साथ में बनाया जा सकता है तथा मुखौटे को बनाने में बच्चों को मजा भी आता है। पाश्चात्य देशों में भी बच्चों की शिक्षा में अनेक प्रकार के मुखौटों को शामिल किया गया है, जैसे–पशु–पक्षियों के मुखौटे, स्पाइडर मैन, बैट मैन, मिक्की माउस, डोनाल्ड डक इत्यादि। इनके माध्यम से अनेक प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। जो बाल मनोरंजन के साधन माने जाते हैं और बालक उनमें रूचि भी लेते हैं।

मुखौटा बनाना अथवा सीखने की पद्धति में बच्चे का मानसिक संतुलन और एकाग्रता बढ़ती है। शिक्षा ग्रहण करने के लिए मानसिक संतुलन, एकाग्रता एवं ग्राह्य शक्ति का होना वांछनीय है जो मुखौटा बनाते समय अपने आप किए गए कार्यों द्वारा मुखर हो जाती है। मुखौटा बनाते समय बच्चे के मस्तिष्क के साथ–साथ उसके शरीर के अन्य अंग भी सम्मिलित होते हैं तथा बच्चा स्वयं निर्णय भी लेता है कि उसको मुखौटा किस प्रकार बनाना है, मुखौटा किस माध्यम द्वारा बनाया जाएगा, उसमें कौन–सा रंग किया जाएगा तथा उसे किस विधि द्वारा बनाया जाएगा। इस प्रकार इन प्रश्नों को लेकर और उनके उत्तरों को ढूंढ बच्चा अपने मस्तिष्क और हाथों के समन्वय द्वारा मुखौटे की रचना करता है।

बच्चों से मुखौटा बनवाने के लिए शिक्षक को मुखौटा बनाने की पूरी जानकारी होनी चाहिए कि वह किस प्रकार के माध्यमों का प्रयोग कर मुखौटों का निर्माण करवा सकता है। इसके लिए शिक्षक अपने काम की पद्धति तथा माध्यम का स्वयं चुनाव कर सकता है। साधन अथवा माध्यम का चुनाव बच्चे के आयु वर्ग एवं रूचि पर निर्भर करता है। लेकिन एक ही माध्यम में हमेशा ही अपने भावों का प्रकट करते रहने से बच्चे अरूचि महसूस करने लगते हैं। बच्चे हमेशा नवीनता चाहते हैं और उन्हें जो नए–नए अनुभव मिलते हैं, उनका प्रकटन हमेशा एक ही माध्यम द्वारा नये–नये ढंग से नहीं हो सकता इसलिए आत्म प्रकटन के लिए माध्यम बदल–बदल कर काम करना जरूरी होता है।

बच्चों के कार्य स्थान में तरह–तरह के माध्यम रखने चाहिए जिससे वह अपनी भावनाओं को जब चाहे किसी भी माध्यम द्वारा प्रकट कर सकेगा। बच्चों द्वारा मुखौटा बनाने की सामग्री के विषय में बच्चों को अवगत भी कराया जा सकता है तथा कुछ सजावटी सामग्री तथा घर में आसानी से उपलब्ध सामग्री को उनके द्वारा मंगवाया भी

जा सकता है। बच्चों द्वारा मुखौटा बनाने की मूल सामग्री में कागज, गत्ता, पेपर मेशी, प्लास्टर ऑफ पेरिस, मिट्टी इत्यादि का प्रयोग किया जा सकता है।

मिरर इमेज –मिरर इमेज वैसी कलाकृति है जिसमें एक ही तरह की दो आकृति होती है दोनों आकृति बराबर आकार वाला तथा आमने सामने होती है इस कलाकृति को बनाने के लिए दो अलग–अलग रंगों के चार्ट पेपर कार्डबोर्ड को लेकर इसके एक चौथाई पेपर में बनाया जा सकता है आवश्यकतानुसार आधे भाग या पूरे चार्ट पेपर से भी बनाया जा सकता है सर्वप्रथम चार्ट पेपर को मोड़ कर दो भाग में बांट लेते हैं ऐसा दो अलग–अलग रंग वाले चार्ट पेपर में यह काम होता है इसे उजले और काले रंग के चार्ट पेपर पर किया जा सकता है किसी एक चार्ट पेपर जिसे मोड़कर दो भाग बनाया गया है इसे दो भाग में मोड़कर काटना या फाड़ना नहीं है सिर्फ मोड़ कर दो बराबर भाग में रखना है किसी भी एक भाग में अपनी पसंद की आकृति को रेखांकित कर उसे कैंची या Paper Knife की सहायता से काट कर निकाल लेना है दूसरे रंग के चार्ट पेपर पर इसके कटे हुए आकृति को चिपका देंगे तथा जिस भाग से इस आकृति को काटा गया है उस चार्ट पेपर के खाली आकृति को भी सावधानी के साथ थी उसके बगल में समानांतर चिपका देंगे इस तरह दो रंग वाले चार्ट पेपर पर दो रंग में एक आकृति वाले दो चित्र आमने–सामने दिखेंगे यह मनमोहक आकृति इमेज है इससे गणित की अवधारणा को स्पष्ट किया जा सकता है।

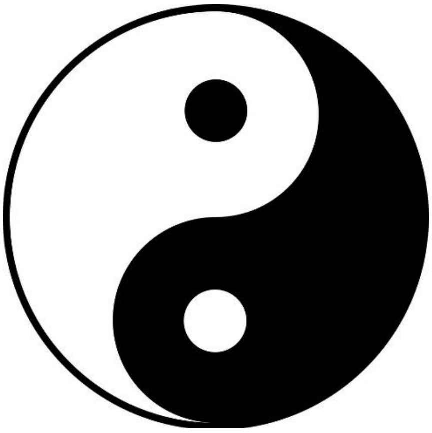

फोटोग्राफीः

पहले श्वेत–श्याम फोटोग्राफी, फिर रंगीन फोटोग्राफी, Manual Camera, Automatic Camera से Digital Photography कैमरा तक, आज कितना कुछ बदल चुका है। मोबाइल में उपलब्ध कैमरा आज कितना सुलभ हो गए हैं तथा फोटोग्राफी को कितना सरल और उपयोगी बना दिए हैं। इंटरनेट तथा मोबाइल के उपयोग से अब फोटोग्राफी सम्बन्धी जानकारियाँ तथा आवश्यक चित्र आसानी से उपलब्ध हैं।

रघु राय – बांग्लादेश युद्ध, आपातकाल और भोपाल गैस त्रासदी के व्यापक कवरेज ने राय को फोटोग्राफी कला का बेताज बादशाह बनाया। राय को मदर टेरेसा और इंदिरा गांधी पर अपनी शानदार श्रृंखलाओं के लिए भी जाना जाता है।

कम्प्यूटर आर्ट (Computer Art):

यह कला भी समकालीन कला का ही हिस्सा है। आज हर कुछ कम्प्यूटर के माध्यम से बनाये या विकसित किए जा रहे हैं। कला के विभिन्न पक्षों को भी कम्प्यूटर द्वारा सरल तरीके से किया जा सकता है। वस्तुतः कम्प्यूटर कला में तकनीक का सहज उपयोग है। विभिन्न प्रकार के ग्राफिक्सचित्रों का चित्रण (mixing) त्रिविमीय प्रभाव आदि का प्रयोग कला को और भी विशिष्टता प्रदान करता है।

कुछ करें:

कक्षा–1 और 2 में से भाषा की किसी भी पुस्तक से एक–एक इकाई का चयन करें। सम्बंधित इकाई यथा–कहानी, कविता, एकांकी इत्यादि की प्रस्तुति मुखौटे के सहयोग से करने की योजना तैयार करें और बच्चों के सक्रिय भागीदारी से उसका क्रियान्वयन करें।

कागज के लिफाफे से मुखौटा बनाना

कक्षाः नर्सरी, आयु वर्ग – 4–5 वर्ष

पूर्वायोजनाः शिक्षक कुछ रोचक एवं सजावटी सामग्री को एकत्र कर एक डिब्बा बना लें।

सामग्रीः कागज का एक बड़ा लिफाफा जिसको पहना जा सके, कैंची, सजावटी सामग्री।

विधिः

- कागज के मुखौटे के लिए कागज का ऐसा बड़ा लिफाफा ले जो बच्चे के सिर में भली प्रकार आ जाए।
- यदि यह लिफाफा बड़ा है तो सिरे के दोनों पक्षों को औंधें, आकार में काट दें ताकि वह बच्चे के कंधे पर टिक जाए और गिरे नहीं।
- बच्चा लिफाफे को पहन ले तथा हाथ के स्पर्श द्वारा आँखों की स्थिति का पता लगाए एवं उसे चिह्नित कर लें।
- लिफाफे पर चिन्हित स्थान को आँखों के लिए काट दें ताकि लिफाफे पर नाक, मुँह, बाल इत्यादि इच्छानुसार चिपका दे अथवा रंग कर दें।
- बच्चे अपनी कल्पनानुसार अनेक सामग्री जैसे–लकड़ी की छीलन, ऊन के टुकड़े, मोती, गोटा, रिबन, बोतल के ढक्कन, इत्यादि का प्रयोग अपने मुखौटों को सजाने के लिए कर सकते हैं।
- इस प्रकार का मुखौटा बनाना, बच्चों के लिए मजा एवं प्रेरणा का स्रोत सिद्ध होता है।

सावधानियाँः शिक्षक इस बात का ध्यान अवश्य रखें कि वह बच्चे की वास्तविकता से विचलन को हतोत्साहित न करें क्योंकि छोटे बच्चों के साथ इस प्रकार का विचलन सामान्य है।

कागज के मुखौटे बनाना

कक्षाः 1–5 (प्राथमिक), आयु वर्षः 6–11 वर्ष

पूर्वायोजन : कागज के मुखौटे बनाने से पूर्व शिक्षक विभिन्न प्रकार के कागजों के विषय में बच्चों को जानकारी दें। बच्चों को किसी भी प्रकार का सृजनात्मक मुखौटा बनाने के लिए प्रेरित करें। किसी विशेष प्रकार के मुखौटों को बनवाने के लिए विभिन्न स्रोतों से जानकारी एकत्र कर कक्षा में जांए।

सामग्रीः

सादे कागज (Cartridge sheet, Drawing sheet, Chart paper)

रंगीन कागज (Pastel sheet, Glaze paper, Poster Paper, etc)

रंगीन कागज का A4 आकार या समान टुकड़ा, कैंची, चिपकाने वाला पदार्थ

विधिः

A4 आकार के कागज को आधे में मोड़े। ये मोड़ क्षैतिज या खड़ा कुछ भी हो सकता है, इसका निर्णय मुखौटे में बनने वाले चरित्र पर निर्भर करता है। अगर हमारे चरित्र का मुख लम्बा है तो कागज को खड़े में मोड़ा जाएगा। जबकि चरित्र के चौड़े मुख की रूप रेखा के लिए कागज को क्षैतिज में मोड़ा जाना है। कल्पना के किसी भी चरित्र को मुखौटे का आधार दिया जा सकता है।

मोड़े गए कागज में चरित्र के अनुसार उसकी बाह्य रेखा बनाएं तथा इस बात का ध्यान रखें कि यह रेखा कागज के अधिकांश भाग का प्रयोग करते हुए बनाई जाए।

मुखौटे में सबसे महत्वपूर्ण स्थान उसकी आँखें होती है इसलिए उसके स्थान का निर्धारण भी भली प्रकार होना चाहिए वरना बिना किसी माप के आँखों को काटने से दिखाई नहीं देगा। इसके लिए सबसे आसान तरीका यह है, सबसे पहले अपनी आँखों को बंद कर लें तथा अपने हाथ की प्रथम ऊंगली (तर्जनी) तथा तीसरी ऊंगली (अनामिका) को आँखों के मध्य रखें तथा इस दूरी को कागज पर चरित्र के माथे का

भाग छोड़कर हस्तांतरित करें व आँखों के लिए निशान बनाएं। इन निशानों को बनाने पर यह निश्चित कर लें कि बाकी नीचे का बचा कागज एक तिहाई होना चाहिए। अब इस निशान के आस–पास किसी भी आकार में आँखों से देखने के लिए उस जगह को काट सकते हैं।

मुखौटे की नाक चरित्र पर निर्भर करती है जैसे किसी पशु की नाक मुखौटे की बाह्य रेखा के पास नीचे नथुने के रूप में होगी तो वहीं मनुष्य की नाक को आँखों के मध्य से शुरू करके बनाया जाएगा। इसके लिए एक अन्य कागज को लंबाई में मोड़कर वर्ण रेखा में काटा जाना चाहिए तथा उभरी हुई नाक के लिए उसमें उभार देकर चिपकाया जाना चाहिए।

मुखौटे में मुँह के लिए अनेक प्रकार के भावों को भी सम्मिलित किया जा सकता है। उसमें या अन्य कागज में भी भावों की रूप रेखाओं को काटकर चिपकाया जा सकता है।

मुखौटे को त्रिआयामी रूप देने के लिए उसमें ऊपर अथवा नीचे एक इंच का निशान बना कर काट लें तथा उसको आपस में ऊपर नीचे चिपकाएँ इस प्रकार मुखौटे को उभार देकर उसे और सुंदर बनाया जा सकता है। अगर मुखौटा सफेद कागज पर बनाया गया है और उसे रंगीन बनाना है तो उसे रंगों द्वारा रंगा जा सकता हैं। यदि वह मुखौटा किसी विशेष संस्कार या जाति एवं देश का है तो उसकी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए उसमें रंग तथा उसका सौंदर्यीकरण करना होगा। बच्चे पक्षियों के पंख, उन के बाल, लकड़ी की छीलन इत्यादि से मुखौटे के बालों का निर्माण कर सकते हैं अथवा सजावट भी कर सकते हैं। सजावटी सामग्री उपलब्ध न होने पर मुखौटे को रंगों द्वारा भी सजाया जा सकता है। मुखौटों को मुख पर बांधने के लिए दोनों किनारों पर छेद कर उसमें डोरी, रिबन इत्यादि बांध दें या कागज अथवा अखबार की पट्टी पर मुखौटे को लगाकर भी मुख पर लगाया जा सकता है।

निर्देशः कला एवं शिल्प की अनेक गतिविधियों में बचे हुए कागज एवं रंगों का प्रयोग कागज के मुखौटे बनाने में किया जा सकता है तथा विद्यार्थियों को भी घर में उपलब्ध सजावटी सामग्री लाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। इस प्रकार अनेक माध्यमों का प्रयोग कर जिन मुखौटों का निर्माण किया जाएगा उनमें विविधता भी होगी।

सावधानियाँः बच्चों के लिए या बच्चों से मुखौटे बनवाते समय स्टेपलर का प्रयोग न करें। अगर बाँधने की पट्टी में अथवा डोरी इत्यादि लगाने में इसका प्रयोग किया जाता है तो बहुत सावधानियाँ बरतनी होगी। स्टेपलर पिन बहुत नुकीले होते हैं, जरा सी असावधानी से बच्चे को खरोच लग सकती है। इसलिए इस प्रकार की नुकीले वस्तुओं का प्रयोग सावधानी से किया जाना चाहिए या बहुत कम प्रयोग किया जाना चाहिए। बच्चों के साथ काम करते हुए इस बात का ध्यान रखें कि धारदार चाकू या कैंची से वे अपने को चोटिल न कर लें क्योंकि बच्चों की सहज प्रवृति होती है कि वे किसी भी चीज को मुँह में डाल लेते हैं।

गतिविधि

विद्यालयों के वार्षिक खेल प्रतियोगिताओं, वार्षिक उत्सवों, त्यौहारों इत्यादि के समय अनेक प्रकार के पशु–पक्षियों तथा अन्य प्रकार के मुखौटों का प्रयोग किया जा सकता है। आप अपने विद्यालय में कुछ अलग–अलग प्रकार के मुखौटों को अपने विद्यार्थियों को बनाने के लिए कहें तथा उसकी प्रदर्शनी लगाएं।

पुतली बनना (Puppet Making)

पुतली एक निर्जीव वस्तु है जिसे पुतलीकार द्वारा सजीव (चेतन) रूप में प्रदर्शित किया जाता है। पुतलीकला एक प्राचीन कला माध्यम है जो प्रदर्शन कला के एक सशक्त स्वरूप में व्यक्त होता है। प्राचीन धार्मिक कथाओं को पुतली नाटकों के माध्यम से प्रदर्शित करने की एक परंपरा रही है। पुतली के कई प्रकार पाये जाते हैं जो उनके बनावट की सामग्री और इस्तेमाल करने की विधियों पर निर्भर करती है। पुतली के माध्यम से किसी भी संदेश को प्रभावी रूप में संप्रेषित किया जा सकता है।

शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में पुतली का समावेश इसे प्रभावी, रोचक एवं आनंददायी बनाता है। आवश्यकता यह है कि इसके निर्माण और संचालन की समझ हमारे शिक्षकों को दिया जाय। प्रारंभिक स्तर पर बच्चों के द्वारा विभिन्न प्रकार के पुतली का निर्माण और संचालन मुश्किल कार्य नहीं है। इसके लिए योजनाबद्ध तरीके से बच्चों में इनका कौशल विकसित किया जाय तथा इस अति प्रभावी माध्यम से विभिन्न विषयों की प्रस्तुति शिक्षक और शिक्षार्थियों द्वारा सम्मिलित रूप से कराया जाय। यह देखा गया है कि बच्चे इन क्रियाकलापों में अत्यन्त रूचि लेते हैं तथा थोड़े ही समय में अपने–अपने पुतली और मास्क (मुखौटा) बना लेते हैं तथा समय–समय पर इसका प्रदर्शन भी करते हैं। पुतली के निर्माण में साधारण वस्तुओं का इस्तेमाल होता है जो परिवेश में बहुतायात में पाया जाता है। कभी–कभी कबाड़ से जुगाड़ की कहावत भी सार्थक होने लगती है। जैसे – धागा, कागज के बेकार टुकड़े, कागज का थैला, समाचार पत्र, बटन, बेकार ऊन, पुराने कपड़े, मोजा, रूई, गोंद, फेविकोल इत्यादि। इस प्रक्रिया में बच्चे बेकार सामग्री का बेहतर उपयोग भी करना सीखते हैं। सामान्यतः पुतली (puppet) निम्न प्रकार के होते हैं।

- दस्ताना पुतली (Glove puppet)
- छड़ पुतली (Rod puppet)
- धागा पुतली (String puppet)
- छाया पुतली (Shadow puppet)

उपर्युक्त पारंपरिक पुतली के साथ–साथ कुछ ऐसी पुतली भी होती है जिन्हें कक्षा में या शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के तहत बच्चों के द्वारा बनाया जा सकता है। आगे इनमें से कुछ का विवरण प्रस्तुत है।

उंगली पुतली (Finger puppet): पुतली कला का यह एक अत्यन्त साधारण तरीका है। बिना किसी विशेष औपचारिकता के उंगली पर चरित्र के निर्माण के लिए आँख, मुख आदि मुखकृतियों को अंकित किया जाता है तथा एक कपड़ा बांध कर पुतली का निर्माण कर लिया जाता है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में उंगुली पुतली, अत्यन्त प्रभावी एवं झटपट प्रदर्शन के लिए तैयार मिलता है।

मोजा पुतली (Socks Puppet): नाम के अनुरूप इस प्रकार की पुतली मोजा (Socks) से बनाया जाता है। मोजा में आवश्यकतानुसार, मुँह, आँख, बाल इत्यादि विशेष अंग प्रदर्शित किये जाते हैं। विशेष कर मुँह को संचालन योग्य बनाया जाता है तथा इसे हाथ में दस्ताने की तरह पहनकर संचालित किया जाता है। मोजा पुतली में मुख्य संचालक अंग मुख होता है इसलिए इसे Muppet भी कहा जाता है। चरित्र के अनुसार इनमें विशेषताओं को प्रदर्शित किया जाता है, जैसे – पुरूष, स्त्री, बालक, बालिका, पशु, पक्षी इत्यादि। शिक्षक आवश्यकतानुसार अपना–अपना मोजा पुतली तैयार कर सकते हैं, तथा बच्चों से भी इसका निर्माण करवा सकते हैं। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में इस प्रकार के पुतली का प्रयोग अत्यन्त प्रभावी होता है। यह बच्चों को सीखने का आनंददायी वातावरण प्रदान करता है कला समावेशी शिक्षा का यह एक अत्यन्त प्रभावी एवं सशक्त माध्यम है। आवश्यकता यह है कि इसका इस्तेमाल कक्षा शिक्षण में होशियारी से किया जाय।

दस्ताना पुतली (Glove Puppet): दस्ताना पुतली, पुतली कला का एक मज़ेदार रूप है। इसके लिए यह एक प्रबल पक्ष है कि इस प्रकार की पुतली को एक बार निर्माण कर लेने के बाद लम्बे अरसे तक इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके निर्माण की विधियाँ, निर्माण में उपयोग होने वाली सामग्री पर निर्भर करती है। सामान्यतः यह पेपर–मैसी से बनाया जाता है, परन्तु कभी–कभी इनके निर्माण में विभिन्न माध्यमों का सहारा भी लिया जाता है, जैसे – थर्मोकोल, प्लास्टीक की गेंद आदि। दस्ताना पुतली बनाने के लिए पेपर की लुगदी बनाई जाती है तथा इसे आवश्यकतानुसार फेवीकोल या गोंद मिलाकर पेपर मैसी तैयार कर लिया जाता है। अब किसी गोल आधार जैसे बैलून, गेंद आदि का सहारा लेकर पुतली के सिर का आकार बनाया जाता है। इस बात का ध्यान रखा जाता है कि बनाये गये आकार के नीचले सीरे में एक छेद बनाया जाय जिसमें तर्जनी समाया जा सके जो पुतली के गर्दन का बोध कराता है। अब पेपर

मैसी से पुतली के सिर के विभिन्न अंग जैसे आँख, नाक, कान, मुँह इत्यादि का निर्माण कर लिया जाता है। इस प्रकार बनाये गये आकृति को सुखा लिया जाता है तथा चरित्र के अनुसार आकर्षक रंगों में रंग लिया जाता है। पुतली का सिर तैयार हो जाने के बाद उसके वस्त्र बनाये जाते है जिसमें दो हाथ इस प्रकार बनाये जाते है जो मध्यमा और अंगुठे में आसानी से पहने जा सके। इस प्रकार दस्ताना पुतली तैयार कर लिया जाता है, तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में इनका इस्तेमाल आवश्यकतानुसार किया जाता है। इसके संचालन में पाठों का नाट्य रूपांतरण आवश्यक है। पुतलीकार के रूप में शिक्षक और बच्चे आवश्यकतानुसार संवाद संप्रेषण के माध्यम से पाठ एवं आवश्यक सूचना का प्रदर्शन प्रभावी एवं आनंददायी तरीके से करते हैं। कभी–कभी पुतली के निर्माण में पेपर मैसी के स्थान पर अन्य माध्यम जैसे – थर्मोकोल आदि का प्रयोग भी किया जाता है। दस्ताना पुतली के संचालन में मध्यमा, तर्जनी एवं अंगुठे का उपयोग किया जाता है। तर्जनी में पुतली का सिर पहना जाता है जबकि मध्यमा और अंगुठे को पुतली के दो हाथों की तरह संचालीत किया जाता है। पुतली संचालन में इन्ही तीनों उंगलियों की मदद ली जाती है। प्रभावी संचालन और संवाद के सम्प्रेषण में तारतम्यता रखा जाता है।

छड़ पुतली: यह शैली वैसे तो दस्ताना पुतली का ही अगला चरण है लेकिन यह उससे काफी बड़ी होती है तथा नीचे छड़ो पर आधारित रहती है और उसी से संचालित होती है यह कला पश्चिम बंगाल तथा उड़ीसा में बहुत लोकप्रिय है।

छाया पुतली: इस शैली में पुतलियां चपटी होती हैं। अधिकांशतः यह चमड़े से बनाई जाती हैं इन्हें पारभासी बनाने के लिए संशोधित किया जाता है। पर्दे के पीछे से प्रदीप्त किया जाता है और पुतली का संचालन प्रकाश स्रोत तथा पर्दे के बीच से किया जाता है। दर्शक पर्दे के दूसरी तरफ छायाकृतियों को देखते हैं। यह छायाकृतियां रंगीन भी हो सकती हैं। यह शैली उड़ीसा, केरल, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और तमिलनाडु में बहुत लोकप्रिय है।

धागा पुतली: यह शैली अत्यंत समृद्ध और प्राचीन है। इसमें पुतली को अनेक जोड़ युक्त अंग तथा धागों द्वारा संचालित किया जाता है। राजस्थान, उड़ीसा, कर्नाटक और तमिलनाडु में यह शैली बहुत लोकप्रिय है।

कुछ करें:

प्रारम्भिक स्तर की कक्षा के शिक्षार्थियों को ध्यान में रखकर पुतली कला के प्रदर्शन हेतु एक संवाद लिखें। अध्ययन केन्द्र और वर्गकक्ष में इसका प्रदर्शन करें। शिक्षार्थियों द्वारा भी इसका प्रदर्शन हो, सुनिश्चित करें।

मिट्टी/पेपर मैसी एवं क्ले से आकृतियाँ बनाना (Clay Moulding)

आपने बच्चों को गीली मिट्टी से विभिन्न प्रकार की आकृतियां बनाते हुए देखा होगा। बच्चे चाहे किसी उम्र के हो, गीली मिट्टी से खेलना पसंद करते हैं। बच्चे अपने आस–पास की वस्तुओं को बड़े ही ध्यान से देखते हैं और विभिन्न वस्तुओं की विशेषताओं को पहचानने की कोशिश करते हैं। मिट्टी से विभिन्न प्रकार के पशु–पक्षियों की आकृति बनाते हुए वे उनके आकार–प्रकार मुखाकृति आदि का ध्यान तो रखते ही हैं कभी–कभी इनके बारीक अन्तर को भी अभिव्यक्त करते हैं। प्रारंभिक कक्षाओं में शिक्षण अधिगम सामग्री भी इनके सहयोग से निर्मित किये जा सकते हैं। दरअसल बच्चों की यह आरंभिक प्रवृति शिल्पकला को बढ़ावा देती है। बच्चों में विभिन्न प्रकार के आकर्षक एवं पारंपरिक शिल्प के गढ़ने की क्षमता का विकास होता है। विभिन्न

प्रकार की आकृतियाँ बनाने के लिए गीली मिट्टी के अलावे अन्य कई माध्यम भी है, जैसे पेपर मैसी, क्ले आदि।

इस माध्यम से बच्चों को विभिन्न शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में संलग्न किया जा सकता है, जिससे उनमें कला के साथ–साथ संबंधित विषयों की प्रर्याप्त समझ विकसित हो सकेगी। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि कला समावेशी शिक्षण में कला के इस माध्यम का अत्यन्त प्रभावी स्थान है। इस प्रक्रिया से हम बच्चों में निम्नांकित दक्षताओं का विकास कर पाते हैं।

1. इस प्रक्रिया से बच्चों में ''आँख–हाथ समन्वय'' का विकास होता है।
2. इससे सूक्ष्म क्रियात्मक क्षमता का विकास होता है।
3. इससे रचनात्मकता को बढ़ावा मिलता है।
4. यह एकाग्रता को बढ़ावा देता है तथा कला गतिविधि में रूची पैदा करता है।
5. इस प्रकार की गतिविधियों के दौरान सभी ज्ञानेन्द्रियां क्रियाशील रहती हैं, फलतः शिक्षण अधिगम प्रक्रिया तीव्र हो जाता है।
6. इस प्रक्रिया में शिक्षार्थी कर के सीखता (Learning by doing) है। फलतः सीखी गई दक्षता लम्बी अवधि तक बनी रहती है।

आइये पेपर मैसी बनाना सीखते हैं।

पेपर मैसी का कार्य दो प्रकार से किया जाता है –

पेपर मैसी के खिलौनों को बनाने के लिए पहले पेपर मैसी या लुगदी बनाई जाती है। इसके लिए अखबार के छोटे–छोटे टुकड़े कर उनको चार–पाँच दिन पानी में भिगोया जाता है। दो दिन में इसका पानी बदलना होता है वरना इससे बदबू आने लगती है। तत्पश्चात इस भीगे हुए कागज को बारीक कूटा जाता है। इसको लकड़ी की मोगरी से कूटा जाता है। फिर इसे बबूल, नीम या छावड़े के पेड़ का गोंद डालकर रख दिया जाता है। नमी के कारण गोंद गल जाता है तब इसमें खड़िया मिट्टी मिलाकर मिश्रण को मल कर आटे जैसा तैयार किया जाता है और आकृतियाँ बनाई जाती हैं। पेपर मैसी के सभी खिलौनों को हाथ से बनाया जाता है।

पेपर मैसी तैयार करने के लिए गत्ते से बनी ट्रे का प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए अंडे रखे जाने वाली ट्रे को पानी में भिगो कर उसमें चाक मिट्टी व गोंद मिलाकर पेपर मैसी के मुखौटे तैयार किये जाते है। यह विधि जल्दी पेपर मैसी बनाने के लिए प्रयोग की जाती है।

पेपर मैसी के पहले प्रकार में किसी भी वस्तु को साँचा बनाकर उसके ऊपर कागज की अनेक परतों को चिपकाने वाले पदार्थ से चिपकाया जाता है इसके लिए लेई एक सस्ता एवं टिकाऊ माध्यम है, इन परतों के बीच–बीच में मोटे भूरे कागज या कपड़ो की कतरनों की भी परत लगाई जाती है, जो साँचे को मजबूती प्रदान करती है।

गतिविधि

शिक्षक उक्त गतिविधि को कक्षा में या कक्षा के बाहर करवा सकते हैं।

- बच्चों को समूह में पूर्व से बनाये गये गीली मिट्टी/क्ले या पेपर मैसी दें।
- प्रत्येक समूह को अपने कल्पना से विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ बनाने का निर्देश दें।
- समूहों को आवश्यकतानुसार रंगों से आकृतियों को सजाने को कहें।
- अन्त में इनकी प्रदर्शनी लगवायें।

6. कागज से शिल्प

कागज को विभिन्न डिजाईनों एवं पैटर्नो में काटना एक कला है। आपने विभिन्न उत्सवों में झण्डे–पताकों से परिसर को सजाया जाना देखा होगा। विभिन्न प्रकार के तोरण द्वार बनाने में भी कागज के शिल्प का व्यवहार एक आम बात है। विद्यालय में मनाये जाने वाले उत्सवों में कागज काट कर विभिन्न झण्डे–पताके बनाने में बच्चे विशेष रूचि लेते हैं। कागज शिल्प लोक कला का एक प्राचीन उदाहरण है। सम्पूर्ण विश्व में इस कला को विभिन्न तरीके से आत्मसात किया गया है। कागज को काटकर उनसे बनाई गई आकृतियों से रंगोली बनाये जाने की विधा में बच्चे माहिर होते हैं। कागज काटने की भारतीय कला है सांझी। वर्तमान समय में कागज काटने की कला का व्यवहार मुख्यतः सजावट में किया जाता है। दीवार, खिड़की, दरवाजा, स्तम्भ, आईना, लैम्प इत्यादि को उत्सवों में सजाने के लिए रंगीन कागज को तरीके से काट कर लगाया जाता है।

कागजों को कलात्मक रूप से हमेशा हाथ के द्वारा ही काटा जाता है, न कि मशीन से क्योंकि यह मानव के कल्पनाशीलता को अभिव्यक्त करती है। कागज काटने की दो विधियाँ हैं – एक कैंची के द्वारा और दूसरा चाकू के द्वारा। कागज के शिल्प निर्माण में बच्चे पूर्ण तन्मयता के साथ संलग्न रहते हैं। शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में इस विधि से बच्चों के अन्दर छिपी हुई दक्षताओं को आसानी से बाहर लाया जा सकता है।

कागज को मोड़ना भी एक कला है। बचपन में आपने कागज के नाव बरसाती नालों में बहाये होंगे। अपने दोस्तों से आपने ऐसे नाव बनाने के लिए सीखा होगा। इस कला

में आप महारत भी हासिल कर लिया होगा। इसी प्रकार कागज के जहाज बनाने और उड़ाने का आनंद आज भी आपको अपने बचपन में लौटने को विवश कर देती होगी। क्या आपने सोचा है कि यह भी एक कला है। आमतौर पर इस कला को ओरीगेमी कहते हैं। ओरीगेमी लगभग एक हजार वर्ष पुरानी कला है। यह जापानी शब्द 'ओरी' यानी मोड़ना और 'गेमी' यानी कागज से मिलकर बना है। पूरे शब्द का मतलब है कागज को मोड़ना। कागज के मोड़ने से अनेक रोचक व जटिल आकृतियाँ बनाई जा सकती है। इस कला में जो कुछ भी करना हैं वह कागज को मोड़कर ही करना है। मतलब यह कि कागज को काटना या चिपकाना नहीं है। इस मायने में क्राफ्ट और ओरीगेमी एक नहीं होते।

ओरीगेमी में आमतौर पर वर्गाकार कागज का इस्तेमाल होता है। इस कला में प्रारंभिक भूमिका कुछ आकृतियों की आधारों की होती है। यह कला महज, खेल तक सीमित नहीं हैं इसका दूसरा पहलू गणित का है। ओरीगेमी की समस्त विधियाँ गणित के सर्वमान्य सिद्धान्तों पर आधारित है। दुनिया में लाखों बच्चे गणित के भय से स्कूल छोड़ देते हैं। इसका मुख्य कारण है सामान्य स्तर पर गणित की अमूर्तता। हकीकत यह है कि गणित किसी भी विषय से कहीं अधिक मूर्त और जीवन के ज्यादा करीब है, सुन्दर है। कोई भी वस्तु चाहे वह मानव निर्मित हो अथवा कुदरती उसमें कुछ–न–कुछ गणित है। हम अपने सामान्य जीवन से गणित को नहीं जोड़ पाते। ओरीगेमी के सभी खेलों के पीछे गणित का कोई–न–कोई सिद्धान्त या क्रिया है। इन सिद्धांतों को ओरीगेमी के जरिए सहजता से बताया जा सकता है।

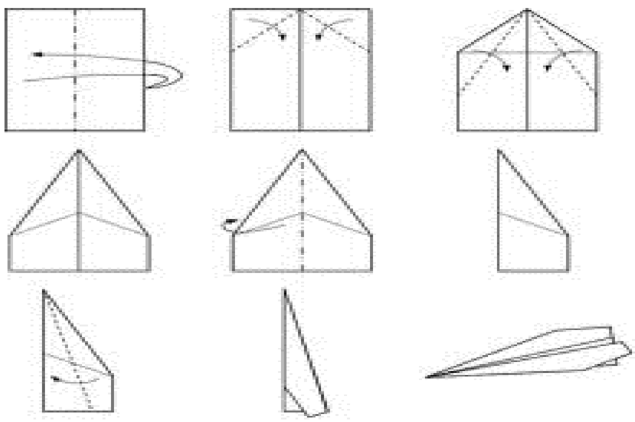

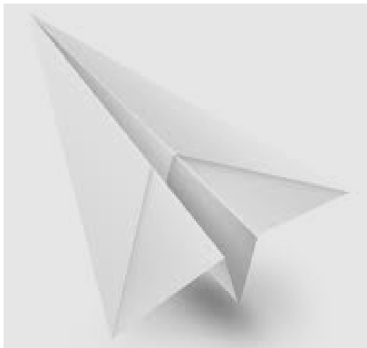

यह स्पष्ट है कि कागज के शिल्प के अन्तर्गत शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में बच्चों की निम्नांकित दक्षताओं को विकसित होने का मौका मिलता है।

- हाथ के कौशलों को बढ़ावा मिलता है।
- अन्य विषय विशेषकर गणित के सिद्धान्तों को समझने में सहायता मिलती है।
- कल्पनाशीलता को बढ़ावा मिलता है।

प्रायोगिक कार्यों के लिए फोल्डर बनाना

जिसमें महत्वपूर्ण कागजातों एवं कागज को व्यवस्थित एवं सुरक्षित रखा जा सके, उसे फोल्डर कहते हैं। कला के शिक्षार्थी के पास सामान्यतः कुछ कला सामग्री हमेशा रहती है। इनका उपयोग वे अनुकूल परिस्थितियों में या कला की कक्षा में या कला समावेशी शिक्षण प्रक्रिया में आवश्यकतानुसार करते हैं। सामान्यतः फोल्डर मोटे गत्ते से बनाया जाता है। इसके दो हिस्से होते हैं: एक तरफ महत्वपूर्ण कागजातों को क्रमानुसार रखा जाता है तथा दूसरे तरफ कुछ सादे कागजों को व्यवस्थित किया जाता है।

फोल्डर दो प्रकार के हो सकते हैं:

1. प्रदर्शन फोल्डर (Presentation Folder)
2. फाईल फोल्डर (File Folder)

व्यवस्थित एवं सुरक्षित रखने के दृष्टिकोण से दोनों प्रकार के फोल्डर एक ही प्रकार के होते हैं। प्रदर्शन फोल्डर (Presentation Folder) में कला सामग्रियों यथा चित्र रेखाचित्र, पेंटिंग आदि दृश्य कला के संग्रह को रखा जाता है जिसे समय–समय पर प्रदर्शित किया जा सके। इस प्रकार के फोल्डर में कला सामग्री सुरक्षित एवं हमेशा प्रदर्शन के लिए तैयार रहते हैं। फोल्डर या तो चित्रित या सादा हो सकते हैं। सामान्यतः कलाकार अपने फोल्डर को रूचिपूर्वक सजा कर रखता है जो उसके कला संवेदनशीलता को व्यक्त करता है।

कलाकार की मौलिक रचनाएँ उनके लिए अमूल्य होती हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि उनकी रचनाएँ उनकी सच्ची पहचान है। आर्ट वर्क (कला रचनाएँ), कलाकार की ही नहीं, बल्कि उस क्षेत्र व देश की अमूल्य धरोहर होती है। अतः इनको संभाल कर रखना अत्यन्त आवश्यक है। फोल्डर के माध्यम से हम इन रचनाओं शिल्प सामग्रियों, चित्रों आदि को व्यवस्थित एवं सुरक्षित रूप से संग्रहित कर सकते हैं तथा बिना किसी क्षति के इसका प्रदर्शन भी कर सकते हैं।

फोल्डर कैसे बनाएँ: हैंड मेड कागज, कार्ड बोर्ड, गत्ता इत्यादि से फोल्डर बनाये जा सकते हैं। आजकल बाजार में प्लास्टिक के फोल्डर भी उपलब्ध है। हमलोग अपनी आवश्यकतानुसार फोल्डर का निर्माण कर सकते हैं। कभी–कभी हमें बहुत सारी फोल्डर बनाने की आवश्यकता पड़ती है। कलाकार अपनी सभी रचनाओं को व्यवस्थित एवं सुरक्षित रखने के लिए एक ही फोल्डर बनाते हैं, जबकि अलग–अलग रचनाओं के लिए अलग–अलग फोल्डर का निर्माण करते है।

आइए फोल्डर बनाना सीखते हैं – एक हैंड मेड पेपर लीजिए। इसे लम्बाई की ओर दो (2) ईंच मोड़ दें तथा इसके दोनों सिरों को गोंद या फेविकोल से चिपका दें। अब इसे चौड़ाई की ओर से ठीक बीच में मोड़ दें। लीजिए आपका फोल्डर तैयार है।

गतिविधि

विद्यालय में होनेवाले विभिन्न कार्यों के लिए अपनी कक्षा में फोल्डर निर्माण करने का कार्य आयोजित करें। इसमें अन्य छात्राध्यापक व छात्राध्यापिकाओं को भी आमंत्रित करें।

कला अनुभव

कला अनुभव से तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें बच्चे को विभिन्न कलाओं (चित्रकला, संगीत, नृत्य, नाटक इत्यादि) के अनुभव से गुजारते हुए सभी कलाओं से परिचय कराया जाए। अनुभव से मतलब एक ऐसी एकीकृत प्रक्रिया से है जिसमें बच्चे की सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में शरीर, मन और मस्तिष्क की बराबर से भागीदारी हो।

जरा सोचिए – आपके अनुसार क्या ज्यादा महत्वपूर्ण है और क्यों?

(अ) पूरी तस्वीर बनाना पर तस्वीर से कोई खास जुड़ाव न हो पाना।

(ब) अधूरी ही तस्वीर बनाना पर उस तस्वीर की प्रक्रिया एवं विषय से पूरा जुड़ाव हो पाना।

बच्चे को प्रारंभिक विद्यालय में ऐसे अवसर प्रदान किये जाये कि वह अपनी इच्छानुसार कला के विभिन्न माध्यमों के साथ संवाद कर सहज वातावरण में स्वयं को अभिव्यक्त करते हुए आनंद का अनुभव कर सके। स्वतंत्र चिंतन, सृजनशीलता और सामाजिकता उनके व्यक्तित्व का हिस्सा बनें। इस प्रक्रिया में इस बात को समझना महत्त्वपूर्ण है कि प्रारंभिक कक्षाओं में बच्चे को विभिन्न कलाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति के अवसर उपलब्ध कराना अधिक महत्त्वपूर्ण है, न कि कला विषय में पारंगत होना। कला विशेष में बच्चों का कौशल विकसित करने पर ध्यान केन्द्रित करने के बजाए अगर बच्चों को सभी कलाओं के विभिन्न रूपों से अपने ढंग से दोस्ती होने देने का वातावरण मिले तो बच्चे उत्साह और उमंग से सीखने की राह पर खुद–ब–खुद चल पड़ेंगे। विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों को शामिल कर लेने के गुण के कारण कलाओं में सीखने–सिखाने की अनगिनत गांठें खोल देने की क्षमता अंतर्निहित है। कला अनुभव के दौरान इस बात का ध्यान रखें कि कला अनुभव योजनाबद्ध (क्या, क्यों और कैसे की स्पष्टता) और लचीले, दोनों हो ताकि सभी बच्चों के सीखने–सिखाने की गति और रूचि का ख्याल रख पाए। पूरे कला–अनुभव के दौरान बच्चे को ये स्वतंत्रता हो की वो अपनी कृति को अपना एक अर्थ दे सकें, और अगर वो अपनी कलाकृति को उसी समय पूरा ना कर के कोई दूसरा काम करना चाहे तो उन पर दबाव नहीं बनाना चाहिए। यहाँ यह जानने की जरूरत है कि कलात्मक अभिव्यक्ति आपकी भावनाओं से जुड़ी होती है, और बच्चों के साथ भी यही होता है। बच्चे स्वभाव से बहुत चंचल होते हैं, अगर वे एक काम अधूरा छोड़ कर दूसरा काम प्रारंभ करते हैं तो उन्हें ऐसा करने दीजिए। बस यह याद रखिए की कभी कभी बच्चे का ध्यान उस अधूरी कलाकृति की तरफ ले जाते रहिए।

अपनी कलावस्तु को पूरा करने का दबाव बनाने की बजाय कोशिश कीजिए की बच्चे किसी कलात्मक प्रक्रिया में बराबर की भागीदार बने रहें। बच्चे के लिए कला अनुभव के बारे में सोचते हुए इस बात का ध्यान रखना होगा कि कहीं उनमें एकरूपता या निरसता ना आ जाए, जिस वजह से बच्चे खूद को कटा हुआ महसूस करने लगे। बच्चों की जरूरत और रूचि के अनुसार सामग्री में नवीनता लाना चाहिए। अपने स्तर पर भाषा और विषय की स्पष्टता रखें। किसी भी प्रकार की अस्पष्टता कक्षा में निरर्थक अफरा–तफरी पैदा कर सकती है। बच्चों के साथ बातचीत करते हुए कोशिश करें की आपके प्रश्न उत्पाद केन्द्रित ना होकर प्रक्रिया केन्द्रित हो कला अनुभव के दौरान खोजने और प्रयोग के अधिकाधिक अवसर मिल सकें। उन्हें अलग–अलग प्रक्रियाओं से गुजरते हुए, अलग–अलग माध्यमों के द्वारा काम करने दें। हो सकता है कि कुछ बच्चे केवल पेंसिल से ही कुछ बनना चाहते हैं, कुछ को पानी वाला रंग चाहिए हो। इस बात की कोशिश मत कीजिए की सारे बच्चे एक ही समय एक जैसा काम करें। बच्चों को अपने विचार प्रकट करने और सामग्रियों के रचनात्मक उपयोग के अवसर स्वतंत्र रुप से दें। कोशिश कीजिए कि बच्चों को विभिन्न प्रकार के और ज्यादा मात्रा में अनुभव मिले और उन्हें अपने विचार बनाने दीजिए। सामान्यतः ऐसा होता है कि हम बच्चों को ब्लैक बोर्ड पर कोई एक तस्वीर बना कर दिखा देते हैं और सब बच्चों को उसी को बनाने के लिए कहते हैं। इस तरह हम बच्चे को कल्पना करने और खुद से चुनने की स्वतंत्रता नहीं दे पाते। जब बच्चों को हम अलग–अलग नमूने दिखाते हैं तो बच्चों के सामने विभिन्न विकल्प होते हैं जिनमें से उन्हें अपने लिए जो उपयुक्त लगता है, उसे वो चुन सकें।

कला अनुभव की कक्षाओं को इतना लचीला होना पड़ेगा जहाँ बच्चों की लगभग सभी प्रकार की अभिव्यक्तियों को जगह मिल सकें। हमें यह ध्यान रखना पड़ेगा की कला की निपुणता प्राप्त करना हमारा उद्देश्य नहीं है।

समेकन

विद्यालय में बच्चों की सृजनात्मक शक्ति का विकास करने के लिए कला–संबंधी सामग्रियों की उपलब्धता होनी चाहिए, जैसे – पेस्टल रंग, पोस्टर रंग, कलम और स्याही, रंगोली बनाने के विभिन्न सामान, गीली मिट्टी/पेपर मैसी और क्ले, तथा स्थानीय उपलब्धता के अनुसार शिल्प का सामान आदि। साथ–ही, इन सामग्रियों के इस्तेमाल और कला में उनको व्यापक तरीके से प्रयोग करने की समझ भी शिक्षक को होनी चाहिए। इसी प्रकार चित्रांकन एवं मिथिला पैंटिंग, ब्लॉक पेंटिंग, कोलाज, मुखौटा और पुतली, मिट्टी/पेपर मैसी और क्ले मॉडलिंग, कागज के शिल्प तथा लोक कलाओं में विभिन्न वस्तुओं को किस प्रकार प्रयोग किया जाय तथा उन कलाओं को सीखने के प्रति विद्यार्थियों में रूचि जागृत करना भी आवश्यक है क्योंकि इनके बगैर कला का मूल उद्देश्य अधूरा रह जाएगा। इस इकाई के माध्यम से हमने कुछ कलाओं के बारिकियों को समझा। इन कलाओं को अपने विद्यालय के बच्चों के साथ करके देखें।

मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. दृश्य कला की अवधारणा एवं इसकी उपयोगिता के बारे में लिखें।

2. दृश्य कला से सम्बंधित विभिन्न प्रकार के सामग्रियों के विकास के तरीकों को विस्तार से समझाएँ।
3. शिक्षण उपयोगी दृश्य कलाओं की सामग्रियों का निर्माण तथा उनका प्रयोग को स्पष्ट करें।
4. सीखने की योजना में दृश्य कलाओं को शामिल करने की संभावनाओं का विश्लेषण करें।
5. पुतली कैसे बनाया जाए, इसके लिए एक विशेषज्ञ को बुलाकर अपने अध्ययन केन्द्र पर कार्यशाला का आयोजन करें और पाठ्यपुस्तकों की कहानियों से संबंधित पुतलियों का निर्माण करें।
6. पेपर मैसी बनाने और उससे विभिन्न आकृतियों के निर्माण को सीखें तथा अपने लैब विद्यालय के विद्यार्थियों को सिखाएं।
7. अपने आसपास के कुछ लोक कलाओं का अवलोकन करें तथा उनमें किस किस प्रकार की सामग्री का उपयोग होता है, उनकी सूची बनाएं।
8. अपने डी.एल.एड. कार्यक्रम के दौरान नोट्स को व्यवस्थित रखने के लिए कुछ उपयोगी फोल्डरों का निर्माण करें।

संदर्भ सूची

- एन.सी.ई.आर.टी. कला, संगीत, नृत्य और रंगमच (राष्ट्रीय फोकस समूह के आधार पत्र–1.7), नई दिल्ली।
- एन.सी.ई.आर.टी. हस्तशिल्पों की धरोहर (राष्ट्रीय फोकस समूह के आधार पत्र–1.8), नई दिल्ली।
- मीना नाईक. कठपुतली मार्गदर्शिका, नई दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट।
- मेहर आर. कांट्रेक्टर, शिक्षा में सृजनात्मक नाटक एवं कठपुतली नर्तन, नई दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट।
- मेरी ऐन दासगुप्ता, कम लागत, बिना लागत शिक्षण सहायक सामग्री, नई दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट।
- पंकज चतुर्वेदी, कहानी कहने की कला, नई दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट।
- डेल एम. बेथेल, सृजनात्मक जीवन और कला, नई दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट।
- देवी प्रसाद, शिक्षा का वाहनः कला, नई दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट।
- देवी प्रसाद, सृजनात्मक और शांतिमय जीवन के लिए कला शिक्षा, नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन।

इकाई – 3
प्रदर्शन कला

परिचय

प्रथम सत्र के अध्यायों में आप दृश्य कला के सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक पक्ष से परिचित हो चुके हैं। साथ–ही प्रदर्शन कला के विभिन्न आयामों से भी हम अवगत हो चुके हैं जिन्हें आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक रूपों में प्रदर्शित किया जाता है। संगीत (गायन और वादन), लोक नृत्य, शास्त्रीय नृत्य, नाट्य, लोक–नाट्य के साथ–साथ कठपुतली कला प्रदर्शन कला के महत्त्वपूर्ण अंग माने जाते हैं। बच्चों की किलकारी, कोयल की कूक, समुद्र का शोर, नदियों की कलकल, बारिश की झमझम से हमारा गहरा जुड़ाव है। प्रकृति में चहँओर बिखरे इन्हीं ध्वनि ने हमारे भीतर संगीत की स्वर–लहरियों को गुंजायमान किया है और जीवन के साथ कदमताल करता हुआ संगीत कुछ इस तरह से हमारे भीतर रच–बस गया है, जिसे किसी भी तरह से अलग नहीं किया जा सकता है। संगीत वस्तुतः लय और ताल के समन्वय को कहा जाता है, जिसे स्वरयुक्त, लयात्मक, आंगिक चेष्टाओं से प्रदर्शित किया जाता है। इसमें हम ध्वनि, स्वर, सप्तक, अलंकार, लय, ताल, वाद्य, लोकगीत, लोकवाद्य, लोक नृत्य और लोक नाट्य की एक समझ विकसित करेंगे, जिससे विद्यालयों में विभिन्न विषयों के प्रभावी शिक्षण में प्रदर्शन कला को सहज, सरस माध्यम के रूप में शामिल किया जा सके। अनायास ही किसी बच्चे को गुनगुनाते या फिर वाद्ययंत्रों की ध्वनियों पर पाँव को थिरकाते देखा जा सकता है। पशु–पक्षियों की आवाज की नकल एवं माता–पिता और शिक्षकों के चलने, उठने, बैठने, बोलने की हू–ब–हू नकल करते देखा जा सकता है, जिसे अभिनय कला के प्रति स्वाभाविक आकर्षण के रूप में हम देख सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रदर्शन कला के प्रति हमारा स्वाभाविक आकर्षण है या यूँ कहें कि यह हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। इस इकाई के दूसरे हिस्से में लोक रंगमंच, आधुनिक रंगमंच एवं कठपुतली कला को देखने–दिखाने की प्रक्रिया में हमारी क्या भूमिका है, इस पर चर्चा की गई है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 में भी इसका उल्लेख किया गया है कि कला को न सिर्फ पाठ्यक्रम का एक स्थायी हिस्सा बनाना चाहिए अपितु कला द्वारा अन्य विषयों को सीखने–सिखाने का माध्यम भी बनाना चाहिए। अतः हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम कला शिक्षा के सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक पक्षों पर समान रूप से अपनी समझ बनाएँ। साथ–ही हम कला प्रयोग की कुशलता एवं इसकी बारीकियों से स्वयं परिचित हों एवं इनका उपयोग प्रभावी कक्षा संचालन के लिए एक माध्यम के रूप में कर सकें।

प्रदर्शन कलाः अवधारणात्मक समझ एवं उपयोगिता

बच्चे प्रदर्शन कला की विभिन्न विधा सीखते कैसे हैं, यह जानने के पहले यह जानना ज़रूरी है कि बच्चे सीखते कैसे हैं, हर बच्चे की अपनी पसंद, नापसंद, रूचियों और व्यवहार के अलग–अलग तरीके होते हैं। हर बच्चा अपने आप में विशेष होता है व समकक्ष आयु वर्ग के बच्चों में कुछ चीज़ें एक–जैसी पाई जाती है जैसे, बच्चे के जन्म से ही उसके सीखने की प्रक्रिया का आरम्भ हो जाता है। स्कूल आने से पहले उसके पास बहुत से अनुभव होते हैं और ज्ञान के कुछ प्रकारों का आधार भी होता है। बच्चे कोरी स्लेट नहीं होते हैं, बच्चे पहले से जो जानते व समझते हैं उसके आधार पर ही आगे सीखने की योजना बनानी चाहिए। प्रदर्शन कला में जहां तक संगीत का सवाल है तो बच्चों के चारों ओर जो संसार है, वह सर्वप्रथम प्रकृति का ही संसार है, जिसमें

परिघटनाओं की असीम विविधता है, जिसका सौन्दर्य अथाह है। बच्चा इनसे जो सीखता है, वह विलक्षण होता है। प्रकृति के इस विलक्षण सौन्दर्य से ही बच्चों का सीखना आरम्भ होता है। बच्चे प्रकृति की चीज़ों को ध्यान से देखते व सुनते हैं व अपने स्तर पर अनुभूति करते हैं, आवश्यकता होती है सिर्फ माहौल देने की। संगीत सीखने का आरम्भ सुनने से ही होता है। जब वे प्रकृति की विविध ध्वनियों को बार–बार सुनते हैं तो उनके दिमाग़ में उसकी एक छवि बनने लगती है जिसका सिखाते समय शिक्षक को पता नहीं चलता लेकिन कुछ समय बाद बच्चे उन धुनों को गाने लगते हैं, संगीत पर थिरकने लगते हैं। शिक्षक यह नहीं पकड़ पाता कि बिना सिखाए बच्चों ने कैसे सीखा, तो सुनना संगीत शिक्षक की पहली सीढ़ी होती है।

अपनी बात को असरदार ढंग से कहना बच्चा नाटक द्वारा सीखता है और नृत्य के माध्यम से अपने भावों को विभिन्न आंगिक मुद्राओं व भाव–भंगिमाओं के साथ लय–ताल में प्रस्तुत करता है। आपने समाज में प्रदर्शन कला के रूपों की अनेक अवसरों पर प्रस्तुति के दौरान बच्चों को उसके प्रति आकर्षित होते हुए देखा होगा। यहां तक कि किसी घर में बहुत से ऐसे कार्य, जैसे – कपड़े धोने में छप–छप की आवाज जब एक निश्चित अन्तराल व आवृति के रूप में बच्चों के कानों तक लय का रूप लिए पहुंचती है, तो बच्चों का शरीर उस ताल पर हिलने लगता हैं, जिसे नृत्य कला के अंकुर के रूप में देख सकते हैं। यही नहीं, कम उम्र के बच्चे जब भी रेडियो, दूरदर्शन, टेप रिकॉर्डर, मोबाइल आदि से या परिवार में मांगलिक कार्यक्रमों पर जब बैण्ड बजता हुआ सुनते हैं तो उनका शरीर थिरकने लगता है। वे अपने अन्दर आए आवेग को रोक नहीं पाते और शारीरिक हलचल से इसे प्रकट करते हैं। उनके हृदय में लय, ताल, गति और ध्वनि के प्रति आकर्षण नैसर्गिक होता है। नृत्य कला सुनने व अवलोकन पर ज़्यादा निर्भर होती है। इसी प्रकार नाट्य कला यानी भाषा और अभिनय के द्वारा अभिव्यक्ति में दृश्य व श्रव्य दोनों इन्द्रियों का प्रमुख आधार होता है। कई बार हम बच्चों को बड़ों की भूमिका निभाते, अपनी तरह से संवाद करते हुए तथा अपनी कल्पना के आनन्द में डूबे हुए देखते हैं। बचपन में वे अपने परिवारजनों, (माता, पिता, भाई, बहन, दादा, दादी) एवं शिक्षकों आदि जिनके संपर्क में आते हैं और जिसका अवलोकन उन्होंने किया है, उसी पात्र के शब्दों व लहज़े का अनुकरण करते हुए वे अपने आप को व्यक्त कर रहे होते हैं। इसी प्रकार वे अपने परिवेश में विभिन्न पशु–पक्षियों, यातायात के साधनों एवं वस्तुओं की आवाजों को सुनते हैं व अवलोकन के आधार पर कभी खेल–खेल में कभी नृत्य करते एवं अपने हाव–भाव के साथ अभिनय करते हुए अपने आप को अभिव्यक्त करते हैं।

प्रदर्शन कला संबंधी कला अनुभव

प्रदर्शन कला के अन्तर्गत वे सभी कलाएँ समाहित हैं, जिन्हें आंगिक, वाचिक व आहार्य और सात्विक के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है। साधारणतः जिन्हें देखा, सुना या प्रदर्शित किया जा सके उन सभी कलाओं को प्रदर्शन कला के रूप

में शामिल किया जा सकता है, जैसे – संगीत, नाटक, नृत्य, पुतली कला, मूक अभिनय, कविता वाचन, कहानी सुनाना, भाषण कला आदि। संगीत में गायन और वादन दोनों रूपों का प्रदर्शन किया जाता है। लोक संगीत, लोक नृत्य, लोक नाट्य जिनका सीधा संबंध लोक चेतना से है, प्रदर्शन कला के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमारे जीवन के विभिन्न पहलूओं को कला प्रभावित करती है। प्रदर्शन कलाएँ शिक्षार्थियों के शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक एवं आध्यात्मिक विकास का आधार है। इनके माध्यम से विचार एवं भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति होती है। साथ–ही शिक्षार्थियों में आत्मविश्वास एवं सृजनशीलता का विकास होता है। प्रदर्शन कला में हम सामान्यतः समूहों में कार्य करते हैं, जिससे समूह भावना, अनुशासन, समन्वय, समानता, धैर्य और लगाव की सोच और रचनात्मक एवं सकारात्मक भावना का विकास होता है। इसमें जीवन की विभिन्न कठिनाइयों व परिस्थितियों का सामना करने का अनुभव प्राप्त होता है जिससे सृजनात्मक सोच और रचनात्मक एवं सकारात्मक व्यवहार का विकास होता है। प्रदर्शन के पश्चात् कलात्मक व सृजनात्मक संतुष्टि का अनुभव होता है जो हमारे व्यक्तित्व को निखारने में अहम भूमिका निभाता है। ऊपर हमने कला को एक विषय के तौर पर रखते हुए इसे समझने की कोशिश की है और इसके अनुभव से गुजरते हुए व्यक्तिगत एवं सामाजिक समझ और जुड़ाव की बात की है।

साथ–ही इस प्रक्रिया से होने वाले संभावित व्यक्तिगत और सामूहिक/सामाजिक लाभों की ओर भी हमारा ध्यान गया, जिससे कला हमारे जीवन के अभिन्न अंग के रूप में दिखाई देती है। अब आगे हम शिक्षा में कला की बात करते हुए प्रदर्शन कला के मुख्यतः तीन स्वरूप– संगीत, नृत्य एवं नाटक की विस्तृत चर्चा करते हुए शिक्षा और बाल विकास में इसकी महता और उपयोगिता को समझने की कोशिश करेंगे। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि संगीत, नृत्य और नाटक कला हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। कोयल की कूक, नदी का शोर, बारिश की टिप–टिप आदि सबमें संगीत विद्यमान है। अपने आसपास देखें तो पंखे के चलने और मशीन की खट–खट में भी आपको सुर और ताल मिलेगा। बच्चों के बारे में बात करें तो उनकी ज़िन्दगी में संगीत स्वतः शामिल है। उदाहरण के लिए आप बच्चों को कभी खेलते हुए देखें तो आप पायेंगे कि खेलते समय वो बहुत अजीब से लगने वाले, अटपटे शब्दों से बने गीत गा रहे होते हैं। आप बच्चे को किसी भी काम में तल्लीनता से लगे देखें तो अक्सर आप बच्चे को खुद में ही कुछ गुनगुनाते हुए पायेंगे। बच्चों और संगीत का एक सहज ही रिश्ता होता है। ये उनकी अभिव्यक्ति का एक माध्यम है। माँ अक्सर बच्चे को सुलाने–बहलाने के लिए लोरी सुनाती है, गुनगुनाती है और रोता हुआ बच्चा चुप हो जाता है, नींद की आग़ोश में खो जाता है। शायद यहीं से बच्चे का संगीत से रिश्ता शुरू होता है जो पूरी उम्र उसके साथ रहता है। उसके काम में उसके साथ गुनगुनाता है। उसके खेल में खिलखिलाता है। बाल विकास में आपने यह पढ़ा भी होगा कि किस प्रकार बाल गीत बच्चों की भाषा के विकास में एक अहम भूमिका निभाता हैं। इसी प्रकार नृत्य और नाट्य का सहज प्रवाह भी हमारे जीवन में है। भिन्न–भिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले गीत एवं संगीत की धुनों पर हमारे थिरकते पांव इस बात के गवाह हैं। इसी प्रकार किसी बच्चे का संगीत को सुनकर अपने हाथ–पैर हिलाना। खुशी के आवेग में शरीर का खुद–ब–खुद थिरकने लगना। नाचना केवल हाथ–पैर को हिलाना भर ही नहीं है बल्कि ये स्वअभिव्यक्ति का एक माध्यम है। किसी विशेष प्रकार के नृत्य को बकायदा सीखना पड़ता है। उसके अपने कुछ सिद्धांत होते हैं, जिनको सीखे–समझे बिना आप उस नृत्य को नहीं कर सकते, मगर जीवन में अभिव्यक्ति हेतु नृत्य के लिए किसी सिद्धांत, किसी व्याकरण की आवश्यकता नहीं है। ये तो हमारी ज़िन्दगी का हिस्सा है जो कि विभिन्न अवसरों पर खुद–ब–खुद हो जाता है। ये खुद–ब–खुद हो जाना ही अभिव्यक्ति है जो उस वक्त आपके विचारों, भावनाओं को शारीरिक रूप से प्रकट करता है। नृत्य हमारी भावनाओं को उजागर करने में मदद करता है। शरीर के हिलने से मस्तिष्क में भी हरकत होती है और वो बेहतर काम करने के लिए सक्षम होता है। इस बात को वैज्ञानिक तौर पर भी साबित किया जा चुका है। मनोवैज्ञानिकों ने अपने शोध के द्वारा इस बात के भी प्रमाण दिए हैं कि नृत्य के द्वारा गणितीय समझ में भी निखार आता है। इसी आधार पर कहा जा सकता है कि अगर कक्षा–कक्ष में बच्चे को ऐसे अवसर दिए जाएं जहां उन्हें नृत्य के द्वारा अभिव्यक्ति के मौके मिले तो वे केवल शारीरिक रूप से ही नहीं बल्कि भावनात्मक एवं मानसिक रूप से भी सक्षमता और अच्छी सेहत की तरफ बढ़ेंगे। वस्तुतः कला का संबंध लोक व्यवहार, लोक आचार, लोक संस्कृति, वेश–भूषा, खान–पान, तीज–त्योहार एवं मानव क्रियाशीलन से है। कला मुख्य रूप से इन्हीं लोकाचारों और व्यवहारों की उत्पत्ति है। कला हमारे दैनिक जीवन की घटनाओं, व्यवहारों, अनुभूतियों एवं संवेदनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति है। जीवन की घटनाओं, अनुभूतियों और लोकचार एवं लोक व्यवहारों का वास्तविक अनुकरण या प्रस्तुतिरकरण, नाट्य कला के अन्तर्गत आता है। आस–पास की उच्चारित ध्वनियों, एवं पशु–पक्षी के साथ–साथ मानव क्रियाशीलनों की नकल भी बच्चों के द्वारा की जाती है जिसे अभिनय कला के वास्तविक रूप में देखा जा सकता है। पशु–पक्षियों, पेड़–पौधे एवं भिन्न–भिन्न मुखाकृतियों (शेर, बंदर, राक्षस, चुड़ैल) आदि के मुखौटे को अपने चेहरे पर रख विभिन्न प्रकार की ध्वनियों और

हाव–भाव द्वारा मुखौटे के पात्रों को जीवंत बनाने का प्रयास करना, खिलौनों से बातचीत करना एवं गुड़ियों को अपनी आवाज देकर उससे जीवंत बनाना, शिक्षकों की और माता–पिता की नकल करना, ये सभी बच्चों के खेल हैं जिनको नाटकीय खेल भी कहा जा सकता है। इन खेलों के द्वारा बच्चा केवल नकल ही नहीं करता बल्कि बड़ों की भूमिका में आकर दुनिया को अपनी नज़र से देखने और समझने की कोशिश करता है। जीवन के विभिन्न आयामों को जाँचने–परखने की कोशिश करता है। किसी भूमिका में आकर वह केवल उस भूमिका को निभाता ही नहीं है बल्कि उसके माध्यम से उस चरित्र के मनोभावों और स्थितियों का अनुभव करते हुए उसे जीने की कोशिश करता है, उसका निरीक्षण भी करता है, अपनी समझ के अनुसार समाधान ढूँढता है, निर्णय लेता है, अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर नये अनुभव लेते हुए नये विचार और दृष्टिकोण गढ़ता है, मानसिक और भावनात्मक रूप से जुड़ते हुए मानवीय संवेदनशीनलता की ओर बढ़ता है।

प्रदर्शन कला के विभिन्न प्रकार एवं उसकी तैयारी

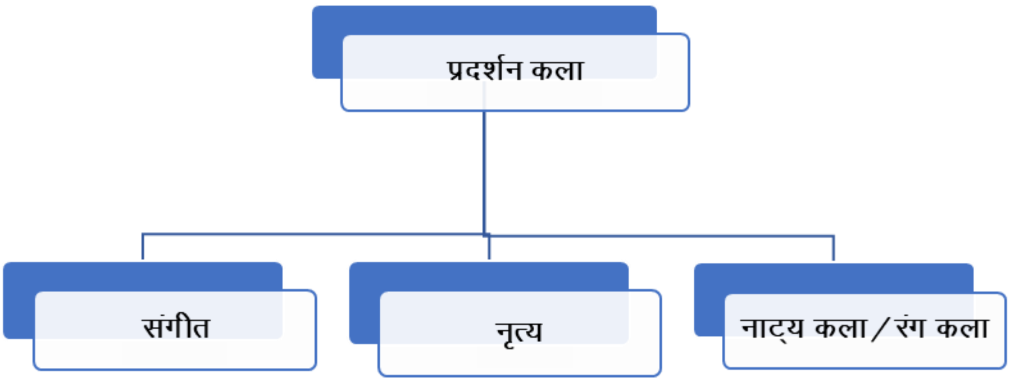

वाचन, सृजनात्मक लेखन एवं सम्प्रेषन कलाः–

वाचन कला:– वाचन कला के अंर्तगत कविता वाचन वाद–विवाद एवं भाषण कला को सम्मिलित कर सकते हैं। वाचन की आवश्यकता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यक है। वाचन योग्यता के बिना मनुष्य के जीवन मे कई प्रकार की बाधाएँ खडी हो जाती हैं। वाचन कला में निपुण होने के लिए निरंतर अभ्यास की अवश्यकता है। इसके लिए स्वरों में आरोह–अवरोह का अभ्यास तथा अवसर भावों के अनुकूल स्वर में लोच देकर इसे प्रभावी बनाया जा सकता है। व्यक्तित्व निर्माण में वाचन कला का महत्वपुर्ण स्थान है।

सृजनात्मक लेखन कलाः– सृजनात्मक लेखन का उद्देश्य केवल सूचनाओं को प्रेषित करना नहीं हैं अपितु रहस्यों एवं रसों को उद्घाटित करना है। रचनात्मक लेखन में तटस्थ होकर कई बार दुनिया की भौतिक वस्तुओं पर विषय वस्तु केन्द्रित होता है तो कभी भाव–विह्वल हो कर प्रेम, पवित्रता, पलायन, ईश्वर, नश्वरता आदि विषयों के बारे में उद्गार व्यक्त किया जाता है। इसमें लेखक द्वारा अपूर्व कल्पना भाव प्रवणता एवं सृजनशीलता अपने शीर्ष पर दिखलाई देता है।

सम्प्रेषण कलाः– संप्रेषण का अर्थ है किसी विचार अथवा संदेश को एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रेषित करने वालों के द्वारा भेजना तथा प्राप्त करने वालों के द्वारा प्राप्त करना। इस प्रकार संप्रेषण क्रिया द्विपक्षीय अथवा बहुपक्षीय प्रक्रिया है, साथ–ही

सहयोगात्मक प्रक्रिया है। जॉन डी.वी. के अनुसार संप्रेषण अनुभवों के आदान–प्रदान की वह प्रक्रिया है जिससे परिणाम स्वरूप दोनों सहभागियों में परस्पर लाभ के लिए परिवर्तन होता है। अरस्तू के अनुसार संप्रेषण एक ऐसा माध्यम है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को इस प्रकार प्रभावित करे जिससे वांछित उद्देश्य की प्राप्ति हो सके।

संप्रेषण कला किसे, क्या और किस तरह से कहा जा रहा है, अपने हाव–भाव और पूरी ताकत के साथ अपनी बात सही तरह से समझाने की क्षमता को दर्शाता है। यही योग्यता व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावी बनाता है।

संगीत, गायन एवं नृत्यः लोक, शास्त्रीय एवं समकालीन संगीत

भारतीय जीवन के पग–पग में संगीत व्याप्त है। जन्म से लेकर मृत्यु तक संगीत हमारे साथ बना रहता है। जिस क्षण बालक का इस संसार से प्रथम परिचय होता है तो संगीत द्वारा (रोने के रूप में) अपना आभार प्रकट करता है। सच तो यह है कि संगीत के स्वर प्रकृति में सर्वत्र भिन्न–भिन्न रूपों में बिखरे पड़े हैं। चिड़ियों के कलरव, कोयल की कूक, बारिश की झमझम, झरनों की झरझर, रम्भाती गायें, बलखाती नदियाँ, इठलाती हवाएँ, पपीहे की सदाएँ, इस तरह संगीत हमारे रोम–रोम में रक्त की तरह प्रवाहित होने वाली सदानीरा है। जब किसी भाषा का विकास नहीं हुआ था, संगीत तभी से हमारे जीवन का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। मैक्समूलर ने कहा है, ''संगीत का जन्म भाषा के पूर्व हुआ है।''

जीवन के विशेष अवसरों का आरम्भ और अन्त संगीत से होता है। ऐसा कोई त्योहार नहीं जहाँ संगीत न हो, बल्कि संगीत के बिना त्योहार अधूरा रह जाता है। छोटा–बड़ा कोई भी उत्सव मनाया जाए, संगीत आवश्यक हो जाता है, चाहे वह प्रार्थना या स्वागत गान तक ही क्यों न हो। कठोर परिश्रम से थके मनुष्य को सायंकाल बाँसुरी की सुरीली धुन पूरे थकान को कम कर देती है। खेतों में तैयार फसल को देखकर या ऋतुओं में जब परिवर्तन होता है तो मन के अन्दर संगीत हर्षोल्लास के साथ स्वतः प्रकट होने लगता है। यह हर्षोल्लास के साथ–साथ चिरस्थायी आनंद प्राप्ति का भी मार्ग प्रशस्त करता है। इसलिए संगीत साधना, भक्ति का भी अभिन्न अंग है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के शब्दों में ''हमारे साधु–संतों की संगीत साधना का ही प्रभाव था कि कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, तुकाराम, नरसी मेहता ऐसी कृतियाँ रच गए जो हमारे लिए और संसार के साहित्य में सर्वदा अपना विशिष्ट स्थान रखेंगी। वस्तुतः संगीत हमारे सांस्कृतिक विरासत का वाहक है।''

संगीत भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। संगीत उस त्रिवेणी संगम को कहा जाता है, जिसमें गीत, वाद्य और नृत्य समाहित है। ''गीतं, वाद्यं, नर्त्तनं, यत्रयं संगीत मुच्यते, किमन्यदस्ता परिषद्: श्रुति प्रसाद नतः संगीतात्''। इस तरह संगीत सुर और ताल युक्त वह ललित कला है जिसमें गायन, वादन और नृत्य तीनों समाहित हैं और एक–दूसरे के पूरक भी। संगीत एक बड़ी औषधि भी है। अमेरिका के प्रसिद्ध डॉ. हिचसन ने विभिन्न प्रकार की संगीत–ध्वनियों की सहायता से अनेक प्रकार के असाध्य रोगों की सफल चिकित्सा की है। तीनों कलाएँ एक–दूसरे से स्वतंत्र होते हुए भी गायन के अधीन वादन एवं वादन के अधीन नर्तन है। अतः इन तीनों कलाओं में 'गायन' को ही प्रधानता दी गई है। स्वर, लय, ताल का आश्रय लेकर गीत मानव की भावनाओं को व्यक्त करता है, वादन गीत का सहायक होता है और नृत्य उस भावना को मूर्त रूप प्रदान करता है। वर्तमान समय में ये तीनों शाखाएँ अपने–अपने रूप में विकसित हो चुकी हैं, जैसे – गायन – शास्त्रीय, सुगम लोक संगीत के रूप में विकसित हो रहा है।

वादन – एकलवादन (सोलो), वृन्दवादन (ऑरकेस्ट्रा), अनुगामी वादन (संगत) तीनों रूप में विकसित हो रहा है।

गायन का संबंध नाभि व कंठ से है। वादन का यंत्र से तथा नृत्य का संबंध शारीरिक मुद्राओं से है। संगीत के दो रूप माने गए हैं–

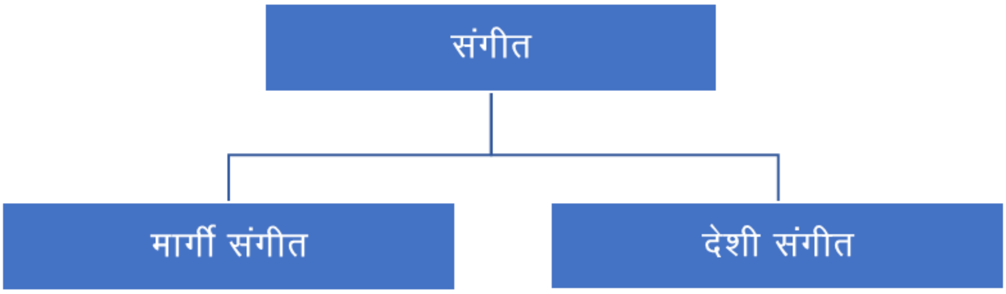

मार्गी संगीत

मार्गी संगीत अथवा मार्ग संगीत का वह रूप है जिसका प्रयोग प्राचीन काल में ऋषि–मुनियों द्वारा मार्ग प्राप्ति के लिए अर्थात ईश्वर प्राप्ति के मार्ग के रूप में किया जाता था वह मार्ग संगीत कहलाया ।

देशी संगीत

अलग–अलग देशों के जन अपनी रूचि और आवश्यकता के अनुसार गा बजाकर और नाच कर प्रसन्नता के साथ अपने हृदय का रंजन करते हैं तो वह देसी संगीत कहलाता है।

संगीत के ये दो प्रकार आज वर्तमान में विलुप्त हो गया है और संगीत को इस रूप में देखा जाता है जिसे इस फ्लो चार्ट से समझ सकते हैंः–

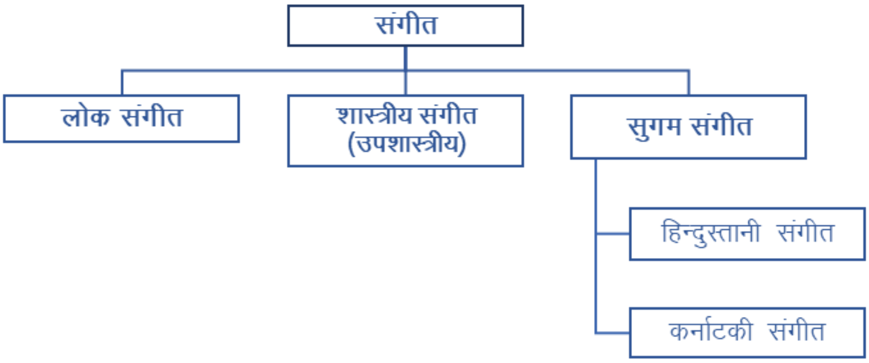

लोक संगीत– लोक गीत में हमारे लोक जीवन, लोक व्यवहार, लोकाचार एवं वर्षों से चले आ रहे रीति–रिवाजों की झाँकी मिलती है। इसके अन्तर्गत शादी के गीत, विभिन्न संस्कारों पर गाए जाने वाले गीत, चैती, कजरी, बिरहा, लोरी, फाग, झूला गीत आदि आता है। लोक संगीत वैसा संगीत है जो पूर्णरूपेण ग्रामीणों का है जिसमें वर्षों से चले आ रहे रीति–रिवाजों की झांकी मिलती है। इसके अंतर्गत विवाह गीत और अन्य संस्कार गीत संगीत का सृजन और प्रयोग आम जनता द्वारा किया जाता है वह गीत लोक संगीत है, इनका स्वरूप सरल भाव प्रधान तथा कुछ स्वरों के अंदर सीमित होते हैं।

शास्त्रीय संगीत

वैसा संगीत जिसमें नियमित शास्त्र और कुछ विशिष्ट खास नियमों का पालन करना आवश्यक होता है शास्त्रीय संगीत कहलाता है।

हिन्दुस्तानी संगीत : उत्तर भारत में प्रचलित शास्त्रीय संगीत के रूप को हिन्दुस्तानी संगीत के नाम से जाना जाता है।

करनाटकी संगीत : दक्षिण भारत में प्रचलित शास्त्रीय संगीत के रूप मतलब उसकी गायन शैली को करनाटकी संगीत कहते हैं।

सुगम संगीत

सुगम संगीत जिस संगीत का प्रयोग केवल मनोरंजन के लिए किया जाता है जिसका मुख्य उद्देश्य है कि कानों को सुनना अच्छा लगे है। इसमें शास्त्रीय संगीत की तरह नियमित शास्त्र होता है और न कोई संबंध न कोई बंधन।

गतिविधि

- शिक्षक द्वारा कोई भी गीत स्वर एवं लय में गाकर सुनाया जाएगा।
- विद्यार्थियों द्वारा बाल गीत/माँ शारदे कहाँ तू – प्रार्थना को गाकर सुनाना।
- बच्चों को अपनी पसंद का कोई एक गीत को गाने के लिए कहें।
- गीत को सुनकर समीक्षा करना एवं करवाना।

बाल गीत

लकड़ी की काठी, काठी पे घोड़ा,
घोड़े की दुम पे, जो मारा हथौड़ा,
दौड़ा घोड़ा दौड़ा, घोड़ा दुम उठा के दौड़ा।
घोड़ा पहुँचा चौक में, चौक में था नाई,
घोड़े जी की नाई ने, हजामत जो बनाई
तक–बक–तक–बक, तक–बक–तक–बक
दौड़ा दौड़ा दौड़ा, घोड़ा दुम उठा के दौड़ा।

परन्तु जब हम शिक्षा में कला की बात करते हैं तो हमारा ध्यान इसके सैद्धांतिक रूप के बजाय इसके व्यवहारिक रूप की ओर जाता है। जब हम बड़े–बड़े संगीतज्ञों को गाते–बजाते देखते–सुनते हैं और फिर शिक्षा में इसको जोड़कर देखते हैं तो एक शिक्षक के तौर पर स्वयं को बहुत असमर्थ पाते हैं। इस असमर्थता के कारण या तो हम कक्षा में इस विषय को हाथ ही नहीं लगाते और यदि किन्हीं विशेष अवसरों पर हाथ लगाते भी हैं तो केवल किसी गाने आदि की नकल करते ही दिखाई देते हैं। ये नकल भी बच्चों से कैसे कराई जाती है और प्रदर्शन के दौरान इस नकल की हालत को भी हम भली–भांति जानते, समझते हैं। इन विशेष अवसरों से पहले और न ही इनके बाद हमारे दिमाग में कक्षा में कला को लेकर कोई तस्वीर बनती है और न ही हमारी ऐसी कोशिश ही रहती है। इसकी वजह ये नहीं है कि हम ऐसा करना नहीं चाहते बल्कि इसका विशेष कारण जो दिखाई देता है, वह है, इस विषय को लेकर हममें अनुभव और अवसर की कमी। अब अगर हम प्रारंभिक स्तर पर कक्षा–कक्ष में संगीत और वाद्य की बात करते हैं तो हम सुर–ताल–सरगम आदि के सैद्धांतिक रूपों की बात तो बिल्कुल ही नहीं करेंगे। यहां हम उस संगीत और वाद्यों की बात करेंगे जो हमारे आस–पास स्थित है। जो हमारे वातावरण में लहराता है। जो हमारे अंग–अंग में बसा हुआ है और हमारे जीवन का एक हिस्सा है। जिसकी शुरूआत माँ की लोरी, उसकी गुनगुनाहट और थपथपाहट से होती है। खेल गीतों से होती है। बाल गीतों से होती है। अनुप्रासों (Tongue Twister) और लोकगीतों से होती है। वर्तमान संदर्भ में फिल्मी गीतों का भी इसमें बहुत योगदान है। अगर हम बच्चें की मदद से इन लोरियों, खेल–गीतों, बाल–गीतों, लोक–गीतों इत्यादि को इकट्ठा करें और

कक्षा में गाए तो आप देखेंगे कि बच्चे कितनी सहजता से इन गीतों को गाते हैं और उसमें शामिल होते हैं। साथ–ही इससे आपके पास इन गीतों का खजाना भी जमा हो जाएगा। प्रारंभिक तौर पर इन गीतों को गवाया जा सकता है। बाद में इन गीतों के आधार पर बच्चों द्वारा नये गीत रचे जा सकते हैं।

गतिविधि

- प्रारंभिक स्तर पर विद्यार्थियों से अपने आस–पास सुनाई देने वाले गीतों को गाने के लिए कहा जा सकता है, जिनमें फिल्मी गीत, बाल गीत, खेल गीत, लोक गीत, शादी के गीत तथा अन्य त्योहारों तथा रीति–रिवाजों के दौरान गाये गए गीत हो सकते हैं।
- विद्यार्थियों को अपने आस–पास के वातावरण, घर, स्कूल आदि से ऐसी सामग्रियां इकट्ठी करने को कहा जा सकता है जिनसे विभिन्न तरह की ध्वनियां उत्पन्न हो सकती हों और उनको कक्षा में लाकर बजाने के लिए कहा जा सकता है। विद्यार्थियों को छोटे समूहों में बांटकर अपनी क्षमतानुसार उन ध्वनि यंत्रों का इस्तेमाल करके ऑर्केस्ट्रा तैयार करने के लिए कहा जा सकता है। साथ–ही विद्यार्थियों को किसी भी गीत के साथ इन ध्वनि यंत्र को बजाने या संलग्न करने के लिए कहा जा सकता है।
- विद्यार्थियों को विभिन्न विषयों पर स्वयं भी गीत लिखने और उनको अपनी क्षमता अनुसार लयबद्ध करने के लिए कहा जा सकता है और कक्षा स्तर पर सबके सामने उसकी प्रस्तुति भी की जा सकती है तथा गीत लिखने की प्रक्रिया, प्रशंसा, समीक्षा, विश्लेषण आदि करते हुए उस पर चर्चा भी की जा सकती है।

प्रारंभिक स्तर पर बातचीत के द्वारा प्रशिक्षु के अनुभव के आधार पर प्रशिक्षुओं से ही बाल एवं लोक गीत आदि निकलवाए और गाये जा सकते हैं और समय–समय पर कुछ नये गीतों से भी विद्यार्थियों का परिचय कराया जा सकता है। इस प्रक्रिया को रचनात्मक बनाने के लिए उनको पहले से उस गीत के सुर–ताल से परिचय कराने के बजाय उनको स्वयं उस गीत आदि को लयबद्ध करने को कहा जा सकता है। इस प्रक्रिया में धुन को अच्छे–बुरे पैमाने में मापने के बजाय उनको स्वयं रचने और उसको प्रदर्शित करने के अवसर देना ज्यादा ज़रूरी है।
साथ–ही समय–समय पर विभिन्न बालगीतों को खोजने और उसको कक्षा में साझा करने आदि को कहा जा सकता है।

गतिविधि

- वातावरण में व्याप्त विभिन्न ध्वनियों को सुनें तथा प्राप्त अनुभूति का अनुसरण करें।
- सुनी हुई ध्वनियों में से आनंदित करने वाली ध्वनियों को अलग करो।
- माचिस की दो डिब्बियों को धागे की सहायता से जोड़कर टेलीफोन बनाएं तथा उससे ध्वनि सुनें।

ध्वनि

जो कुछ हम सुनते हैं वह ध्वनि है। गायन की आवाज, बालक के रोने की आवाज, दो ईंटों की टक्कर से उत्पन्न आवाज यह सब ध्वनि है। मधुर ध्वनियाँ जिसे हम सुनना चाहते हैं उसका संबंध संगीत के नाद ध्वनि से है। ध्वनि की उत्पत्ति कम्पन से होती है। जब किसी वाद्य को बजाते हैं तो उसमें कम्पन होता है और ध्वनि उत्पन्न होती है। ढोलक, तबला और पखावज में चमड़े के कम्पन और बाँसुरी व शहनाई में हवा में

कम्पन से ध्वनि उत्पन्न होती है। संगीत में कम्पन को आन्दोलन कहते हैं। संगीत हमारे मन मस्तिष्क को चेतना, स्फूर्ति व शांति प्रदान करता है। इसके माध्यम से सीखा गया ज्ञान स्थायी होता है या इससे सीखी हुई चीज़ों को याद रखना आसान हो जाता है।

स्वर

स्वरों के बिना संगीत की कल्पना ही मिथ्या है। स्वरों का ही सम्मोहन है कि रोता हुआ बच्चा माँ की लोरी सुनकर नींद के आगोश में चला जाता है। कोयल के मधुर कूक से भला किसे सुखद अनुभूति नहीं होती हैं। आइए जाने स्वर किसे कहते हैंः–

''लगातार कम्पन व नियमित आवृत्ति द्वारा उत्पन्न कर्णप्रिय मधुर ध्वनि स्वर कहलाती है, जो मन को प्रसन्न करती है''

सा, रे, ग, म, प, ध, नि

उपर्युक्त सात स्वरों के लिए संगीत शास्त्रों में पूर्ण नाम इस प्रकार दिए गए हैं–

(1) सा– षड़ज (2) रे– ऋषभ (3) ग– गंधार (4) म– मध्यम

(5) प– पंचम (6) ध– धैवत (7) नि– निषाद

गतिविधि

लल्ला–लल्ला लोरी
दूध की कटोरी
दूध में बताशा
मुन्नी करे तमाशा। लल्ला–लल्ला लोरी
दूध की कटोरी
दूध में बताशा
मुन्नी करे तमाशा

स्वर के दो भेद होते हैं– (1) शुद्ध स्वर (2) विकृत स्वर

- शुद्ध स्वर– जो स्वर अपने निश्चित स्थान पर स्थित रहते हैं अर्थात् न अपने स्थान से उतरते हैं और न ही चढ़ते हैं उन्हें शुद्ध स्वर कहते हैं। शुद्ध स्वरों को लिखते समय उन पर किसी भी चिह्न अथवा निशान का प्रयोग नहीं किया जाता है, जैसे– सा रे ग म प ध नि

- विकृत स्वर– जो स्वर अपने निश्चित स्थान से उतरते अथवा चढ़ते हैं उन्हें विकृत स्वर कहते हैं। सात स्वरों में से ''सा'' (षड़ज) एवं ''प'' (पंचम) को छोड़कर शेष स्वरों (रे ग म ध नि) के दो–दो रूप होते हैं। एक शुद्ध तथा दूसरा विकृत रूप। विकृत स्वर के दो प्रकार होते हैं– (1) कोमल (2) तीव्र
  - कोमल– जो शुद्ध स्वर अपने निश्चित स्थान से नीचे की ओर उतरता है, ऐसी स्थिति में वह ''कोमल स्वर'' कहलाता है। कोमल स्वरों को लिखने के लिए स्वरों के नीचे आड़ी रेखा का प्रयोग किया जाता है। जैसे– रे ग ध नि
  - तीव्र– जो शुद्ध स्वर अपने निश्चित स्थान से ऊपर उठता है उसे ''तीव्र स्वर'' कहते हैं। इसके लिए स्वर के ऊपर खड़ी रेखा खींचकर उसे चिन्हित किया जाता है, जैसे – म इस प्रकार सात शुद्ध एवं पाँच विकृत स्वर मिलकर कुल स्वरों की संख्या बारह होती है जो इस प्रकार हैंः–

    सा रे रे ग ग म मं प ध ध नि नि

गतिविधि

1. तीव्र मध्यम के प्रयोग हेतु – 'तू ही राम है, तू रहीम है' प्रार्थना का समूह में गायन कराएं।
2. सभी कोमल स्वरों के गायन हेतु – 'हर देश में तू हर वेश में तू'' सर्वधर्म प्रार्थना कराएं।
3. यदि विद्यालय में हारमोनियम है तो उसकी सहायता से सातों शुद्ध स्वरों को गाने का अभ्यास करवाएं।

अभ्यास के प्रश्न

1. मधुर ध्वनि को क्या कहते हैं? यह किस प्रकार कोलाहल से पृथक है। व्याख्या करें।
2. स्वर के महत्व को बताते हुए टिप्पणी लिखिए।
3. कोमल, तीव्र किसके प्रकार है? इनके भेद को समझाते हुए स्वरों को चिन्हित भी करिए।
4. निम्न में से कौन से स्वर का शास्त्रीय नाम नहीं है– (☐/☐)

☐ धैवत ☐ ढोलक ☐ षड़ज ☐ कोमल ☐ निषाद ☐ चातक ☐ बांसुरी

सप्तक

'सप्तक' का अर्थ है सात। सात स्वरों के समूह को सप्तक कहते हैं। सप्तक के तीन भेद माने जाते हैं– (1) मंद्र सप्तक (2) मध्य सप्तक (3) तार सप्तक

(1) **मंद्र सप्तक –** जिस सप्तक के स्वरों की 'आवाज' सबसे नीची हो अथवा मध्य सप्तक से आधी हो उसे मंद्र सप्तक कहते हैं। इस सप्तक के स्वरों के उच्चारण के समय हृदय पर जोर पड़ता है। पं. भातखण्डे जी ने इसके स्वरों की पहचान स्वरों के नीचे बिन्दु के चिह्न का प्रयोग कर दर्शायी है।

जैसे– सा़ रे़ ग़ म़ प़ ध़ नि़

(2) **मध्य सप्तक –** 'मध्य' का अर्थ है बीच, अर्थात् न अधिक नीचा न अधिक ऊँचा । मंद्रसप्तक से दुगुनी आवाज होने पर मध्यसप्तक कहलाता है। इस सप्तक में स्वरों के उच्चारण के समय कंठ पर जोर पड़ता है। इसके स्वरों पर कोई चिह्न नहीं होता।

जैसे– सा रे ग म प ध नि

(3) **तार सप्तक –** मध्य सप्तक से दुगुनी ऊँची आवाज होने पर तार सप्तक कहलाता है। इसे उच्चारित करते समय तालू पर जोर पड़ता है। इसकी पहचान स्वरों पर बिन्दु द्वारा दर्शायी जाती है।

जैसे – सां रें गं मं पं धं निं – तारसप्तक
सा रे ग म प ध नि – मध्य सप्तक
सा़ रे़ ग़ म़ प़ ध़ नि़ – मंद्र सप्तक

गतिविधि

1. 'राष्ट्रगान' को स्वर व ताल में गाने का अभ्यास करावें।
2. इसके उतार–चढ़ाव को समझकर तीनों सप्तकों के स्वर का अनुभव करें।
3. राष्ट्रगीत का समूह में गायन करें।

अभ्यास के प्रश्न

1. सप्तक हम किसको कहेंगे?

(1) रे ग म (2) सा रे ग म (3) सा रे ग म प ध नि

2. सामान्य आवाज में गाना किस सप्तक की पहचान है?

3. उच्च स्वरों में गाने के लिए स्वरों को लिखने का तरीका बताइए।

अलंकार– नियमानुसार स्वरों की चलन को अलंकार कहते हैं। अलंकार में कई कड़ियाँ होती हैं जो आपस में एक–दूसरे से जुड़ी होती हैं। प्रत्येक अलंकार में मध्य 'सा' से तार 'सा' तक आरोही वर्ण और तार 'सा' से मध्य 'सा' तक अवरोही वर्ण हुआ करता है। अलंकार का अवरोह आरोह का ठीक उल्टा होता है। उदाहरण–
(1) आरोह–सारेग, रेगम, गमप, मपध, पधनी और धनिसां।
अवरोह– सांनिध, निधप, धपम, पमग, मगरे और गरेसा।।
(2) आरोह– सारेगरे, रेगमग, गमपम, मपधप, पधनिध, धनिसांनि।
अवरोह– सांनिधनि, निधपध, धपमप, पमगम, मगरेग, गरेसारे।।
इस प्रकार अनेक अलंकारों की रचना हो सकती है। अलंकार को पलटा भी कहते हैं। वाद्य के विद्यार्थियों को नित्य–प्रति अलंकार का अभ्यास करना चाहिए।

गतिविधि
अलंकारों को हारमोनियम की सहायता से गाने का अभ्यास करें। कुछ इस तरह के उतार–चढ़ाव को गाने की कोशिश करें।

लय
कला का मूल स्वरूप लय है। संगीत में समान गति या चाल को लय कहते हैं। मनुष्य के दैनिक जीवन के क्रियाकलापों में, प्रकृति की घटनाओं में, पृथ्वी का घूमना, मौसम का परिवर्तन, सूर्य–चाँद का उदय–अस्त आदि, में एक लय होती है।
हृदय की धड़कन, घड़ी की सूई भी निश्चित लय में गति करती है। इनमें से किसी में भी गति अथवा लय यदि अनियमित हो जाए तो वह कार्य असहज प्रतीत होगा। संगीत की सुन्दरता के लिए लय व ताल अति आवश्यक है। 'लय' – ताल में एक मात्रा से दूसरी मात्रा के बीच के अन्तराल को 'लय' कहते हैं। लय मुख्यतः तीन प्रकार की होती है– (1) बिलम्बित (2) मध्य (3) द्रुत
(1) **बिलम्बित –** जिस लय की चाल बहुत धीमी हो उसे बिलम्बित लय कहते हैं। इसमें 'धीमी गति' होती है। मध्यलय से आधी लय को बिलम्बित लय कहा जाता है।
(2) **मध्य लय** – मध्य लय का अर्थ है 'बीच की गति' अर्थात् जिस लय की चाल बिलम्बित लय से तेज तथा द्रुत लय से कम हो उसे 'मध्य' लय कहते हैं।
(3) **द्रुत लय –** द्रुत लय का अर्थ है 'तेज गति' अर्थात् जिस लय की चाल मध्य लय से दुगुनी तथा बिलम्बित लय की चौगुनी हो द्रुत लय कहलाती है।

गतिविधि
1. घड़ी के लोलक (पेन्डुलम) की गति को ध्यानपूर्वक देखें एवं उसकी गति की समीक्षा करें।
2. प्रकृति में व्याप्त लयात्मकता का अवलोकन कर उसकी समीक्षा करें।
3. हमारे शरीर के उन अंगों को पहचानें जिनमें नियमित गति होती है, उसकी अनुभूतियों को लिखें।

अभ्यास के प्रश्न
1. संगीत में लय के महत्त्व को समझाएं।

2. घड़ी की सुईयों की सहायता से आप लय के प्रकारों को स्पष्ट करें।

ताल

विभिन्न मात्राओं के विविध समूहों को ताल कहते हैं। संगीत में केवल मात्रा से काम पूरा नहीं होता है, क्योंकि मात्रा में केवल समय की गति का बोध होता है। अतः मात्राओं को नापने के लिए ताल बनाए गए। स्वर और लय, संगीत रूपी भवन के दो स्तम्भ हैं। लय से मात्रा और मात्रा से ताल बनें। ताल अनेक माने जाते हैं, जैसे – झपताल, एकताल, चारताल, रूपक, तीनताल आदि। गीत के प्रकारों के आधार पर विभिन्न तालों की रचना की गई है। जैसे – ख्याल के लिए तीनताल, एकताल, झपताल, तिलवाड़ा आदि। ठुमरी के लिए दीपचन्दी तथा झपताल, ध्रुपद के लिए चारताल, शूलताल ब्रह्मताल आदि व धमार (होरी) के लिए धमार ताल बनाया गया है। ताल देने के लिए मुख्यतः तबला और कभी–कभी पखावज का प्रयोग किया जाता है। नाट्य शास्त्र के रचयिता भरतमुनि ने संगीत में (काल) समय के मापने के साधन को ताल कहा है।

मात्रा

ताल मापने की इकाई को मात्रा कहते हैं। मात्रा ताल का ही एक हिस्सा है क्योंकि मात्राओं के योग से ही समस्त तालों की रचना होती है।
जैसे– 6 मात्रा की – दादरा ताल
8 मात्रा की – कहरवा ताल
16 मात्रा की – तीन ताल आदि।

विभाग

ताल को कई खण्डों में विभाजित किया जाता है। इसे विभाग कहा जाता है। विभाग बतलाने के लिए ताल के दो बोलों के मध्य निश्चित स्थान पर खड़ी रेखा खींची जाती है प्रत्येक ताल के विभागों की संख्या भिन्न–भिन्न होती है।

सम

ताल की प्रथम मात्रा 'सम' कहलाती है। ताल के प्रथम भाग के प्रथम बोल पर ताली लगाई जाती है। ताल में सम को ग चिह्न द्वारा चिह्नित किया जाता है।

ताली

अन्य विभागों में जहाँ ताली लगाई जाती है वहाँ ताली को दो या दो से आगे की सँख्याओं में दर्शाया जाता है।

खाली

जिस विभाग के प्रथम बोल के नीचे '0' लिखा हो वहाँ ताली नहीं लगानी होती है इसे खाली कहा जाता है।

बोल

प्रत्येक ताल के कुछ निश्चित बोल होते हैं। ताल में बोलों की संख्या उसकी मात्राओं की संख्या के बराबर होती है। वादक इन बोलों को ताल वाद्य जैसे – तबला, पखावज ढोलक आदि पर बजाते हैं। – धा, धिं, ता, तिरकिट, धागे आदि।

चिह्न

ताल में सम, खाली, भरी, 2, 3, 4 आदि को दर्शाने के लिए निर्धारित चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। ये चिह्न उसी मात्रा व बोल के नीचे लगाया जाता है, जहाँ से विभाग प्रारम्भ होता है।

आवृत्ति

आवृत्ति का अर्थ है – फेरना, दोहरना या चक्कर लगाना। ताल में सम से सम जितनी बार दोहराया जाएगा उतनी आवृत्ति होगी।

ताल दादरा

मात्रा– 6 / विभाग–2 / ताली–1 / खाली–1 मात्रा 1 2 3 बोल धा धिं ना चिह्न	4 5 6 धा तिं ना 0

हवा के झोकों से वृक्ष की सूखी फलियों के हिलने से उत्पन्न आवाजों से मानव आकर्षित हुआ, जिससे झुनझुना, घुंघरू आदि वाद्यों की कल्पना को आकार दिया। वाद्यों की संरचना एवं वादन क्रिया के आधार पर वाद्यों को चार भागों में बांटा गया है। वाद्यों के प्रकार–

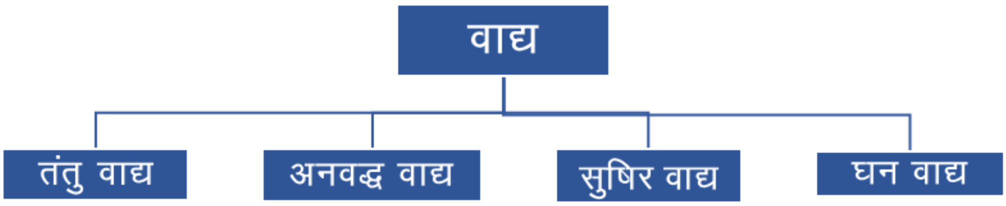

तंतु वाद्य– इस श्रेणी में वे वाद्य यंत्र आते हैं जिनमें तार द्वारा स्वर उत्पन्न किए जाते हैं, जैसे– वीणा, सितार, एकतारा, वायलिन, सारंगी आदि।
अवनद्ध वाद्य– चमड़े में मढ़े हुए वे वाद्य यंत्र जिन पर आघात कर बजाया जाता है। जैसे– ढोलक, डमरू, नगाड़ा, डफली आदि।
सुषिर वाद्य– हवा या फूँक से बजने वाले वाद्ययंत्रों को सुषिर वाद्य कहते हैं। जैसे– शंख, बाँसुरी, हारमोनियम, बीन, शहनाई आदि।
घन वाद्य– मिट्टी धातु, लकड़ी आदि से बने वे वाद्य यंत्र जिन्हें चोट या आघात द्वारा बजाया जाता है। जैसे– घुँघरू, घंटा, घंटी, मंजीरा, खड़ताल आदि।

गतिविधि

1. ताली बजाएँ या टेबल, कुर्सी या धातु के बने पात्रों को बजाएँ।
2. पेन के ढक्कन में फूँक द्वारा ध्वनि उत्पन्न करने का अभ्यास करें।
3. दो कटोरियों को आपस में टकराकर ध्वनि सुने।

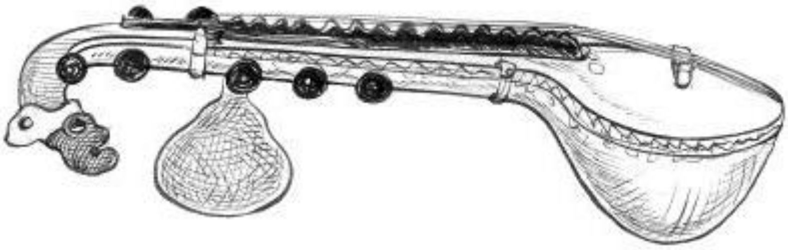

तंतु वाद्य

अवनद्ध वाद्य

सुषिर वाद्य

घन वाद्य

4. गुब्बारे में कुछ सरसों के दाने डालकर गुब्बारा फुलाकर एक लकड़ी से बाँधकर हिलाएँ। झुनझुने जैसी आवाज अनुभव करें।

5. केले या ताड़ के पत्तों की पिपही बनाकर फूँक द्वारा बजाने का प्रयास करें।

आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक वाद्यों में कई प्रकार के परिवर्तनों को देखा जा सकता है, साथ–ही कई नवीन वाद्यों के आविष्कार एवं प्रयोगों को भी आवश्यक माना गया। प्राचीन वाद्य दुर्दर का आधुनिक रूप तबला है, वैसे माना जाता है कि पखावज के दो टुकड़े कर तबले का आविष्कार किया गया। आधुनिक युग के आविष्कार के रूप में कई वाद्यों जिनमें मोहन वीणा, जो गिटार से निर्मित हुआ है, इसे पं. विश्वमोहन भट्ट ने निर्मित किया है। संतूर, जलतरंग आदि नवीन वाद्य हैं। आजकल इलेक्ट्रॉनिक गिटार, तबला, तानपुरा, सितार, हारमोनियम, सिथेंसाइजर, पैड, ड्रम, कांगो आदि भी प्रचलन में है। आइए, कुछ महत्त्वपूर्ण वाद्य जिन्हें शास्त्रीय एवं लोक गीतों के लिए प्राचीन काल से प्रयोग में लाए जाते हैं।

लोक संगीत

लोक संगीत हमारे लोक–जीवन, लोक संस्कृति, लोक व्यवहार, पर्व–त्योहार आदि का यथार्थ चित्रण करता है। लोक गीतों में लोक जीवन की सच्ची झांकी मिलती है। इसके अन्तर्गत ग्राम्य जीवन, आशा–आकांक्षा, सुख–दुःख, दैनिक कार्यकलाप, पर्व–त्योहार, धार्मिक अनुष्ठान, विवाह, फसलों की बुआई–कटाई, सूर्योदय, सूर्यास्त, वर्षा बसंत आदि ऋतुओं का मनोहारी चित्रण लोकगीतों में निहित है। देश के अन्य राज्यों की तरह अपने बिहार राज्य में भी विभिन्न त्योहारों तथा भिन्न–भिन्न अवसरों के लिए अलग–अलग गीत प्रचलित हैं। विवाह के अवसर पर कन्या परीछन, सिंदुरदान, मड़वा गीत, कन्यादान के गीत, चुमावन गीत, विदाई गीत इत्याादि प्रत्येक माह एवं ऋतुओं के लिए अलग–अलग गीत जैसे सावन के गीत, झूला गीत, चैत, फाग, कजरी, चौहट, बारहमासा आदि। जाता गीत, धनकटनी के गीत, वसंत गीत आदि। संतान के जन्म लेने पर 'सोहर', 'बधइया' 'पावरियाँ गीत' प्रचलित है। 'गोदना' 'मुण्डन' 'यज्ञोपवीत्' (जनेऊ गीत) के अलावा कई तीज त्योहारों पर गीतों का प्रचलन है, जैसे – लोक आस्था का महापर्व छठ, 'गोधन' देवी गीत आदि का प्रचलन है। पेरी ने कहा है– ''लोक गीत मानव का उल्लासमय संगीत है। अपने देश में लोक गीतों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। यहाँ के परम्परागत लोक गीतों में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की झाकियाँ देखने को मिलती है।

आधुनिक काल में लोक–संगीत तथा शास्त्रीय संगीत के समन्वय का सफल प्रयास श्री कुमार गंधर्व ने किया है। मालवती और सहेली तोड़ी जैसे अनेक रागों की रचना इन्होंने लोक–संगीत के आधार पर की है। आइए, अपने राज्य के विभिन्न लोक गीतों से सर्वाधिक चर्चित और लोकप्रिय गीतों में चैती के एक गीत को स्वर शब्द और ताल के साथ एक समझ विकसित करें और इसे संबंध ताल के साथ गाने का प्रयास करें। यदि हारमोनियम की उपलब्धता हो तो उसके साथ तबले पर संगत करने का प्रयास विशेषज्ञ संगीतज्ञ के सानिध्य में करने का प्रयास करेंगे।

चैती
चैत मासे हरि से मिला द हो रामा
चैत रे मासे ....
नेहिया लगा द हरि से मिला द
हुनका चरण में लगा द हो रामा, चैत रे मासे।
आइस बसन्त कोइलिया बोले
सब सखियन के पिया घर डोले

हमरा के बिरहा सुना द हो रामा
चैत रे मासे।
आम मोजराइल, सरिसो फुलाइल
तड़पत जियरा, हरि नहिं आइत
हुनका के केहू बोला द हो रामा
चैत रे मासे।

गतिविधि

1. बच्चों से अलग–अलग अवसरों पर गाने जाने

वाले लोक गीतों की सूची बनवाएं।

2. विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों के आधार पर निबंध लिखने का निर्देश दें।

अभ्यास के प्रश्न

1. क्या लोक गीत भी राग और ताल पर आधारित होते हैं? इस पर एक लेख लिखिए।
2. लोक गीतों का हमारे जीवन से क्या संबंध है? समझाइए।

नृत्य : लोक नृत्य, शास्त्रीय नृत्य, सृजनात्मक नृत्य

ऐसी मान्यता है कि नृत्य मनुष्य की सृजन करने की इच्छा का प्रथम सोपान है। आदिम काल से वर्तमान काल तक मानव नृत्य के परम आनंद के लिए अनेक विधियों–प्रविधियों का सृजन करता आया है। जीवन और मृत्यु से परे नृत्य एक ऐसी आदिम प्रबल अनुभूति कही जा सकती है, जिसने मानव के आंतरिक और बहिर्जगत को आनंद की लय दी तथा साथ–ही उसे वाद्य और संगीत के सौंदर्य से समृद्ध किया।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में नृत्य के जनक नटराज शिव को माना जा सकता है। उनके अत्यन्त प्रबल संवेग का प्रकटीकरण ''ताण्डव'' के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। पार्वती के श्रृंगारिक नृत्य को ''लास्य'' कहा गया है।

नृत्य की प्रेरणा मनुष्य को प्रकृति और जीवन से मिली है। प्राणियों का जीवन स्पंदन एवं चैतन्य की आत्माभिव्यक्ति नृत्य है। लय, तालबद्ध शारीरिक गतियों को ''नृत्य'' कहते हैं जो नृत्य से पूर्व या पश्चात् की गई आंगिक चेष्टाएँ होती हैं, इस प्रकार चेष्टाएँ शास्त्र से कम लेकिन इच्छा से अधिक प्रेरित होती हैं। भारत के सभी शास्त्रीय नृत्यों का जड़ नाट्य शास्त्र ही है। सामान्यतः नृत्य के दो प्रकार है, ''मार्गी'' या व्यवस्थित (शास्त्रीय) तथा ''देशी'' या क्षेत्रीय समयांतराल में इन नृत्यों पर राजनीतिक सांस्कृतिक एवं क्षेत्रीय प्रभाव के कारण विभिन्न प्रभाव दिखाई देते हैं जिससे इनका नामकरण भी हुआ।

अब प्रश्न यह है कि प्रारंभिक कक्षाओं में कला शिक्षण में नृत्य की शिक्षा क्यों दी जाए? इस प्रश्न को समझने में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, के कला, संगीत, नृत्य और रंगमंच राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र मदद करता है। इनके अनुसार नृत्य शिक्षण को औपचारिक पाठ्यचर्या में सम्मिलित करने के विशेष लाभ हैं जो संभवतः केवल भारतीय नृत्य अभ्यास पद्धति के अभ्यास में ही मिलते हैं।

चूँकि शास्त्रीय नृत्य गति, संगीत, अभिव्यक्ति, साहित्य दर्शन पौराणिक कथाओं, लय छंद योग एवं साधना जैसे सौंदर्य के अनुभवों की परिणति का माध्यम है, यदि इसे अच्छी तरह से शिक्षा में शामिल किया जाए तो औपचारिक शिक्षा पद्धति की अनेक समस्याओं का स्वयं ही निदान हो जाएगा। इसके कुछ लाभ निम्न हैं–

नृत्य के माध्यम से शिक्षार्थी अपने शरीर का ज्ञान प्राप्त करते हैं। किस प्रकार उन्हें खड़ा होना चाहिए, श्वास लेना चाहिए, अपनी रीढ़ की हड्डी को किस प्रकार रखना चाहिए और किस प्रकार चलना चाहिए आदि।

- नृत्य से व्यक्ति में संवेदना का विकास होता है। ऐसे समाज में जहाँ संवेदनाओं को दबा कर रखना पड़ता है तथा अभिव्यक्ति के सीमित माध्यम हो वहाँ नृत्य के माध्यम से मानव संवेदना की अभिव्यक्ति होती है और अंदर और बाहर सामंजस्य की स्थापना होती है।

- नृत्य से एकाग्रता, मानसिक एवं शारीरिक चेतना शीघ्रता से प्रतिक्रिया व्यक्त करने में सुधार और शारीरिक क्षमता का विकास होता है। नृत्य तनाव कम करने में भी सहायक सिद्ध होता है।

- नृत्य के प्रशिक्षण से स्मरणशक्ति तीव्र होती है। केवल नृत्य से ही इस बात का पता चलता है कि शरीर की अपनी स्मरण शक्ति है।

- अन्य कला रूपों के साथ इसका संबंध होने से मस्तिष्क में सोचों का विस्तार होता है। किसी भी कला का विकास एकांत में नहीं होता। प्रत्येक कला में अन्य कलाओं की झलक होती है। संगीत नृत्य का एक अभिन्न अंग है और कविता, चित्रकला एवं मूर्तिकला भी नृत्य से भलीभांति जुड़े हैं। अतः नृत्य एक शारीरिक गतिविधि न होकर सांस्कृतिक विरासत को जानने का सम्पूर्ण अनुभव है।

उपरोक्त लाभ के संदर्भ में उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों में शास्त्रीय एवं क्षेत्रीय नृत्य शैलियों में अंतर की समझ होना आवश्यक है। उन्हें देश की शास्त्रीय नृत्य परम्पराओं का ज्ञान, उनका भौगोलिक विस्तार, हर एक का वर्णन वेशभूषा एवं इतिहास से भी परिचित होना चाहिए। विद्यार्थियों को उच्च प्राथमिक स्तर में नृत्य के सरल पारिभाषिक शब्दों से भी परिचित होना चाहिए, जैसे – रस, हस्त–अभिनय आदि। उनके सौंदर्यबोध के विकास हेतु उन्हें नृत्य के प्रदर्शन अपने क्षेत्र के नृत्य संस्थानों में जाकर सीखने की प्रक्रिया समझनी चाहिए। विद्यार्थियों को समीप के स्मारकों, संग्रहालयों तथा मंदिरों आदि में जाना चाहिए और वहाँ प्रदर्शित नृत्य रूपों के बारे में जानने का प्रयास करना चाहिए।
उच्च प्राथमिक स्तर के दौरान, नृत्य के माध्यम से उन्हें पौराणिक कथाओं से परिचित कराया जाना चाहिए जो विशेषकर महाभारत, रामायण तथा पंचतंत्र पर आधारित हो। सामान्य नृत्य गतिविधि और संगीत के माध्यम से काल्पनिक विषयों को लिया जा सकता है।

गतिविधि

1. विभिन्न अवसरों पर किए जाने वाले लोक नृत्यों की सूची बनवाएँ।
2. पत्रिकाओं, समाचारपत्रों आदि से नृत्य संबंधी चित्रों का संग्रह करवाएँ।
3. नृत्य संबंधी किसी घटना का वृतांत एवं संस्मरण लिखवाएँ।

अभ्यास के प्रश्न

1. नृत्य की प्रेरणा मनुष्य को प्रकृति व जीवन से किस प्रकार मिली? उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कीजिए।
2. औपचारिक शिक्षा में शास्त्रीय नृत्य की उपयोगिता बताइए।

लोक नृत्य

नृत्य के वे प्रकार जो क्षेत्रीयता से रचे बसे हों लोक नृत्य कहलाते हैं। वर्तमान समय में तीव्र गति से भागती–दौड़ती दुनिया ने अपने रंगों में रचे बसे इन लोक कलाओं को अपने पैरों तले रौंदने का काम किया है। हम अपनी पारम्परिक विरासत को भूलते जा रहे हैं। फलतः हमारी पहचान खतरे में पड़ गई है। लोक नृत्य एक ऐसी परम्परा रही है जो हमारे दैनिक एवं अक्षुण्ण सांस्कृतिक विरासत में उत्सवों के साथ स्वतः चलने वाली रही है। अब प्रश्न यह है कि आखिर क्यों हमें लोक नृत्यों की प्राचीन परम्परा को बनाए रखना चाहिए और कैसे? इस प्रश्न के उत्तर में हम कह सकते हैं कि हमारी परम्पराएँ जो विश्व अप संस्कृतियों के द्वारा से चली जा रही हैं। उसे पुनः अपनी

पुरानी पहचान देनी होगी तथा इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रारंभिक शिक्षा में इन लोक परम्पराओं को सम्मिलित कर बच्चों में इनके प्रति संवेदना का संचार करना होगा। इतना ही नहीं, अन्य विषयों के शिक्षण में कला को समावेशित कर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सुरूचि सम्पन्न बनाने की आवश्यकता है।

भारत के प्रमुख लोक नृत्य

- **भांगड़ा** – यह पंजाब का प्रसिद्ध लोक नृत्य है, जो फसल कटाई के उत्सव के रूप में आरंभ हुई थी। आज यह विभिन्न आयोजनों में प्रस्तुत किया जाता है। भांगड़ा में पंजाबी गीतों पर एक घेरे में लुंगी और पगड़ी पहने एक व्यक्ति ढोल बजाता है एवं उसके आसपास लोग नृत्य करते हैं। इसमें ढोल–ताशा और करताल नामक वाद्यों का प्रमुखता से प्रयोग होता है।

- **गिद्धा** – यह भी पंजाब का ही प्रसिद्ध लोक नृत्य है, जिसे महिलाओं द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इस नृत्य में एक गोल घेरे में बोलियां गाई जाती है तथा दो प्रतिभागी घेरे से निकलकर बीच में आते हैं और अभिनय करती हैं। शेष प्रतिभागी गाते हुए तालियां बजाती हैं। यह क्रिया बार–बार दुहराई जाती है।
- **रऊफ** – यह कश्मीर का लोक नृत्य है जो केवल महिलाओं द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इस नृत्य में किसी भी प्रकार के वाद्य यंत्रों का प्रयोग नहीं होता है।

- **जाब्रो** – जब लद्दाख का प्रसिद्ध लोक नृत्य है, जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों भागीदारी करते हैं। इस नृत्य की शुरुआत बहुत धीमी होती है लेकिन अंत आते–आते तेज हो जाता है। इसे प्रायः चांदनी रात में किया जाता है। इसमें रबाब और डेमियन बजाए जाते हैं।

- **रोप्पी** – यह अरुणाचल प्रदेश का लोक नृत्य है, जो वीर पुरुष के अभिनंदन में किया जाता है। यह नृत्य पुरुषों के द्वारा किया जाता है जो शत्रु या भयंकर पशुओं के शिकार करने वाले वीर के अभिनंदन में प्रस्तुत करते हैं।

- **बिहू** – यह असम का लोकप्रिय नृत्य है, जो वसंतोत्सव, नव वर्ष के आगमन आदि अवसर पर किया जाता है। इस नृत्य कों असम की कचरी, खासी आदि जनजातियों द्वारा सामूहिक रूप से किया जाता है। इसमें ढोल, पेपा, बांसुरी, गोगना जैसे वाद्यों का प्रयोग किया जाता है।

- **गरबा** – यह गुजरात का अत्यंत लोकप्रिय नृत्य है, जिसे नवरात्रि के अवसर पर किया जाता है। इस नृत्य में केवल स्त्रियां ही भागीदारी करती हैं। स्त्रियां यह नृत्य देवी दुर्गा की आराधना में करती हैं जिसमें एक स्त्री अपने सिर पर घड़ा रखकर खड़ी रहती है। घड़ा के ऊपर एक जलता हुआ दीपक रहता है। उसे घेरकर शेष स्त्रियां वृत्ताकार नृत्य करती हैं।

- **कालबेलिया** – यह राजस्थान का प्रसिद्ध लोक नृत्य है जो कालबेलिया जनजाति द्वारा किया जाता है। इस नृत्य में पुरुष वादक होता है और स्त्री नृत्य करती है। पुरुष इकतारा या तंबूरा बजाते हैं। नृत्य करते हुए महिलाएं अनेक करतब प्रस्तुत करती हैं, जैसे – आंख की पलकों से अंगूठी उठाना, मुंह

से पैसा उठाना आदि। इस नृत्य को 2010 में यूनेस्को ने अमूर्त सांस्कृतिक विरासत की सूची में शामिल कर लिया है।

- **बाँस नृत्य** – यह मिजोरम में प्रस्तुत किया जाने वाला लोक नृत्य है, जिसमें बांस का प्रयोग होता है। इसी कारण से इसे बांस नृत्य कहा जाता है। इस नृत्य में पुरुषों द्वारा दोनों हाथों में अलग–अलग दो बाँस पकड़ा जाता है। इसे पुरुष ढोल की ताल पर आपस में सटाते एवं अलग करते हैं। वहीं स्त्रियाँ ताल पर उसमें अंदर–बाहर करती हैं।

- **करमा** – यह उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, बिहार राज्य में आदिवासियों द्वारा किया जाने वाला नृत्य है। इसमें स्त्री, पुरुष सभी भाग लेते हैं। इसमें ढोल, मोहरी, झांझ, मंजीरा आदि वाद्यों का प्रयोग किया जाता है।

- **कलियट्टम** – यह केरल का प्रसिद्ध लोक नृत्य है जो पुरुष प्रधान होता है। इसे विभिन्न देवी देवताओं से मनौती के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

- **घूमर** – यह राजस्थान का लोक नृत्य है, जिसे भील जनजाति द्वारा आरंभ किया गया। इसकी लोकप्रियता के कारण इसे अब राजस्थान के अन्य समुदाय भी प्रस्तुत करते हैं। इसे केवल महिलाओं द्वारा ही शादी–व्याह के अवसर पर प्रस्तुत किया जाता है।

- **रायबेशी** – यह पश्चिम बंगाल का प्रसिद्ध लोक नृत्य है, जिसमें सिर्फ पुरुषों की भागीदारी होती है। यह नृत्य ताल प्रधान है। इसमें बोल अर्थात गीतों का प्रयोग नहीं होता है। सिर्फ ढोल की थाप पर नर्तक वृत में नृत्य प्रस्तुत करते हैं।

- **लुड्डी** – यह हिमाचल प्रदेश का लोक नृत्य है। इस नृत्य में नर्तक अपने आकर्षक हाव–भाव एवं पैरों को गति प्रदान करते हुए धीमे से तेज गति की तरफ नृत्य को ले जाते हैं।

- **घुमुरा** – यह उड़ीसा का प्रसिद्ध जनजातिय लोक नृत्य है। इस नृत्य को पुरुष नर्तक प्रस्तुत करते हैं, जिसमें पौराणिक कथाएं प्रस्तुत की जाती है। नर्तक की वेशभूषा जनजातीय परिवेश की याद दिलाता है। वहीं नृत्य शैली शास्त्रीय नृत्यों जैसी होती है।

गतिविधि

1. एक ऐसे लोक नृत्य का विवरण दीजिए जो अब कहीं दिखाई नहीं पड़ता है या जिसका प्रचलन बहुत कम हो गया है।
2.अपने क्षेत्र के लोक नृत्यों से संबंधित चित्रों का संग्रह करें ।

शास्त्रीय नृत्य

प्राचीन हिन्दू ग्रंथों के सिद्धांतों एवं तकनीकों और नृत्य के तकनीकी ग्रंथों तथा कला संबद्धता पर पूर्ण या आंशिक रूप से आधारित है। प्रारंभिक तौर पर यह माना जाता है कि भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र को दूसरी शताब्दी ईसापूर्व के आस–पास लिखा था। शास्त्रीय नृत्य की अधिकतम प्रचलित प्रणालियां उच्च स्तर की विस्तृत प्रणालियों से

शासित होती थी और इनका उदय आम आदमी के बीच से होता था। शास्त्रीय नृत्य और लोक नृत्य के बीच मुख्य अन्तर इनके नियम बद्धता एवं विस्तार का है। नृत्य और नाट्य कला अपने अग्रिम सिद्धांतों और शास्त्रों के नियमों का कड़ाई से पालन करते हैं। भारत में प्राचीन काल से ही नृत्य की एक समृद्ध और प्राचीन परम्परा रहा है। विभिन्न कालों की खुदाई, शिलालेखों, ऐतिहासिक वर्णन, राजाओं का वंश परम्परा तथा कलाकारों, साहित्यिक स्त्रोतों, मूर्तिकला और चित्रकला से व्यापक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। पौराणिक कथाएं और दंतकथाएं भी इस विचार का समर्थन करती हैं कि भारतीय कला के धर्म तथा समाज में नृत्य ने एक महत्वपूर्ण स्थान बनाया था। जबकि आज प्रचलित 'शास्त्रीय' रूपों या 'कला' के रूप में परिचित विविध नृत्यों के विकास और निश्चित इतिहास को सीमांकित करना आसान नहीं है।

शास्त्रीय नृत्य निमन्वत हैंः–

भरतनाट्यम

यह तमिलनाडु से सम्बंधित शास्त्रीय नृत्य है। ऐसा माना जाता है कि भरतनाट्यम नृत्य 2000 साल से व्यवहार में है। भरतमूनि के नाट्यशास्त्रध (200 ईसा पूर्व से 200 ईसवी सन) के साथ प्रारम्भक हुए अनेक ग्रंथों (पुस्तकों) से इस नृत्य रूप पर जानकारी प्राप्त होती है। नंदिकेश्वर द्वारा रचित अभिनय दर्पण भरतनाट्यम नृत्य में, शरीर की गतिविधि के व्याकरण और तकनीकी अध्ययन के लिए ग्रंथी (पुस्तकीय) सामग्री का एक प्रमुख स्रोत है। यहां प्राचीन काल की धातु और पत्थर की प्रतिमाओं तथा चित्रों में इस नृत्य रूप के विस्तृत व्यवहार के दर्शनीय प्रमाण भी मिलते हैं। चिदम्बयरम् मंदिर के गोपुरमों पर भरतनाट्यम नृत्य की भंगिमाओं की एक श्रृंखला और मूर्तिकार द्वारा पत्थर को काट कर बनाई गई प्रतिमाएं देखी जा सकती हैं। अनेक मंदिरों में मूर्तियों में नृत्य के चारी और करण को प्रस्तुत किया गया है और इनसे इस नृत्य का अध्ययन किया जा सकता है। भरतनाट्यम नृत्य को एकहार्य के रूप में भी जाना जाता है, जहां नर्तकी एकल प्रस्तुति में अनेक भूमिकाएं करती है। यह कहा जाता है कि 19वीं सदी के आरम्भ में, राजा सरफोजी के संरक्षण के तहत तंजैर के प्रसिद्ध चार भाईयों ने भरतनाट्यम् के उस रंगपटल का निर्माण किया था, जो हमें आज दिखाई देता है।

देवदासियो द्वारा इस शैली को जीवित रखा गया। देवदासी वास्तव में वे युवतियां होती थीं, जो अपने माता–पिता द्वारा मंदिर को दान में दे दी जाती थीं और उनका विवाह देवताओं से होता था। देवदासियां मंदिर के प्रांगण में, देवताओं को अर्पण के रूप में संगीत व नृत्य प्रस्तुत करती थीं। इस सदी के कुछ प्रसिद्ध गुरुओं और अनुपालकों (नर्तक व नर्तकियों) का संबंध देवदासी परिवारों से है, जिनमें बाला सरस्वती एक बहुत परिचित नाम है।

भरतनाट्यम् का रंगपटल बहुत विस्तृत होता है, जबकि प्रस्तुतीकरण में नियमित ढांचे का अनुरकरण किया जाता है। सबसे पहले यहां स्तुति–गान होता है। पहला नृत्य एककअलारिप्पूम है, जिसका शाब्दिक अर्थ है – फूलों से सजावट। यह ध्वनि अक्षरों के पठन के साथ शुद्ध नृत्य संयोजन का एक अमूर्त खण्ड है। अगला एकक, जातिस्वटरम् एक लघु शुद्ध खण्ड है, जो कर्नाटक संगीत के किसी राग के संगीतात्मूकस्वारों के साथ प्रस्तुत किया जाता है। जातिस्वररम् में साहित्य या शब्द नहीं होते पर अड्वू की रचना की जाती है, जो शुद्ध नृत्यरक्रम–नृत्य होते हैं। यह भरतनाट्यम नृत्यम में प्रशिक्षण के आधारभूत प्रकार हैं। भरतनाट्यम् की एक एकल नृत्य और बहुत अधिक झुकाव अभिनय या नृत्य के स्वांसग पहले नृत्य पर होता है, जहां नर्तकी गतिविधि और स्वांग द्वारा साहित्य को अभिव्यक्त करती है। भरतनाट्यम नृत्य के एक प्रदर्शन में जातिस्व रम् का अनुसरण शब्दधम् द्वारा किया जाता है। साथ में गाया जाने वाला गीत आमतौर पर सर्वोच्चृसत्ताक (ईश्वर) की आराधना होती है। शब्दधम् के बाद नर्तकी

वर्णनम्प्रस्तुजत करती है। वर्णनम्भतनाट्यम्रंगपटल की एक बहुत महत्वपूर्ण रचना है, इसमें इस शास्त्री यनृतय–रूप के तत्व का सारांश और नृत्यग तथा नृत्तब दोनों का सम्मिश्रण होता है। यहां नर्तकी दो गतियों में जटिल लयात्मीक नमूने प्रस्तुत करती है, जो लय के ऊपर नियंत्रण को दर्शाते हैं और उसके बाद साहित्य की पंक्तियों को विभिन्न तरीकों से प्रदर्शित करती है। यह वर्णन अभिनय में नर्तकी की श्रेष्ठता है और नृत्य कलाकार की अंतहीन रचनात्मकता का प्रतिबिम्ब भी है। वर्णनम् भारतीय नृत्य में बहुत सुंदर रचनाओं में से एक है। इस कठिन वर्णनम् के बाद नर्तकी मनोवृतियों की एक विविधता को अभिव्यक्त करने वाले एकक–अभिनय को प्रस्तुत करती है। भाव या रस चेहरे के अभिनय, शरीर की गतिविधियों और हस्तक मुद्राओं द्वारा अभिव्यक्त किए जाते हैं। इन नव रसों में से एक रस को चुनकर साहित्य में उसकी रचना की जाती है और बाद में उसे नर्तकी द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। सामान्यंखण्डीकीर्तनम्,कृति पदम् और जावली हैं। कीर्तनम् में मूल–पाठ महत्वपूर्ण है, जहांकृति एक रचना है, जिसमें संगीत के पहलू पर प्रकाश डाला जाता है। विशेषता में दोनों प्रायरू धार्मिक हैं और राम, शिव, विष्णु आदि के जीवन की उपकथाएं प्रस्तुत करते हैं। पदम् और जावली प्रेम और बहुधा दैविक पृष्ठाभूमि पर आधारित होते हैं।

कथकली

केरल कई परम्परागत नृत्य तथा नृत्य–नाटक शैलियों का घर है। इनमें सबसे विशिष्टर है – कथकली नृत्य। आज कथकली एक प्रचलित नृत्य रूप है। इसे तुलनात्मक रूप से हाल ही के समय में उद्भव हुआ माना जाता है। हालांकि यह एक कला है, जो प्राचीन काल में दक्षिणी प्रदेशों में प्रचलित बहुत से सामाजिक और धार्मिक रंगमंचीय कला रूपों से उत्पन्न हुई है। चाकियारकुत्तल, कूडियाट्टम, कृष्णा नाट्टम और रामानाट्टम – केरल की कुछ अनुष्ठानिक निष्पादन कलाएं हैं, जिनका कथकली के प्रारूप और तकनीक पर सीधा प्रभाव है। कथकली नृत्य, संगीत और अभिनय का मिश्रण है और इसमें अधिकतर भारतीय महाकाव्यों से ली गई कथाओं का नाटकीकरण किया जाता है। यह शैलीबद्ध कला रूप है। इसमें अभिनय के चार पहलू – अंगिका, अहार्य, वाचिक, सात्विक और नृत्त, नृत्य तथा नाट्य पहलुओं का उत्कृष्ट सम्मिश्रण है। नर्तक अपने भावों को विधिबद्धहस्त मुद्राओं और चेहरे के भावों से अभिव्यक्त करता है। इसके पश्चात् (पद्म) पद्यात्मक भाग होता है, जिन्हें गाया जाता है।

कथक

कथक शब्द की उत्पत्ति कथा शब्द से हुई है, जिसका अर्थ एक कहानी से है। कथाकार या कहानी सुनाने वाले वह लोग होते हैं, जो प्रायः दंतकथाओं, पौराणिक कथाओं और महाकव्यों की उपकथाओं के विस्तृत आधार पर कहानियों का वर्णन करते है। यह एक मौखिक परंपरा के रूप में शुरू हुआ। कथन को ज्यादा प्रभावशाली बनाने के लिए इसमें स्वांग और मुद्राएं कदाचित बाद में जोड़ी गईं। इस प्रकार वर्णनात्मक नृत्य के एक सरल रूप का विकास हुआ और यह हमें आज कथक के रूप में दिखाई देने वाले इस नृत्य के विकास के कारणों को भी उपलब्ध कराता है। कथक में गतिविधि (नृत्य) की विशिष्ट तकनीक है। शरीर का भार क्षितिजिय और लम्बवत् धुरी के बराबर समान रूप से विभाजित होता है। पांव के सम्पूर्ण सम्पर्क को प्रथम महत्व दिया जाता है, जहां सिर्फ पैर की एड़ी या अंगुलियों का उपयोग किया जाता है। यहां क्रिया सीमित होती है। यहां कोई झुकाव नहीं होते और शरीर के निचले हिस्से या ऊपरी हिस्से के वक्रों या मोड़ों का उपयोग नहीं किया जाता। धड़ गतिविधियां कंधों की रेखा के परिवर्तन से उत्पन्न होती है, बल्कि नीचे कमर की मांसपेशियों और ऊपरी छाती या पीठ की रीढ़ की हड्डी के परिचालन से ज्यादा उत्पन्न होती है। इसके प्रमुख घराने हैं - लखनऊ घराना, जयपुर घराना, बनारस घराना।

मणिपुरी

मणिपुरी नृत्य भारत के उत्तर–पूर्वी भाग में स्थित राज्य मणिपुर में उत्पन्न हुआ। यह भारतीय शास्त्रीय नृत्यों की विभिन्न शैलियों में से प्रमुख नृत्य है।

मणिपुरी नृत्य का उद्भव प्राचीन समय से माना जा सकता है, जो लिपिबद्ध किये गये इतिहास से भी परे है। मणिपुर में नृत्य धार्मिक और परम्परागत उत्सवों के साथ जुड़ा हुआ है। यहां शिव और पार्वती के नृत्यों तथा अन्य देवी–देवताओं, जिन्होंने सृष्टि की रचना की थी, की दंतकथाओं के संदर्भ मिलते हैं। 15वीं सदी ईसवी सन् में वैष्णव काल के आगमन के साथ क्रमशः राधा और कृष्ण के जीवन की घटनाओं पर आधारित रचनायें प्रस्तुत की गयीं। ऐसा राजा भाग्यंचंद्र के शासन काल में हुआ। इसी समय मणिपुर के प्रसिद्ध रास–लीला नृत्यों का प्रवर्तन हुआ था। यह कहा जाता है कि 18वीं सदी के इस दार्शनिक राजा ने एक स्वप्न में इस सम्पूंर्ण नृत्य की उसकी विशिष्ट वेशभूषा और संगीत सहित कल्पना की थी। मणिपुरी नृत्य का एक विस्तृत तरंग पटल होता है, तथापि रास, संकीर्तन और थंग–ता इसके बहुत प्रसिद्ध रूप हैं। यहां पांच मुख्य रास नृत्य हैं, जिनमें से चार का सम्बन्ध विशिष्ट ऋृतुओं से है। जबकि पांचवां साल में किसी भी समय प्रस्तुत किया जा सकता है। मणिपुरी रास में राधा, कृष्ण और गोपियां मुख्य पात्र होते हैं।

ओडिसी

ओडिशा, ओड़ीसी नृत्य का घर है और ओडिसी भारतीय शास्त्रीय नृत्य के अनेक रूपों में से एक है। नाट्यशास्त्र में अनेक प्रादेशिक विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। दक्षिणी–पूर्वी शैली उधरा मगध शैली के रूप में जाती है, जिसमें वर्तमान ओड़ीसी को प्राचीन अग्रदूत के रूप में पहचाना जा सकता है। भुवनेश्वर के पास उदयगिरी और खंडगिरी की गुफाओं से इस नृत्य रूप के, दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के पुरातत्वी प्रमाण पाए जाते हैं। बाद में अर्द्ध प्रतिमाओं के असंख्य उदाहरण, नृत्य करती योगीनियों की तांत्रिक आकृतियां, नटराज और प्राचीन शिव मंदिरों के अन्य दिव्य संगीतकार तथा दूसरी सदी ईसा पूर्व से दसवीं सदी ईसवी सन् तक की, नृत्य की इस निरंतर परम्परा का एक प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। शताब्दियों के लिए महरी इस नृत्य की प्रमुख अधिकारिणी रहीं। महरी, जो मुलतः मंदिर की नर्तकियां (देवदासी) थीं। धीरे–धीरे शाही दरबारों में काम करने लगीं, जिसके परिणामस्वरूप कला–रूप का ह्रास हुआ। इसी समय के आस–पास लड़कों का एक वर्ग, जिसे गोटूपुआ कहा जाता था, जो कला में प्रवीण था, मंदिर में और लोगों के सामान्य मनोरंजन के लिए भी नृत्य करने लगा। इस शैली के वर्तमान गुरुओं में अनेक गोटूपुआ परम्परा से सम्बन्धित हैं। ओड़ीसी एक उच्च शैली का नृत्य है और कुछ मात्रा में शास्त्रीय नाट्यशास्त्र तथा अभिनय दर्पण पर आधारित है। बाद में जदूनाथ सिन्हा के अभिनय दर्पण प्रकाश, राजमनीपत्तरा के अभिनय चंद्रिका और महेश्वर महापात्र के अन्य अभिनय चंद्रिका से अधिकांशतः इसे लिया गया है।

मंगलाचरण आरम्भिक एकक है, जहाँ नर्तकी हाथों में फूल लिए धीरे–धीरे मंच पर प्रवेश करती है और धरती माता को अर्पित करती है। इसके बाद नर्तकी अपने इष्टदेव को प्रणाम करती है। आमतौर पर मांगलिक शुभारम्भ के लिए गणेश का आह्ववान किया जाता है। एक नृत्तक्रम के साथ एकक का अन्त इष्टदेव, गुरू और दर्शकों को अभिवादन के साथ होता है। अगले एकक को बटु कहा जाता है, जहाँ चौक और त्रिभंगी की आधारभूत भंगिमा द्वारा पुरुषोचित और स्त्रीएयोचितद्वयात्मनकता में से ओड़ीसी नृत्त तकनीक के मूल विचार को प्रकाश में लाया जाता है। इसके साथ बजाया जाने वाला संगीत बहुत सरल है – नृत्यम पाठ्यक्रम का सिर्फ एक स्थाचयी

है। बटु में नृत्त की बहुत आधारभूत व्याख्या के बाद पल्लवी में गतिविधियों और संगीत के साज–सामान तथा पुष्प का नम्बर आता है। एक निश्चित राग में एक संगीतात्मरक संयोजन का दृश्यामत्मंक प्रदर्शन नर्तकी द्वारा मद्धम और यथोचित गतिविधियों के साथ किया जाता है। ताल संरचना के अन्दर जटिल नमूनों की विशिष्ट कलयात्मक रूपांतरण में संरचना की जाती है। अभिनय की प्रस्तुतति के द्वारा इसका अनुसरण किया जाता है। उड़ीसा में जयदेव द्वारा रचित बारहवीं सदी के गीत–गोविन्दाी के अष्टीपदों के नृत्य की परम्परा है। इस कविता का प्रगीत्वा (लयात्मचकता) विशेषतः ओड़ीसी शैली के लिए उपयुक्त है। गीत गोविन्दा के अतिरिक्त उपेन्द्रं भंज, बालदेव रथ, बनमाली और गोपाल कृष्ण जैसे अन्य ओड़िसी कवियों की रचनाओं का भी उपयोग किया जाता है। रंगपटल का आखिरी एकक, जो शायद एक से ज्यादा पल्लवी और अभिनय पर आधारित एककों का सम्मिश्रण है, को मोक्ष कहा जाता है। पखावज पर अक्षरों का वर्णन होता है और नर्तकी धीरे–धीरे घूमती हुई तीव्रता से चरमोत्कर्ष पर पहुंचती है। तब नर्तकी आखिरी प्रणाम करती है। ओड़िसी वादक मण्डल में मूलतः एक पखावज वादक (जो आमतौर पर स्वयं गुरू होता है), एक गायक, एक बांसुरी वादक, एक सितार या वीणा वादक और एक मंजीरा वादक होता है। नर्तकी अलंकृत, चांदी के ओड़िसी आभूषणों का श्रृंगार करती है और इसमें एक विशेष केश–सज्जा होती है। आजकल आमतौर पर साड़ी सिली हुई होती है और विशिष्ट शैली में पहनी जाती है। प्रत्येक प्रस्तुति में यहाँ तक कि एक आधुनिक ओड़िसी नर्तकी भी देवदासियों या महरी की धार्मिक निष्ठा में विश्वास रखती है, जहाँ व नृत्य के माध्यम से मोक्ष या मुक्ति को खोजती है।

कुचीपुड़ी नृत्य

कुचीपुड़ी भारतीय नृत्य की एक पारंपरिक शैली है। इस शताब्दी के तीसरे व चौथे दशक के आसपास यह नृत्य–शैली इस नाम के नृत्य–नाटक की लंबी तथा समृद्ध परंपरा से उद्भूत हुई। दरअसल, आंध्र प्रदेश के कृष्णा जिले में कुचीपुड़ी नाम का गांव है। यह विजयवाड़ा से 35 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। आंध्र प्रदेश में नृत्य–नाटक की एक लंबी परंपरा चली आ रही है, जिसे यक्षगान के जातिगत नाम से जाना जाता था । 17वीं शताब्दीं में एक प्रतिभाशाली वैष्णव कवि तथा द्रष्टाससिद्धेन्द्रस योगी ने यक्षगान के रुप में कुचीपुड़ी शैली की कल्पना की, जिनमें अपनी कल्पनाओं को मूर्त एवं साकार रूप प्रदान करने की अद्भुत क्षमता थी। संस्कृति में कृष्ण–लीला–तरंगिणी नामक काव्य के रचयिता, अपने गरुतीर्थनारायण योगी द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त कर, सिद्धेन्द्रय योगी यक्षगान की साहित्यिक परंपरा में तल्लीान हो गए। ऐसा कहा जाता है कि सिद्धेन्द्रा योगी ने एक स्वप्न देखा कि भगवान कृष्ण् उनसे अपनी सर्वाधिक प्रिय रानी सत्यभामा हेतु पारिजात लाने की पुराणकथा पर आधारित एक नृत्य नाटक की रचना करने का अनुरोध कर रहे हैं। इस अनुरोध का अनुपालन करते हुए सिद्धेन्द्र योगी ने उत्साहित होकर भामाकलापम् की रचना की, जिसे आज भी कुचीपुड़ी रंगपटल की पूर्वपीठिका माना जाता है। सिद्धेन्द्र योगी ने कुचीपुड़ी गांव के ब्राह्मण युवकों को अपनी रचनाओं, विशेषकर भामाकलापम् को प्रस्तुत करने हेतु प्रोत्साहित किया। भामाकलापम् की प्रस्तुति एक आश्चर्यजनक सफलता थी। इसका सौन्दर्यपरक आकर्षण इतना व्यापक था कि तत्कालीन गोलकुण्डा के नवाब अब्दुल हसनतनी शाह ने 1675 में एक ताम्र पट्टिका जारी कर इस कला को खोजने वाले ब्राह्मण परिवारों को आग्रहाम्स्वुरूपकुचीपुड़ी गांव भेंट स्वरूप दे दिया। इसी कारण से इसे कुचिपुड़ी नृत्य कहा गया – इसमें शरीर संतुलन व पादकौशल तथा उसके नियंत्रण में नर्तक कलाकारों की दक्षता प्रदर्शित करने हेतु पीतल की थाली की किनारी पर तथा सिर पर पानी से भरा घड़ा लेकर नृत्य किया जाता है।

मोहिनीअट्टम

मोहिनीअट्टम की शाब्दिक व्याख्या ''मोहिनी'' के नृत्य के रूप में की जाती है। हिन्दू पौराणिक गाथा की दिव्य मोहिनी, केरल का शास्त्रीय एकल नृत्य–रूप है। पौराणिक गाथा के अनुसार भगवान विष्णु ने समुद्र मन्थन के सम्बंध में और भस्मासुर के वध की घटना के सम्बंध में लोगों का मनोरंजन करने के लिए ''मोहिनी'' का वेष धारण किया था। यह केवल स्त्रियों द्वारा निष्पादित किया जाता है। मोहिनीअट्टम का उल्लेख मज्हमंगलमनारायणननम्बुतिरि द्वारा 1709 में लिखित ''व्यवहारमाला'' पाठों और बाद में महान कवि कुंजननम्बियार द्वारा लिखित ''घोषयात्रा'' में पाया जाता है। केरल के इस नृत्य रूप की संरचना त्रावणकोर राजाओं महाराजा कार्तिक तिरुनल और उसके उत्तराधिकारी महाराजा स्वाति तिरुनल (18वीं–19वीं शताब्दी ईसवी) द्वारा आजकल के शास्त्रीय स्वरूप में की गई थी। 'मोहिनीअट्टम'' की लोकप्रियता 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में आजकल के त्रिचुर और पालघाट जिलों को मिलाकर क्षेत्र तक सीमित थी। उसका उद्‌भव केरल के मन्दिरों में हुआ।

मोहिनीअट्टम नृत्य की खास–खास बातें

'मोहिनीअट्टम' की विशेषता, बिना किसी अचानक झटके अथवा उछाल के लालित्यपूर्ण, ढलावदार शारीरिक अभिनय है। यह, 'लास्य' शैली से संबंधित है जो स्त्रीत्वपूर्ण, कोमल और सुन्दर है। अभिनय में सर्पण द्वारा बल दिया जाता है, तथा पंजो पर ऊपर और नीचे अभिनय होता है, जो समुद्र की लहरों तथा कोकोनटपाम वृक्षों अथवा खेत में धान पौधों के ढलान से मिलता–जुलता है। पाद कार्य संक्षिप्त नहीं तथा कोमलता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। हस्त भंगिमाओं को महत्व दिया जाता है तथा मुखाभिनय विलक्षण मुखीय अभिव्यक्ति के साथ। बहुत से अभिनय स्त्री मंदिर नृत्यों से नकल किए गए हैं जैसे कि ननगियरकुथु और लोक नृत्य जैसे कि 'कईकोत्तीकली' जिसे तिरुवतिराकली के नाम से भी जाना जाता है। 'तिरुवतिराकली' एक विशुद्ध नृत्य है। दूसरी ओर 'मोहिनीअट्टम' के अन्तर्गत अभिनय पर बल दिया जाता है। नृतक 'पद्‌मों' और 'वर्नामों' के विषय और भावों के साथ मेल खाता है। हस्त भंगिमाएं मुख्यतः 'हस्तालक्षण दीपिका' से अपनाई गई हैं, जो एक पाठ है जिसका पालन कथकली द्वारा किया जाता है।

सत्रिया

15वीं शताब्दी ईस्वी में असम के महान वैष्णहव संत और सुधारक श्रीमंत शंकरदेव द्वारा सत्रियानृत्यक को वैष्णनव धर्म के प्रचार हेतु एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में परिचित कराया गया। बाद में यह नृत्य शैली एक विशिष्ट नृत्य शैली के रूप में विकसित व विस्तारित हुई। यह असमी नृत्य और नाटक का नया खजाना, शताब्दियों तक सत्रों द्वारा एक बड़ी प्रतिज्ञा के साथ विकसित और संरक्षित किया गया है (अर्थात् वैष्णव मठ या विहार)। इस नृत्य शैली को अपने धार्मिक विचार और सत्रों के साथ जुड़ाव के कारण उपयुक्तअ ढंग से सत्रिया नाम दिया गया। शंकरदेव ने विभिन्न स्थानीय शोध प्रबन्धकों, स्थानीय लोक नृत्यों जैसे विभिन्न घटकों को शामिल करते हुए अपने स्वयं की नई शैली में इस नृत्य शैली की रचना की। नव वैष्णव आंदोलन से पहले असम में दो नृत्य शैलियां थीं जैसे – ओजा पल्लि और अनेक शास्त्री तत्वों (अवयवों) सहित देवदासी। ओजा पल्लि नृत्यों के दो प्रकार अब तक असम में हैं दृ सुकनानी, जिसमें ओजा पल्लि नृत्य सर्प देवी की पूजा के अवसर पर समूह गायन की संगति करते हैं। मनसा और व्यातहार गीत, रामायण, महाभारत और कुछ पुराणों के असमी रूपांतर से ग्रहण किए गए हैं। शक्ति सम्प्रदाय (पंथ) का सुकनानी ओजा पल्लि है और व्यातहार गीत वैष्णव सम्प्रदाय का है। श्रीमंत शंकरदेव ने सत्र में अपने दैनिक धार्मिक अनुष्ठानों में व्यावहार गीतों को जोड़ा। अब तक भी व्यावहार गीत असम के सत्रों के धार्मिक अनुष्ठानों का एक भाग है। ओजा पल्लि समूह के नर्तक केवल गायन और

नृत्य ही नहीं करते पर मुद्राओं और शैलीबद्ध गतियों द्वारा वर्णन (आख्यान) को समझाते भी हैं। जहां तक देवदासी नृत्य का संबंध है, बड़ी संख्या में सत्रिया नृत्य के साथ लयात्मक शब्दों और पाद कार्य के साथ नृत्यं मुद्राओं की साम्येता, देवदासी नृत्य का सत्रिया नृत्य पर स्पष्ट प्रभाव निर्देशित करती है। सत्रिया नृत्य पर अन्य दृश्यात्मक प्रभाव असमी लोक नृत्यों जैसे बिहू, बोड़ो आदि से है। इन नृत्य शैलियों में बहुत सी हस्तमुद्राएं तथा लयात्मकव्य वस्थाभपन एक समान संचालित होता है । सत्रियानृत्य परंपरागत हस्त मुद्राओं, पाद कार्यों, आहार्य संगीत आदि के संबंध में सख्ती से बने सिद्धांतों के द्वारा सत्रिया नृत्य की परंपरा संचालित होती है। इस परंपरा में विशिष्ट रूप से भिन्न दो धाराएं होती हैं गायन बायनार नाच से खरमार नाच का आरंभ नाटकीय प्रस्तुतियों से युक्तपभाओना संबंधित रंगपटल से होता है तथा दूसरे ऐसे नृत्य जो स्वतंत्र हैं – जैसे चाली, राजस्थातन चाली, झुमुरा, नादु भंगी आदि। इसमें चाली को चरित्र लालितपूर्ण एवं शानदार – वीरोचित जुदाई को प्रदर्शित करते पुरूष चरित्र द्वारा निष्पादित किया जाता है।

शास्त्रीय नृत्य से संबंधित एक शिक्षक मोहन जी के संस्मरण

पिछले वर्ष जनवरी माह की बात है। मेरे शहर में बौद्ध महोत्सव का आयोजन हुआ। इसमें कत्थक नृत्य के महान कलाकार पंडित बिरजू महाराज का कार्यक्रम भी था। मैं अपने दोस्तों के दबाव पर कार्यक्रम देखने चला गया। कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। एक फूहड़ सा नृत्य प्रारंभ हुआ। चारों तरफ से शोरगुल होने लगे। दर्शकों की संख्या बढ़ने लगी। कुछ समय के बाद नृत्य समाप्त हुआ तथा पंडित बिरजू महाराज के कार्यक्रम की उद्घोषणा हुई। पंडित जी कत्थक नृत्य की बारीकियाँ बताते हुए अपने कई नृत्य प्रदर्शित किए। मुझे यह अच्छा नहीं लग रहा था या यों कहें मुझे इसकी समझ नहीं थी। मेरे बगल में बैठे हुए एक विदेशी दर्शक ने मुझे इस नृत्य की बारीकियाँ समझाई। मैं झेंप गया, मुझे लगा कि मैं अपनी संस्कृति के प्रति संवेदनशील नहीं हूँ, जितना एक–दूसरे देश के व्यक्ति को हमारी संस्कृति और विरासत की खूबियाँ अपनी ओर आकर्षित करती हैं। मेरा नज़रिया अब बदल चुका था। मेरे द्वारा इन शास्त्रीय नृत्यों

को देखने का नज़रिया बदल गया था। अब मैं दूरदर्शन पर प्रसारित अखिल भारतीय नृत्य के कार्यक्रम का नियमित दर्शक हूँ, जबकि पहले मैं इन कार्यक्रमों के प्रसारण प्रारंभ होते ही चैनल बदल दिया करता था।

आप इस संस्मरण से क्या सोचते हैं। आपको ऐसा नहीं लगता कि हम अपनी परम्पराओं और सांस्कृतिक विरासत को भूलते जा रहे हैं तथा नकल की परम्परा को अपनाने लगे हैं? हमारी कलात्मक संवेदनशीलता दिशा परिवर्तित करती जा रही है।

सृजनात्मक नृत्य

वर्तमान समय में नृत्य की कई शैलियाँ विकसित हो गई हैं जिनमें संसार की कई नृत्य विधाओं का मिश्रण दिखाई पड़ता है। आपने टी.वी. के कई चैनलों पर नृत्य प्रतियोगिता के कार्यक्रम देखे होंगे। आपने ऐसे नृत्य देखे होंगे जो न तो लोक नृत्य हैं और न ही शास्त्रीय। इन्हें सृजनात्मक नृत्य की श्रेणी में रखा जा सकता है, जैसे – रोबोट नृत्य, ब्रेक डांस, हीप–हॉप, फ्यूज़न। भारतीय सिनेमा इस प्रकार के नृत्य शैली का जन्म माना जा सकता है। इस प्रकार की नृत्य यद्यपि हमारे सांस्कृतिक परम्पराओं का परिचायक नहीं है। अपितु इनमें कलाकारों के कला क्षमता या कुछ नया करने का जज़्बा दिखाई पड़ता है। इसका एक सकारात्मक पहलू यह है कि बच्चों को अत्यन्त प्रभावित करते हैं।

यहाँ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह प्रासंगिक होगा कि कला के माध्यम से शिक्षा में यह आवश्यक नहीं है कि कला प्राचीन/पारम्परिक है या सृजनात्मक अपितु इनसे बच्चों के शिक्षण अधिगम प्रक्रिया कहाँ तक प्रभावित होता है।

परछाईं से रोचक स्वरूपों को गढ़ना

बच्चे सामन्यतः अपने परछाई में भी कलात्मकता का अनुभव करते हैं। वे इसे विभिन्न प्रकार की आकृतियों के रूप में महसूस करते हैं। दिये या अन्य रोशनी के अपनी में अवरोधक के रूप में अपने हथेलियों एवं उँगलियों की सहायता से कई प्रकार के आकृतियों को गढ़ते हुए अपनी कल्पना की उड़ान भरने लगते हैं। इन परछाईयों से उन्हें कई प्रकार के जानवर मनुष्य आदि की आकृति बनाने में आनन्द आता है। साथियों की सहायता इस खेल को रोचकता प्रदान करती है। मजा जो तब आता है जब वे इनकी सहायता से विषयों की अवधारणा समझने लगते हैं। अजब है परछाईयों का खेल। ऐसा लगता है कि शायद छाया पुतली का सूत्रपात भी यहीं से हुआ होगा।

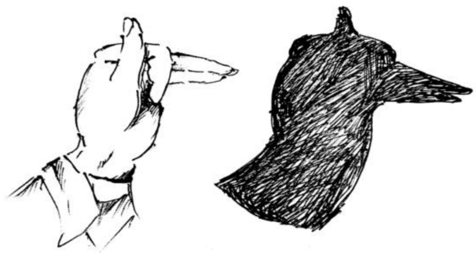

नाटक मंचन के विविध स्वरूप

नाटक एवं रंगमंच – नाटक वस्तुतः एक साहित्य विधा है जिसमें कथा को कथाकार बिना हस्तक्षेप के पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत करता है। मंचन की दृष्टि से नाटक दो प्रकार के होते हैं:–

1. **मंचीय नाटक –** सामान्यतः मंचीय नाटक की प्रस्तुति मंच पर होती है। नाटकों के मंच की तैयारी विशेष प्रकार से किया जाता है। मंच पर प्रकाश की

व्यवस्था, पर्दे और विंग्स की व्यवस्था की जाती है जिससे पात्रों का प्रवेश एवं निकास तथा दृश्यों के बदलने की प्रक्रिया को जीवंत किया जाता है। कहीं–कहीं मंच पर मुख्य पर्दे की व्यवस्था की जाती है जिसे प्रारंभ होने, दृश्य बदलने एवं समाप्त होने पर इस्तेमाल किया जाता है। परन्तु आधुनिक रंगमंच में प्रकाश व्यवस्था से इसका काम लिया जाता है। पारम्परिक रंगमंच या लोक रंगमंच नौटंकी, विदेशिया आदि की प्रस्तुति में मंच की पिछली दीवार पर चित्रित पर्दे का उपयोग होता था। आधुनिक रंगमंच में इस परम्परा को बदल दिया गया है। अब तो कई इलेक्ट्रॉनिक ध्वनि एवं प्रकाश की व्यवस्था की जाती है। इसमें कम्प्यूटर, इन्टरनेट आदि आधुनिक तकनीकों का भी सहारा लिया जाता है। वस्त्र विन्यास एवं अन्य व्यवस्थाओं का स्वरूप भी बदला है।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि आधुनिक रंगमंच में संप्रेषण की विधियाँ भले ही बदल गई हों परन्तु इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि विषयवस्तु का प्रभावी प्रस्तुति किया जाए।

2. **नुक्कड़ नाटक**– जैसा कि नाम से पता चलता है कि नुक्कड़ पर किया जाने वाला नाटक नुक्कड़ नाटक कहलाता है। नुक्कड़ नाटक जनसामान्य के लिए होता है। नुक्कड़ नाटक की परम्परा समाज में नई नहीं है बल्कि प्राचीन काल में जागरण, गाँव में मुनादी आदि के रूप में शुरू होकर एक निश्चित उद्देश्य के साथ अपने वर्तमान रूप में विकसित हुआ है। जहाँ पर मंचीय नाटक की पहुँच नहीं है वहाँ नुक्कड़ नाटक आसानी से पहुँच जाता है। इन नाटकों की एक विशेषता है कि अभिनयकर्ता और दर्शक, नाटक प्रदर्शन के दौरान एक–दूसरे के बेहद करीब होते हैं। इनमें मंचीय नाटक की तरह विशेष व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होती। नुक्कड़ नाटकों के माध्यम से हम ज्वलंत सामाजिक–राजनैतिक मुद्दों को प्रभावी तरीके से उठाते हैं। नुक्कड़ नाटकों को लोकप्रिय बनाने में सफदर हासमी का नाम बड़े ही सम्मान से लिया जाता है।

नाटक मंचन के विविध स्वरूप को निम्न फ्लोचार्ट से सहज रूप में समझा जा सकता है –

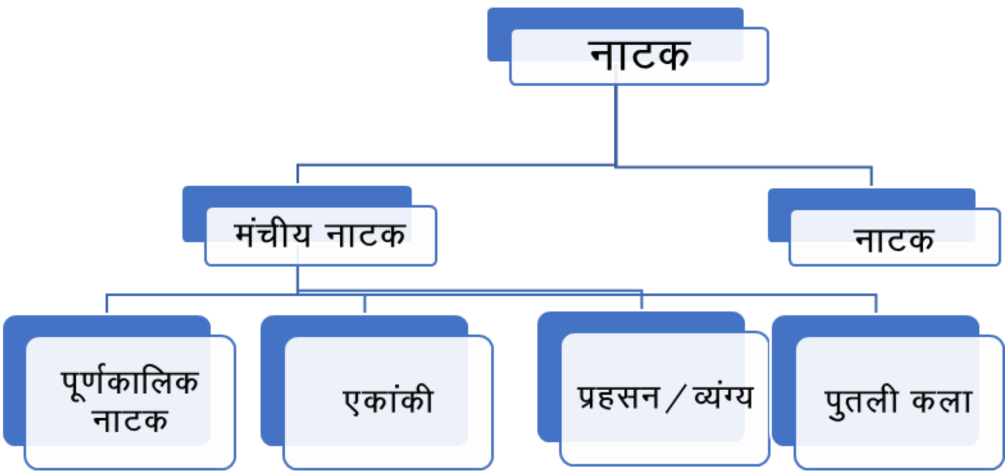

1. **पूर्णकालिक नाटक**

ऐसा नाटक जो एक अंक से अधिक का हो और जिसे मंचित करने में डेढ़ घंटे का कम–से–कम समय लगता हो उसे पूर्णकालिक नाटक कहते हैं।

2. **एकांकी**

एक अंक वाले नाटक को एकांकी कहा जाता है। रंगमंच में एकांकी किसी घटनाक्रम के किसी पहलू की झलक मात्र है।

3. **प्रहसन एवं व्यंग्य नाटक**

वैसे तो प्रहसन एक प्राचीन नाट्य रूपक रहा है किंतु आधुनिक काल में यह व्यंग नाटक के नाम से जाना जाता है। इसे प्रस्तुत करने में अधिकतम समय सीमा 15 से 20 मिनट की होती है।

4. **पुतली कला**

भारत की प्राचीन प्रदर्शन कलाओं में से एक कठपुतली कला भी है। पुतली के माध्यम से कथा कहने की प्राचीन परम्परा भारत के कई प्रांतों में पाई जाती है। सामान्यतः रामायण, महाभारत और पुराणों की कथाओं को इस माध्यम से संप्रेषित किया जाता था। गाँव के लोग अपने काम से निवृत्त होकर इकट्ठे होकर कठपुतली कला का आनंद लिया करते थे। इसमें मनोरंजन के साथ प्राचीन परम्पराओं और धार्मिक ऐतिहासिक ज्ञान से रूबरू हो जाते थे। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि कठपुतली बनाने और चलाने का कार्य पारिवारिक रूप से पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होता रहता है। पुतली चलाने वाले परिवार अपनी पुतलियों को परिवार के सदस्य मानते हैं। खराब हो गई पुतली (puppet) को सम्मानपूर्वक दफना देने की परम्परा भी है।

सामान्यतः पुतली चार प्रकार की होती है।

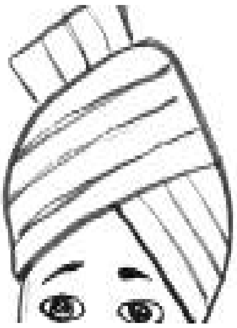

1. छड़ पुतली (Rod Puppet)
2. दस्ताना पुतली (Gloves puppet)
3. छाया पुतली (Shadow puppet)
4. धागा पुतली (string puppet)

पुतली की बनावट और संचालन के आधार पर इनको वर्गीकृत किया गया है। इनके अलावा भी कई प्रकार की पुतली आजकल प्रचलन में है, जैसे– अँगुली पुतली (Finger puppet), मुख पुतली (Muppet) आदि। वर्तमान समय में संचालन एवं

बनावट के संदर्भ में कई प्रकार की पुतली बनाई जाती है जिनमें आधुनिक तकनीक का भी इस्तेमाल किया जाता है।
पिछले दिनों मतदान हेतु जागरुक करने के लिए बच्चों के माध्यम से कई कार्यक्रम आयोजित किए गए। इनमें भाषण का सहारा लिया गया। लोग इस कार्यक्रम से बहुत प्रभावित नहीं हुए। मेरे एक मित्र हैं, उन्हें पुतली बनाने और चलाने की थोड़ी दक्षता है। मैंने उन्हें उस कार्यक्रम के लिए प्रेरित किया। फिर क्या था, वे अपने पुतुल का बक्सा लेकर मेरे साथ गाँव–गाँव घुमने लगे। लोगों की भीड़ इकट्ठा हो जाती थी। बच्चे भी मज़ा लेकर कार्यक्रम देखते और निर्वाचन आयोग का संदेश मतदाता जागरुकता के संदर्भ में ऋप्रभावपूर्ण तरीके से संप्रेषित होने लगा।
मैं इस घटना से बहुत प्रभावित हुआ तथा यह सोचने लगा कि हम विषय की कठिन अवधारणाओं को वर्ग कक्ष में, पुतली (puppet) के माध्यम से समझा सकते हैं। क्या आप भी ऐसा सोचते हैं? यदि ऐसा है तो विचार करें कि ऐसा कैसे संभव है?

गतिविधि

1. पुतली निर्माण कार्यशाला का आयोजन करवाएँ।
2. किसी एक विषय से संबंधित एक पुतली मंचन का कार्यक्रम का आयोजन करवाएँ।

रंगमंच

नाटक की रचना मूल रूप से मंचन होने के लिए किया जाता है। ऐसा स्थान जहां नाटक का मंचन किया जाता है उसे प्रायः रंगमंच के नाम से जाना जाता है।

रंगमंच

लोक एवं पारंपरिक रंगमंच | **संस्कृत रंगमंच** | **आधुनिक रंगमंच**

लोक रंगमंच

भारत विभिन्न सांस्कृतिक धरोहरों का देश है। लोक रंगमंच सामाजिक उत्सवों एवं परम्पराओं में रचा बसा है। आज हमारी विरासत खतरे में दिखाई पड़ती है। क्योंकि इस दौड़ती–भागती दुनिया में इलेक्ट्रोनिक मीडिया का अत्यधिक प्रभाव पड़ने लगा है। मनोरंजन के कई साधन विकसित हो गए हैं। जो व्यक्ति को एकाकी जीवन की ओर ढकेलने लगे है। सामाजिक और सामूहिक गतिविधियों से लोग विरक्त होने लगे हैं। लोगों ने शिकायतों का निराकरण इस जवाब से करना प्रारंभ कर दिया है ''समय नहीं है''। मनोरंजन की परिभाषा बदल गई है। यह अत्यन्त दुःख का विषय है कि हम अपनी विरासत एवं संस्कृतियों की पहचान विदेशियों के उत्सुकता के आधार पर करने लगे हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि इन परिस्थितियों में हम शिक्षकों का क्या कर्तव्य है तथा हमें इस क्षेत्र में क्या–क्या करने की आवश्यकता है ताकि बच्चों की संवेदना को कला के क्षेत्र में जागृत किया जाए और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया से इसे जोड़ा जाए।
हमें बच्चों को अपने क्षेत्र की लोक नाट्य परम्पराओं के बारे में जानने के लिए प्रेरित करना चाहिए। रामलीला रासलीला एवं अन्य उत्सवों के मंचन को देखने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। जिसकी वे कक्षा में आकर अन्य विद्यार्थियों से चर्चा करेंगे। विशेषकर प्रदर्शन में विभिन्न भूमिकाओं, उनकी जीवन शैली, आंतरिक समस्याओं, रूचि इत्यादि जो उन्होंने देखी है और जिससे वे अपने आस–पास के जीवन को समझेंगे।

लोक रंगमंच के कई उदाहरण हमारे प्रांत में देखने को मिलते हैं। जैसे – नौटंकी, विदेसिया आदि।

संस्कृत रंगमंच

विश्व रंगमंच की परंपरा में भारत का रंगमंच अति प्राचीन रहा है । जिसका एक अनुपम उदाहरण संस्कृत रंगमंच है। इसका आरंभ ईसा पूर्व पहली शताब्दी में माना जाता है और लगभग हजार साल तक इसका विस्तार माना जाता है। संस्कृत रंगमंच को भारतीय शास्त्रीय रंगमंच के रूप में भी जाना जाता है, जिसकी शास्त्रीयता के लिए शास्त्र के रूप में भरतमुनि का नाट्यशास्त्र ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में रचा गया था। संस्कृत रंगमंच के प्रमुख नाटककार के रूप में भास, कालिदास, शुद्रक, भवभूति, हर्ष आदि प्रसिद्ध हैं।

आधुनिक रंगमंच

औद्योगिक क्रांति और विज्ञान के विकास के कारण विश्व में एक नए तरह का रंगमंच जन्म लिया जिसे आधुनिक रंगमंच के नाम से जाना जाता है। भारत में आधुनिक रंगमंच की शुरुआत 1795 से माना जाता है। आधुनिक रंगमंच में भारत के लगभग सभी भाषाओं में रंगमंच का उदय हुआ जिसमें तत्कालीन जीवन एवं मानव समस्याओं को प्रमुखता से प्रस्तुत किया गया। इसके प्रमुख नाटककार हैंः– मोहन राकेश, बादल सरकार, विजय तेंदुलकर, गिरीश कर्नाड। आधुनिक रंगमंच में ही रंगमंच में एक प्रमुख तत्व का उदय हुआ जिसे निर्देशक के नाम से जाना गया। भारत में आधुनिक रंगमंच के प्रमुख निर्देशक हैं – शंभू मित्र, उत्पल दत्त, इब्राहिम अल्काजी, वी. वी. कारंत, हबीब तनवीर आदि।

अभिनय

नाटक का एक प्रमुख तत्व अभिनय है जिसे इस फ्लो चार्ट से सरलता से समझा जा सकता है दृ

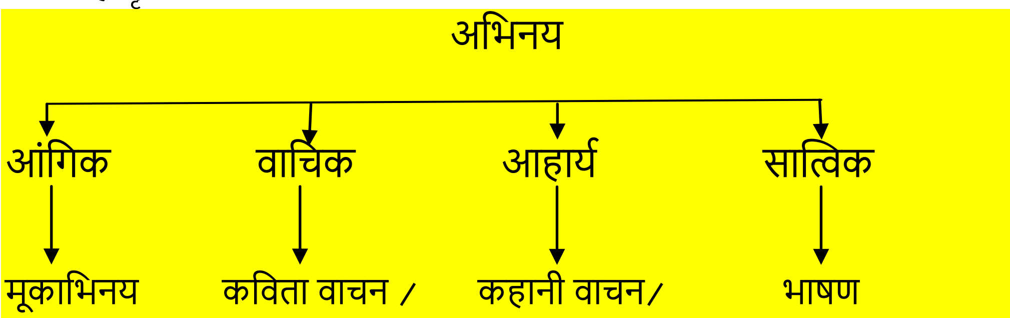

आंगिक अभिनय

अंगों द्वारा किया गया अभिनय आंगिक अभिनय कहलाता है।

मूक अभिनय

मूक यानि बिना बोले अभिनय द्वारा किसी स्थिति या मनस्थिति भाव आदि को व्यक्त करना मूकभिनय है। इस मूकभिनय के माध्यम से सम्पूर्ण नाटक की प्रस्तुति भी की जाती है। इस प्रकार के नाटकों की यह विशेषता है कि इसे मंच पर या नुक्कड़ पर भी आसानी से प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

वाचिक अभिनय

बोल कर किया गया अभिनय वाचिक अभिनय कहलाता है। इसके अंतर्गत नाटक के संवाद के अतिरिक्त कविता, कहानी वाचन और भाषण भी आता है।

आहार्य अभिनय

वस्त्र, वेषभूषा, मंच सज्जा, प्रकाश और अन्य तकनीकी तत्वों के माध्यम से जो अभिनय होता है, उसे आहार्य अभिनय कहते हैं।

सात्विक अभिनय

जो अभिनय सत्व अर्थात ईमानदार भाव से जैसा होना चाहिए वैसे ही प्रस्तुत किया जाए, उसे सात्विक अभिनय कहते हैं।

भारत मुनि के अनुसार अभिनय के उपर्युक्त प्रकार हैं किन्तु कक्षा में नाटकीय गतिविधि कराने के लिए इम्प्रोवाजेशन एक महत्वपूर्ण उपकरण है। साथ ही रोल प्ले और एकल अभिनय के माध्यम से भी कक्षा में नाटकीय गतिविधि संचालित की जा सकती है

इंप्रोवाइजेशन– नाटक/रंगमंच के इस उपकरण के माध्यम से हम कक्षा में बच्चों के साथ बच्चों में नाटकीकरण की प्रक्रिया का विकास करा सकते हैं। इसमें कुछ परिस्थितियाँ बच्चों के समक्ष रखी जाती हैं तथा उनका अभिनय करने के लिए कहा जाता है। इस प्रक्रिया में बच्चे स्वयं ही संवाद, घटना आदि की रचना करते हैं। इसके लगातार अभ्यास से बच्चों में अभिनय क्षमता के साथ साथ भाषा और सोचने, समझने एवं उसे अभिव्यक्त करने की क्षमता का विकास होता है।

एकल अभिनय

जब एक ही कलाकार सम्पूर्ण नाटक में विविध पात्रों एवं चरित्रों को एक साथ अभिनित करता है तो उसे एकल अभिनय कहते हैं।

शिक्षा में रंगमंच की अवधारणात्मक समझ तथा उपयोगिता

रंगमंच एक मिश्र कला है, जहां सभी कलाओं का समावेश होता है। न सिर्फ कला, बल्कि साहित्य, विज्ञान, दर्शन, नैतिक उपदेश, अध्यात्म आदि का भी इसमें समावेश होता है। इसके संबंध में हजारों साल पूर्व भरतमुनि अपनी रचना नाट्य शास्त्र में कहते हैं कि

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न सा योगो न तत्कर्म; नाट्येऽस्मिन यन्नदृश्यते।।

अर्थात्, ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग एवं कर्म नहीं है जो नाटक में दिखाई न पड़े। वस्तुतः रंगमंच की प्रकृति में ही शिक्षा का समावेश है। प्रायः रंगमंच की कलाओं को मनोरंजन का साधन माना जाता है। यह सत्य है कि रंगमंच की कला में मनोरंजन एक प्रधान तत्व है लेकिन वही एकमात्र तत्व नहीं है। रंगमंच करते या देखते हुए हमें अनेक प्रकार की शिक्षा मिलती हीं है। लेकिन यह शिक्षा आनंददायी ढंग से मिलती है। इसको ग्रहण करने हेतु हमें अलग से कोई प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती है। यहीं इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि अभी हमने जो ऊपर चर्चा की है वह 'रंगमंच अथवा नाटक से शिक्षा' से संबंधित है। जबकि हमें अवधारणात्मक रूप से 'शिक्षा में रंगमंच' को समझने की आवश्यकता है। अक्सर रंगमंच अथवा नाटक से शिक्षा को ही शिक्षा में रंगमंच की अवधारणा समझने की भूल की जाती रही है। जैसा कि पूर्व में भी कहा जा चुका है कि सभी प्रकार के रंगमंच से शिक्षा मिलती है। इसकी रचना प्रक्रिया एवं प्रस्तुतियों को करने–देखने से सीखना होता है। सभी प्रकार के रंगमंच से सीखना संभव है लेकिन इसका यह कतई मतलब नहीं है कि सभी प्रकार का रंगमंच शैक्षिक उद्देश्य से अभिकल्पित किया गया हो। शैक्षिक उद्देश्य से अभिकल्पित रंगमंच में वह अवधारणा, वह पाठ्य महत्वपूर्ण तत्व होता है, जिसके लिए उसे अभिकल्पित किया गया है। और रंगमंच वह माध्यम होता है जिसके माध्यम से सीखने वाला उस अवधारणा अथवा पाठ को सहज और आनंददायी ढंग से सीखता है। अमेरिकी दार्शनिक एवं शिक्षाविद जॉन डीवी ने बच्चों के संज्ञानात्मक और भावनात्मक विकास हेतु एक क्रांतिकारी विचार सामने लाया जिसे हम 'लर्निंग बाय डूइंग' अथवा 'करके सीखना' के नाम से जानते हैं। जॉन डीवी ने तर्क दिया कि बच्चों का संज्ञानात्मक और भावनात्मक विकास बचपन के रचनात्मक नाटक और समस्या को सुलझाने के द्वारा बेहतर होता है। इसी आधार पर उन्होने 'लर्निंग बाय डूइंग' की

अवधारणा को प्रस्तुत किया। जिसमें बच्चे सबसे अच्छा करके सीखते हैं और इस सीखने में कला महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इन्हीं विचारों के प्रभाव से विश्व भर में शिक्षा में रंगमंच (थिएटर इन एजुकेशन) का विकास हुआ। थिएटर इन एजुकेशन को प्रायः टी.आइ.ई. (TIE) कहा जाता है। यह एक शिक्षण पद्धति है, जिसका प्रयोग शिक्षा शास्त्र की शिक्षण विधि के रूप में किया जाता है। दरअसल किसी भी अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए रंगमंच एक जीवंत संदर्भ प्रदान करता है, जहां सीखने वाला बिना किसी हस्तक्षेप के वह अनुभव प्राप्त करता है जो उसे सीखने में मदद करता है। प्रायः हमारे यहां सीखने के क्रम में जो अनुभव सीखने वाले को दिया जाता है वह दोयम होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उसे शिक्षक या पाठ्यपुस्तक आदि के माध्यम से वह अनुभव प्राप्त होता है। शिक्षा में रंगमंच का प्रयोग जब शिक्षण शास्त्र के रूप में किया जाता है, तो रंगमंच की जीवंतता सीखने की प्रक्रिया को और सहज और फर्स्ट हैंड एक्सपीरियंस बनाकर सीखने को सहज बनाता है और रंगमंच के मनोरंजक तत्व सीखने की प्रक्रिया को आनंददायी बनाता है।

शिक्षा में रंगमंच की उपयोगिता

नाटक या रंगमंच, भागीदारी कर रहे सभी बच्चों में सभी संभव तरीकों यथा शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास में सहायक होता है। नाटक हमें विभिन्न पात्रों में ढल कर विचारों व भावों को अभिव्यक्त करने का अवसर देता है। बच्चे क्या जानते हैं, क्या महसूस करते और सोचते हैं, इसकी अभिव्यक्ति का मौका देना उनके विकास का महत्वपूर्ण अंग है। कला के सभी रूपों में नाटक ही वह रूप है जिससे बच्चे सबसे सहज और स्वाभाविक रूप से जुड़ जाते हैं। बड़ों की बोली, गति और उनके कार्यों की नकल करना वे पसंद करते हैं। वे इस तरह सीखते हैं, साथ–ही यह दुनिया के बारे में उनके ज्ञान की पुष्टि का भी माध्यम है। बच्चों को सुनना, उन्हें बातचीत करने का मौका देना और उन्हें खेलने की स्वतंत्रता देना, बच्चों के लिए नाटक का आधार है। इस तरह के अवसर मिलने से वे अधिक अभिव्यक्तिपूर्ण, संप्रेषणशील, आत्मविश्वासी, सहयोगी एवं सृजनशील बनते हैं। नाटक के माध्यम से बच्चों को अपनी शारीरिक और मानसिक अवरोधों को तोड़ने में मदद मिलती है और उन्हें अपनी सृजनशीलता के विस्तार हेतु आधार मिलता है। नाटक करते हुए बच्चे गलती करने के भय से मुक्त होते हैं तथा भयमुक्त वातावरण में और अधिक सृजनशील होने की संभावना बढ़ जाती है।

मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में एक से अधिक ज्ञानेन्द्रियों का क्रियाशील होना इसकी गति को बढ़ा देता है। रंगमंच बच्चों को वह माध्यम प्रदान करता है जिसमें एक से अधिक इन्द्रियां एक साथ सक्रिय होती हैं, जैसे– आँख, कान। एक चीनी लोकोक्ति जो संभवतः शिक्षा में रंगकर्म की जरूरत को सटीक ढंग से स्पष्ट करती है।

मैंने सुना – मैं भूल गया।
मैंने देखा – मुझे याद रहा।
मैंने किया – मैं समझ गया।

रंगमंच बच्चों में निम्नांकित कौशलों के विकास का द्वारा स्वतः ही खोल देता है।

1. कल्पना करना
2. सामाजिक संवेदना
3. सहयोग की भावना
4. एकाग्रता
5. संप्रेषण कौशल
6. समस्या का हल ढूँढना
7. मनोरंजन

8. भावात्मक विकास
9. आत्मानुशासन
10. सामूहिक भरोसा एवं विश्वास
11. स्मरण शक्ति का विकास
12. सामाजिक जागरुकता
13. सौन्दय बोध का विकास
14. भयमुक्त एवं सीखने योग्य वातावरण
15. बच्चों के सीखने की प्रक्रिया में चिंतनशील भागीदारी

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिक्षा में रंगमंच की महत्वपूर्ण भूमिका है जो एक तरफ बच्चों के संपूर्ण विकास हेतु कार्य करता है वहीं दूसरी तरफ सीखने की प्रक्रिया को सहज, सरल और रुचिकर बनाती है। रंगमंच की प्रक्रिया के तहत बच्चों में कई कौशल का स्वतः विकास होता है। विद्यालय में आपसी सौहार्द कायम करने का यह उत्कृष्ट अस्त्र है। इन सब के बीच आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षक दक्षता के साथ इन गतिविधियों का इस्तेमाल अपने शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में होशियारी से करें।

गतिविधि

1. अपने क्षेत्र के किसी भी लोक नाट्य प्रस्तुति की विस्तृत चर्चा करें।
2. किसी एक सामाजिक मुद्दे पर एक नुक्कड़ नाटक की प्रस्तुति करें।
3. हिंदी के कुछ महत्वपूर्ण नाटकों का सामूहिक पाठ करें।
4. सीखने योग्य वातावरण निर्माण हेतु अपने कक्षा में नाटक विधा का प्रयोग कर उसका अनुभव लिखें।

कक्षा में नाटक कैसे करवाएँ?

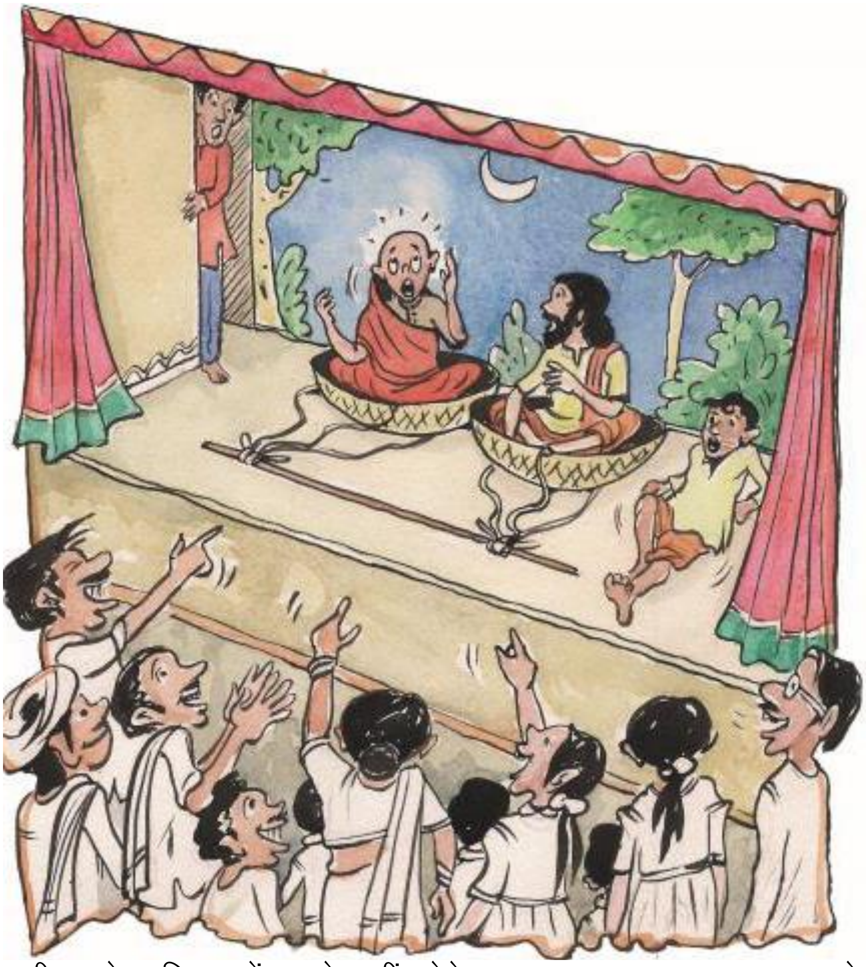

सभी बच्चे अभिनय में अच्छे नहीं होते खासकर तब जब नाटक उनके पहले भाषा पाठ्यक्रम का हिस्सा नहीं होता। छोटे–छोटे चरणों के साथ अपनी कक्षा में नाटक से बच्चों का परिचय कराएं। सरल व मार्गदर्शित गतिविधियों से शुरुआत करें जैसे किसी दानव की नकल करो और फिर जैसे–जैसे बच्चों का आत्मविश्वास बढ़े तो कम नियंत्रित गतिविधियों की ओर बढ़ें। आपको आश्चर्य हो सकता है कि आपको उन्हें साधारण सी चीज़ें जैसे – अपने हाथों को फैलाना, छोटे और बड़े कदम लेना और मनोभावों को प्रदर्शित करने के लिए अपने चेहरे और पूरे शरीर का इस्तेमाल करना सिखाना पड़ता है।

बच्चों को नाटकीकरण में ले जाने के लिए संपूर्ण शारीरिक क्रिया वाली गतिविधियां एक शानदार तरीका है। बच्चे भाषा के प्रति अपने शरीरों से प्रतिक्रिया करते हैं, जो

स्वांग और अभिनय की तरफ पहला कदम है। बच्चें को अक्सर यह आभास नहीं होता कि वे चीजों को अलग–अलग ढंग से कह सकते हैं। उनसे शब्दों या वाक्यों को जोर से, धीमे से, क्रोधी स्वर में या दुखी स्वर में बोलने के लिए कहना भी उनके लिए अपनी आवाजों की शक्ति को पहचानने का अच्छा तरीका हो सकता है। बच्चों को यह महसूस होना जरूरी है कि आपके भीतर नाटकीकरण के प्रति जोश है और आप अपने द्वारा प्रस्तावित गतिविधियों को करने में मज़ा लेते हैं। आप उनके लिए एक प्रारूप या आदर्श की तरह काम करते हैं और उन्हें कक्षा में सक्रिय रहने के लिए प्रोत्साहन देते हैं। बच्चे अधिकांश गतिविधियाँ खड़े रहकर करते हैं। अतः कक्षा–कक्ष को इस प्रकार व्यवस्थित करें कि सामने पर्याप्त जगह उपलब्ध हो जाए। यदि बच्चे गोले में खड़े हों या समूहों में काम कर रहे हों तो आपको ज्यादा जगह की जरूरत होगी। टेबल और कुर्सियों को कक्षा के एक कोने में सरका दें या फिर बच्चों को बाहर ले जाएं। आप किन्हीं व्यावसायिक अभिनेताओं या अभिनेत्रियों को प्रशिक्षित नहीं कर रहे हैं बल्कि बच्चों को हिन्दी भाषा का अभ्यास और उसका इस्तेमाल करने का एक रोचक तरीका सिखा रहे हैं। बच्चों ने जो कुछ भी किया हो, न केवल अंतिम उत्पाद और भाषा बल्कि जिस प्रक्रिया से वे गुजरे, जिस तरह उन्होंने एक–दूसरे का सहयोग किया और कैसे उन्होंने अपने निर्णय लिये, आप इस सबका विश्लेषण करते हुए अपनी प्रतिक्रिया दें। कुछ अच्छी बात देखकर उस पर टिप्पणी करें। बच्चों के काम में ऐसे क्षेत्र भी रहेंगे जिनमें सुधार की गुंजाइश होगी और बच्चों को बताए जाने वाले अपने विश्लेषण में आपको यही बात उजागर करनी होगी। जब बच्चे गतिविधि में संलग्न हों तो उन्हें ध्यान से देखें और सुनें, दखल न देने की कोशिश करें और जो आप देखें उसके नोट्स बनाते जाएं। आपका मुख्य लक्ष्य है इस सारी प्रक्रिया में बच्चे के प्रदर्शन को इस पाठ के सबसे अहम हिस्से के रूप में देखना। आपको उनके प्रदर्शनों को महत्व देना चाहिए। जब वे अपना काम खत्म कर लें, तो आप कुछ समूहों से अपना काम दिखाने को कह सकते हैं और फिर उन्हें अपनी प्रतिक्रिया दे सकते हैं। ऐसा करने के कई तरीके हो सकते हैं। आप उनके करने के लिए एक प्रतिक्रिया शीट तैयार कर सकते हैं और उसका उपयोग कर सकते हैं। यदि रचनात्मक प्रतिक्रिया नाटकीकरण की गतिविधियों का नियमित हिस्सा बन जाए, तो बच्चे धीरे–धीरे नाटकीकरण की अपनी क्षमताओं और अपनी भाषा में सुधार कर लेंगे।

पुतली कला के माध्यम से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया आसान हो जाती है साथ–ही शिक्षण प्रभावी हो जाता है। बच्चों के साथ पुतली का निर्माण उनका संचालन और पुतली नाटकों का मंचन एक सामूहिक प्रक्रिया है। यदि इसे विषय के साथ जोड़ दिया जाए तो बच्चे करके सीखने की प्रक्रिया में स्वतः संलग्न हो जाते हैं। यहाँ यह बता दें कि पुतली कला के स्थानीय कलाकार के माध्यम से या प्रशिक्षित शिक्षक के माध्यम से पुतली नाटकों का उपयोग करना आसान हो जाता है।

कला के विभिन्न रूपों का महत्व

कला के विभिन्न रूपों से आशय है – दृश्य कला एवं प्रदर्शन कला के विभिन्न आयामों से है। दृश्य कला के अन्तर्गत जहाँ चित्रकला, मूर्तिकला, फोटोग्राफी, छपाई कला जो द्विविमीय या त्रिविमिय हो सकती है, जैसे – पेन्टिंग, कोलाज आदि द्विविमीय तथा मूर्तिकला, पुतलीकला, मिट्टी के शिल्प, काष्टकला, कागज के शिल्प पेपरमेशी त्रिविमीय के उदाहरण हैं। इस कला के अन्तर्गत शिल्प की वस्तुएँ आती है। जिन्हें उपयोगी कला के रूप में जाना जाता है। वैसे तो कला के माध्यम से कल्पना की अभिव्यक्ति होती है लेकिन जिस सहजता से कल्पनाओं की सार्थक अभिव्यक्ति दृश्य कला के माध्यम से होती है। वास्तव में दृश्य कला कल्पना, सोच, अनुभवों का मूर्तन

है। दृश्य कला शिक्षार्थियों के अशाब्दिक–भावों को सहजता से अभिव्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित करती है। नए सृजन और पुराने अनुभवों की निरन्तरता को सुनिश्चित करती है। प्रदर्शन कला के अन्तर्गत संगीत, नाटक, नृत्य मूक अभिनय आदि आते हैं। प्रदर्शन कला हमारे जीवन का अभिन्न अंग है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जीवन के विभिन्न पहलूओं को प्रभावित करती रहती है। यह शिक्षार्थियों के शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक एवं आध्यात्मिक विकास का आधार है। सामान्यतः प्रदर्शन कला में हम समूह में कार्य करते हैं। इससे समूह भावना, अनुशासन व नेतृत्व जैसे जीवन कौशलों का विकास होता है। समूह में कार्य करने से समन्वयन, भाईचारा लगाव की भावना का विकास होता है। इस कला में जीवन की विभिन्न कठिनाइयों व परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जिससे सृजनात्मक सोच एवं व्यवहार का विकास होता है। इस कला में कक्षाओं के शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व निखारने ऋमें कर सकते हैं, जैसे– शिक्षार्थियों को खुशी, एकाग्रता, संतुष्टि, शांति व आनन्द का अनुभव होता है। अनेकता में एकता एवं समूह भावना का विकास होता है। शिक्षार्थियों की थकान व सुस्त मस्तिष्क को स्फूर्ति प्राप्त होती है। यहाँ आप देख सकते हैं कला के विभिन्न रूपों का अलग–अलग अपना महत्त्व होता है। शिक्षार्थियों के अलग–अलग गुणों का विकास इसके माध्यम से होता है।

प्रदर्शन कला, योजना, तैयारी, प्रस्तुतिकरण

आपने कई प्रकार के प्रदर्शन कला का आनंद उठाया होगा। जैसे नाटक, संगीत (गायन व वादन), कठपुतली कला आदि। वस्तुतः ये सभी प्रदर्शन कलाएँ जीवन से जुड़ी घटनाओं पर ही आधारित होते हैं या वास्तविक जीवन के क्रियाकलापों की अनुकृति है। आप विद्यालय के बच्चों को उनके जीवन से जुड़ी अनुभूतियों जैसे भ्रमण स्थलों के अनुभव, आस–पड़ोस के अनुभव या फिर विद्यालय से जुड़ी घटनाओं से संबंधित अनुभवों के आधार पर प्रदर्शन कला के भिन्न–भिन्न माध्यमों में किसी एक थीम पर अपने सहपाठियों से विचार–विमर्श करने का निर्देश दे। बच्चों के आपसी समझ के बाद उनके द्वारा तैयार की गई थीम पर अपना महत्त्वपूर्ण सुझाव और दिशा बोध की आवश्यकता हो तो दें। बच्चों द्वारा प्रदर्शन कला के किस माध्यम को अपने थीम की प्रस्तुति के लिए चुना है इसके लिए उनकी तैयारी क्या है? इसका अवलोकन करें। यदि उन्होंने नाट्य विधा का चयन किया है तो आपसी समन्वय और पात्रों के चयन एवं संवाद के चयन में आप अपना सहयोग दें। अब उन्हें नाट्यविधा में उनके स्वाभाविक अभिनय क्षमता को प्रकट करने के लिए प्रोत्साहित करें। संवाद कैसा होना चाहिए? तथा कब किसे अपने संवाद बोलने चाहिए तथा संवाद बोलने के लिए किस तरह के उतार–चढ़ाव की आवश्यकता है। इस पर एक आपसी सहमति बनाने का प्रयास करेंगे। तैयारी के लिए आवश्यक सामग्री का चयन तथा आवश्यक तैयारी के लिए समय निर्धारित करेंगे। यही आपसी समझ संगीत कला एवं पुतली कला में करेंगे। अच्छी तैयारी के पश्चात् अपने विद्यालय में इन कलाओं का समय–समय या वर्ग कक्ष संचालन को रोचक एवं जीवंत बनाने हेतु प्रस्तुत करेंगे।

समेकन

प्रदर्शन कला में संगीत अत्यंत अमूर्त है, दृश्यमान नहीं है। संगीत में जब तक भाषा न जोड़ी जाए, बच्चे के लिए तब तक अर्थ निकालना व भाव अभिव्यक्ति संभव नहीं है। प्राथमिक स्तर पर संगीत की तकनीकी चीज़ों को सीधे–सीधे नहीं सिखाना चाहिए, जैसे – सरगम, अलंकार, स्वर आदि। इसे जब तक कविता से न जोड़ें तब तक बच्चों के लिए अर्थ निर्माण कठिन है। संगीत के प्रारम्भिक विद्यार्थियों को राग के स्वरूप को समझने के लिए लक्षण गीत सिखाया जाता है, जिसमें राग के नियमों के वर्णन के

साथ राग के स्वरूप के साथ शब्द होते है जो बच्चों के लिए राग को एक मूर्त स्वरूप देते हैं। शास्त्रीय संगीत भी अत्यंत अमूर्त है और स्तर प्रधान है। अतः छोटे बच्चें को सुगम संगीत सिखाया जा सकता है जो भाषा प्रधान है, शब्द प्रधान है, जैसे – गीत, भजन, राष्ट्रगीत, देशभक्ति गीत आदि। यानि बच्चे भाषा के माध्यम से ही संगीत का आनन्द ले पाते हैं, अर्थ निर्माण कर पाते हैं। वे संगीत को केवल गायन, वादन या नृत्य के पृथक–पृथक रूप में नहीं देखते बल्कि उनके लिए ये तीनों मिलकर एक सम्पूर्ण अभिव्यक्ति बनते हैं, साथ में नाट्य भी जुड़ जाता है। उनके लिए कहानी, नृत्य, गाना, हाव–भाव, अभिनय व गाना एक ही है।

नाटक में भाषा व अन्य सभी विषयों की आत्मनिर्भरता है। संवाद के लिए भाषा सटीक व भाषा का उच्चारण शुद्ध होना चाहिए। जिस थीम पर नाटक लिखा गया है, उस विषय का गहन ज्ञान नाटककार को होना ज़रूरी है। इसके अभाव में नाटककार नाटक नहीं लिख सकता अर्थात् इस प्रकार विषयों एवं कलाओं की आत्मनिर्भरता पर विस्तार से बात की जा सकती है। इसके अलावा कलाओं में भी आपस में एक प्रकार की आत्मनिर्भरता है और नाटक इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। एक कला में दूसरी कला का समावेश करने से नये कला रूप की सृष्टि होती है और अभिव्यक्ति के प्रभाव में वृद्धि होती है। इससे दूसरे विषय को पुष्ट होने में मदद मिलती है। यहां तक कि भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में कलाओं का वर्गीकरण करते हुए लिखा है कि ''नाट्य कला ही मुख्य कला है व अन्य कलाएं गौण हैं चूंकि अन्य कलाओं का समावेश नाट्यकला में होता है।''

प्रदत्त कार्य

1. ''लोकगीतों में लोक जीवन की सच्ची झांकी मिलती है।'' आप अपने स्थानीय लोक गीतों की सूची बनाकर निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए एक लेख लिखिएः–
    - लोक गीत क्यों गाये जाते हैं? उद्देश्य क्या हैं?
    - लोक गीत क्या मनोरंजन के लिए भी गाये जाते हैं?
    - लोक गीतों को निम्न श्रेणी में सूचीबद्ध कीजिएः–
        - विवाह लोकगीत
        - ऋतु लोकगीत
        - धार्मिक अनुष्ठान गीत
        - फसलों वाले लोकगीत
        - अन्य लोकगीत
    - लोकगीत कक्षा अधिगम में किस प्रकार सहायक हो सकता है?

2. यदि आपको अपनी कक्षा में नृत्य विधा के विषय में जानकारी देनी हो और विद्यार्थियों को नृत्य करने के लिए प्रोत्साहित करना हो तो आप किन बिन्दुओं का ध्यान रखेंगे? इस पर एक लेख लिखिए।
    - आपने किस प्रकार के नृत्य की बात की और क्यों?
    - इस नृत्य की बात पर बच्चों की प्रतिक्रिया क्या थी?
    - इस नृत्य को सिखाने के लिए आपने क्या–क्या तैयारी की?
    - इसे करवाने में आपको क्या–क्या समस्याएं आई और आपने इसका समाधान कैसे किया?

- इस कार्य में आपके और क्या–क्या सुधार करने की आवश्यकता है?
- यह नृत्य आपके कक्षा के लिए उपयोगी था तो किस प्रकार?

3. आस–पास के किसी स्थानीय नाट्यकर्मी के बारे में पता कीजिए और 500 शब्दों का एक निबन्ध लिखिए। निबन्ध लिखते समय निम्नलिखित बिन्दुओं का ध्यान रखिएः–
    - उन्होंने नाटक करना कब शुरू किया?
    - उन्होंने नाटक क्यों शुरू किया? उद्देश्य क्या था?
    - नाटक करना उन्हें कैसा लगता है? और क्यों?
    - उनके प्रमुख नाटक कौन–से हैं? उनके सारांश बताइए।

अभ्यास के प्रश्न :

1. ''संगीत हमारी सांस्कृतिक विरासत का वाहक है।'' इस पंक्ति का आशय स्पष्ट कीजिए।
2. कला शिक्षा में कला के सैद्धान्तिक पक्ष के बजाय व्यवहारिक पक्ष की ओर ज्यादा ध्यान क्यों देना चाहिए? स्पष्ट कीजिए।
3. ध्वनि अपना रूप किस प्रकार प्राप्त करती है? स्पष्ट करो।
4. संगीत में आन्दोलन से क्या आशय है?
5. अलंकार से आप क्या समझते हैं?
6. संगीत में इसकी आवश्यकता पर अपने विचार रखिएः–
    - आपके विद्यालय के बच्चे आपस में हमेशा लड़ते–झगड़ते हो तो आप कला के किस विद्या का इस्तेमाल कर कैसे विद्यालय में सौहार्द एवं भाईचारे के वातावरण का निर्माण करेंगे?
    - विभिन्न विषयों के शिक्षण में नाटक का समावेश कैसे करेंगे ताकि सीखने–सिखाने की प्रक्रिया तीव्र हो सके।
7. संगीत में वाद्ययंत्रों की आवश्यकता क्यों हुई? स्पष्ट कीजिए।
8. वाद्य किसे कहते हैं? उदाहरण देते हुए इसके प्रकारों को समझाइए।
9. आपके स्थानीय क्षेत्र के लोकवाद्यों की सूची तैयार कीजिए एवं इसकी विस्तृत जानकारी एकत्रित करके एक लेख लिखिए।
10. हवा से बजने वाले वाद्यों को किस नाम से जाना जाता है। उसके पाँच उदाहरण लिखिए।
11. अपने विद्यालय के सामाजिक क्षेत्र में किए जाने वाले लोक नृत्य की सूची बनाइए और इसके बारे में विस्तार से जानकारी एकत्रित करके एक लेख लिखिए।

12. विद्यालय के किसी आयोजन में लोक नतर्क को आमंत्रित करके इनकी प्रस्तुति देखें और उस पर एक प्रतिवेदन तैयार करें।

13. निम्नलिखित भारतीय शास्त्रीय नृत्यों की सूची को भारत के मानचित्र में क्षेत्रों (राज्य) के आधार पर अंकित कीजिए व इनका विस्तृत विवरण एकत्रित कीजिए।

    1. कत्थक 2. कथकली 3. भरतनाट्यक 4. कुचीपुड़ी 5. मणिपुरी 6. ओडीसी 7. छउ नृत्य 8. सत्तीय नृत्य

14. शास्त्रीय नृत्य के प्रति बच्चों की रुचि बढ़ाने के लिए आप क्या करेंगे? विस्तार से लिखिए।
15. भाषा के शिक्षण में पुतली कला का उपयोग करते हुए एक योजना बनाइए।
16. विभिन्न प्रकार की पुतलियों के निर्माण एवं उनका संचालन करने के लिए विद्यालय स्तर पर एक कार्यशाला का आयोजन कीजिए और इसका प्रतिवेदन (Report) तैयार कीजिए।

इकाई–4

कला अनुभव का शिक्षण में सृजनात्मक प्रयोग

"छोटे बच्चों की रेखा चित्र और चित्रकलाएँ बहुत खूबसूरत होती हैं, उसमें अद्‌भुत रंग और लय होती है। केवल वही कलाकार कल्पना की उस पड़ाव तक पहुँच सकता है जिसने कला के बारे में गहन और गहरा ज्ञान प्राप्त किया हो।"– नन्दलालबसु, चित्रकार

परिचय

अभी तक के पाठों में हम यह समझ बनाने की कोशिश कर रहे थे कि कला क्या है? प्रत्येक कला किसी भौतिक वस्तु, शरीर या शरीर के किसी बाहरी अंग के साथ संवाद करती है। संवाद करते हुए कला किसी उपकरण विशेष का सहारा ले भी सकती है और नहीं भी। कला की इस संवाद के जरिए कुछ निर्माण करने की चेष्टा रहती है, जिसे या तो आप देख पाएँ, सुन पाएँ या छू सकें महसूस कर पाएँ। जब हम एक व्यक्ति विशेष के जीवन में कला की उपस्थिति और उस उपस्थिति के कारणों की बात करें, तो अलग–अलग तर्क निकल कर सामने आते हैं। जैसे–

1. क्या कला किसी सामाजिक जरूरत के लिए है?
2. क्या कला किसी सौंदर्यात्मक खुशी के लिए है?
3. या फिर यह खुद को व्यक्त करने की एक जरूरत है, जो खुद को आकार देने की एक कोशिश या आत्माभिव्यक्ति है।

किसी भी कला अनुभव या कला अभिव्यक्ति के ये सारे कारण हो सकते हैं। जब हम कला की बात शिक्षा और विद्यालय के संदर्भ में करते हैं, तो यह आवश्यक है कि हम कला शिक्षा के बड़े उद्देश्यों को ध्यान में रखें। हम शिक्षा किसे कहते हैं और इसके लिए किन प्रक्रियाओं की आवश्यकता है। इसके बारे में हमने पहले भी एक समझ बनाने की कोशिश की है। कक्षा में कला की क्या भूमिका है, क्या वह स्वयं में एक उद्देश्य है या कहीं और पहुँचने का रास्ता है, इसपर भी हमने चर्चा की है। हमने यह समझ बनाने की कोशिश की है कि किस प्रकार कला सीखने–सीखाने का एक सशक्त माध्यम है और यह किसी भी व्यक्ति के समग्र विकास के लिए जरूरी है। इस पाठ के अन्तर्गत हम ये समझने की कोशिश करेंगे कि हमने जिस कला और शिक्षा की अभी तक एक सांझा समझ बनाई है, उसके अनुसार बच्चों के लिए हम किस प्रकार के और कैसे कला अनुभव कक्षा में दे सकते हैं।

दृश्य एवं शिल्प की विभिन्न वस्तुओं का प्रयोगात्मक स्वरूप की समझ हमारे पास है। विभिन्न प्रकार के रंगों के प्रयोग से होकर गुजरते हुए हमने चित्रकला के विभिन्न स्वरूप को समझा, साथ–ही विभिन्न वस्तुओं के रचनात्मक प्रयोगों का अनुभव भी हमारी इन्द्रियों में विद्यमान है। इन प्रयोगात्मक प्रक्रियाओं से गुजरते हुए हमने एकीकृत

अधिगम को महसूस किया और सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में इन्द्रियों के इस्तेमाल और महत्व को भी अनुभव किया और उस पर विचार भी किया। अब अपेक्षा है कि ये अनुभव और गहराएंगे, एन्द्रिक अहसास बढ़ेंगे और एकीकृत अधिगम हमारी शिक्षण प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग बनेगा।

कला अनुभव की अवधारणा

हम कला की उपयोगिता को दोनों तरह से स्वीकार करते हैं, स्वतंत्र विषय के रूप में तथा अन्य विषयों को सिखाने के माध्यम के रूप में। इस मुद्दे पर एक समझ होने के बावजूद ऐसा देखा जाता है कि जब हम कक्षाकक्ष के संदर्भ में कला के बारे में सोचते हैं, तो कुछ स्पष्ट तस्वीर उभर कर नहीं आती। ऐसा होने का एक मुख्य कारण यह हो सकता है कि ज्यादातर कलाओं को उत्पाद पैदा करने की दृष्टि से देखा जाता रहा है। जब कि कला के द्वारा सीखना उस की प्रक्रियामें निहित है। कला प्राकृतिक है, प्रकृति से प्रभावित है। हम ये पहले के पाठों में पढ़ चुके है कि किस तरह कला प्रकृति से संवाद करने का एक तरीका है, प्रकृति में व्यक्ति विभिन्न वस्तुएँ और उनके संपर्क में आने के बाद जो भी हमारे मन में भाव, विचार और सवेंग उठते हैं, उनकी अभिव्यक्ति ही कला है। कला चित्रों में है, मूर्तियों में है, संगीत में है, नृत्य में है, कविता में है, कहानी में है, हमारी तमाम अभिव्यक्तियों में है।

कक्षा में कला अनुभव के मौके बनाने की बात करें तो बच्चों को एक अच्छे कला अनुभव देने में कतई जरूरी नहीं है कि इसे करवानेवाले व्यक्ति ने किसी कला अथवा कलाओं में महारथ हासिल की हो। देखा गया है कि जो लोग किसी भी कला में महारथ हासिल कर चुके होते हैं, वे बच्चों को अपनी ही शैली में सीखाने और समझाने की कोशिश करते हैं। ऐसी प्रक्रिया में बच्चों को खुद से, कुछ अलग सोचने का मौका नहीं मिलता। एक बेहतर कला अनुभव के लिए जरूरी है कि शिक्षक को इस बात की समझ हो कि बच्चे कैसे सोचते हैं, कैसे सीखते हैं। यह आवश्यक है कि शिक्षक कला की प्रकृति और उसकी खूबसूरती को जानता हो। कला की समझ होना एक बात है और बच्चों के हिसाब से कला की समझ होना दूसरी बात है। कक्षाकक्ष में यह आवश्यक है कि शिक्षक यह जानने की कोशिश करें कि बच्चे कला के साथ कैसे संवाद करते हैं, कला को किस प्रकार वे अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम चुनते हैं। बच्चों की जरूरतें और उनकी इच्छाओं को जानना जरूरी है।

ये मुमकीन है कि बच्चे कला की नई परिभाषा गढ़ते हुए मिले और मेरा मानना है कि उनकी परिभाषा गलत भी नहीं होगी। यहाँ आपका काम यह हो जाता है कि किस प्रकार उनकी परिभाषा को भी पूरी कला–अनुभव प्रक्रिया के साथ ले कर चलना है। बच्चों के लिए बेहतर कला अनुभव बनाने के लिए यह जरूरी है कि हम यह समझ सकें कि बच्चों की जिंदगी में कला की क्या भूमिका है। क्या वे वैसी ही है जैसे किसी वयस्क की जिंदगी में होती हैं ? बच्चे जब कागज पर कुछ लकीरे खींचते हैं तो क्या वे सिर्फ आड़ी–तीरछी रेखाएँ ही है या फिर उनके द्वारा की गई कलात्मक आत्माभिव्यक्ति।

एक मनमोहक चित्र का पूर्ण बन जाना, दर्शकों को लुभाने वाला एक नृत्य या गीत तैयार हो जाना या एक नाट्य प्रस्तुति हो जाना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना इसकी सृजन की प्रक्रिया। प्राथमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए विभिन्न कलाओं से परिचय पाना, उनमें अपनी अभिव्यक्ति ढूंढ पाना और साथ–ही अपनी सांस्कृतिक विरासत से रिश्ता बनाना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

सीखने की योजना एवं कला समेकित शिक्षाः प्रमुख बिन्दु एवं चुनौतियाँ

हम सभी इस बात से सहमत है कि कला सौन्दर्य बोध के साथ–साथ विभिन्न अनुभवों की अभिव्यक्ति का सार्थक माध्यम है। कला न केवल हमारे जीवन में विभिन्न रंग भरती है बल्कि जीवन को सरस एवं भावपूर्ण भी बनाती है। वस्तुतः कला समझ और अभिव्यक्ति को सहज दिशा प्रदान करती है। कला की इस विशिष्टता को अगर हम अपने वर्ग–कक्ष की प्रक्रियाओं में शामिल करें तो क्या हमारे शिक्षार्थियों का सीखना सहज नहीं हो सकेगा? महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि बच्चों में कला संबंधी अपनी सोच और विशिष्टताएँ होती हैं। बच्चों की कला संबंधी सोच और प्रयास उनके परिवेश तथा परिवेशजन्य अनुभवों से जुड़ी होती है। दूसरी तरफ, विशेष रूप से प्रारंभिक कक्षाओं की अवधारणाएँ, दक्षताऐं भी बच्चों के परिवेश से जुडी होती है। बच्चों का पूर्वज्ञान, अनुभव इन अवधारणाओं, दक्षताओं को समझने एवं सीखने का आधार होता है।

बच्चों के अनुभव, सीखने के विभिन्न पक्षों तथा कला के विभिन्न आयामों को अगर एक साथ समेकित करते हुए वर्ग–कक्ष की प्रक्रियाओं का संचालन हो तो बच्चों का सीखना सहज, सरल और रोचक हो सकता है। सीखने सिखाने की प्रक्रिया में सीखने की योजना की महत्वपूर्ण भूमिका है। वस्तुतः सीखने की योजना हमारी तमाम तैयारियों का ब्योरा होती है जिनके माध्यम से हम वर्ग कक्ष की प्रक्रियाओं को संचालित करना चाहते है। एक सशक्त सीखने की योजना पर्याप्त लचीली होनी चाहिए। पुनः सीखने की योजना की सार्थकता इस तथ्य पर भी निर्भर करती है कि हम स्थानीय संसाधनों का किस हद तक उपयोग करते है। महत्वपूर्णरूप से इस योजना में बच्चों के परिवेशीय अनुभव को विशेष महत्व दिया जाना चाहिए। सीखने की योजना में कला संबंधी अनुभव और संसाधनों का समावेश, शिक्षार्थियों के सीखने की गति को एक नया आयाम दे सकता है। इस हेतु कला समेकित अधिगम संबंधी सीखने की योजना एक सार्थक प्रयास हो सकता है।

कला समेकित योजना की सार्थकता इस तथ्य पर निर्भर करेगी कि हम शिक्षार्थियों के कला अनुभव तथा परिवेशीय कला संबंधी तथ्यों को कितना स्थान देते है। निश्चित रूप से बच्चों के कला संबंधी अनुभवों का सीखने की योजना में समावेश उनके स्वतंत्र अभिव्यक्ति को बेहतर दिशा और नया आयाम प्रदान करेगा।

कला समेकित सीखने की योजना में निम्न चरणों का ध्यान रखा जाना चाहिए:–

1. **सामान्य जानकारियों को दर्ज करना**: कक्षा का नाम, विषय, शीर्षक, बच्चों की संख्या, इत्यादि
2. **पूर्व अनुभव / ज्ञानः** इसमें यह पड़ताल कर लेंगे कि जिस विषय की चयनित अवधारणा का शिक्षण करना है, उसके प्रति शिक्षक/शिक्षिका के पास पहले से

क्या समझ है। क्या उन्होंने इससे पहले कला का उपयोग किया है, उस अवधारणा के शिक्षण में। साथ—ही, बच्चों से किस प्रकार की कला को कराया जा सकता, इसकी भी स्थिति देख ली जाए। पाठ्यचर्या—पाठ्यक्रम में चयनित अवधारणा को लेकर कौन—कौन से उद्देश्य सुझाए गए हैं, उनको भी ध्यान में रख लें।

3. **कला अनुभव की प्रक्रियाः** कला समेकित शिक्षा संबंधी सीखने की योजना में कला संबंधी अनुभवों का समावेश दो या अधिक चरणों में किया जा सकता है।

- प्रथम चरणः— इस चरण में संबंधित अवधारणा हेतु चयनित कला पक्षों/तथ्यों की सहज प्रस्तुति एवं शिक्षार्थियों के प्रतिभागिता का अवसर प्रदान किया जाएगा। बच्चे अपने अनुभवों को भी उससे जोड़ सके इसका पर्याप्त अवसर उनकों मिले, इसका ध्यान रखा जाना चाहिए। योजना में बच्चों की सहभागिता को सराहने, उनकों प्रबलित करने के अवसरों का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए।
- द्वितीय चरणः— इस चरण में कला समेकित सीखने की योजना में चयनित कलापक्ष/तथ्यों की प्रस्तुति शिक्षक के द्वारा करते हुए शिक्षार्थियों को व्यक्तिगत, साथियों के साथ, छोटे और बड़े समूह में प्रस्तुत/कार्य करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। यहाँ संबंधित प्रक्रिया को शिक्षार्थियों की रूचि एवं भागीदारी के अनुसार कई बार दुहराई जाने का अवसर दिया जाना चाहिए।

4. **कला अनुभव को दूसरे विषयों से जोड़नाः** कला समेकित शिक्षा विभिन्न विषयों को आपस में जोड़ने का पर्याप्त अवसर प्रदान करती है। किसी खास विषय की अवधारणा, दक्षता, प्रकरण आदि हेतु चयनित कला पक्ष/तथ्य दूसरे विषय की अवधारणाओं, दक्षताओं के विकास में भी मदद कर सकते है। यहाँ यह ध्यान देना जरूरी है कि कला अनुभवों के चयन के क्रम में इस तथ्य पर निश्चित तौर पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि वे अन्य विषय की अवधारणाओं/दक्षताओं से भी जुड़ सके।

इस हेतु हम परिशिष्ट में विभिन्न अवधारणाओं दक्षताओं/प्रकरणों के आलोक में विकसित कला समेकित सीखने की योजना को देख सकते है।

बच्चों की प्रशंसा एवं प्रोत्साहन संबंधी बातों का जिक्र अवश्य होना चाहिए। इसे योजना में अवश्य अंकित करें। इसके अन्तर्गत शिक्षार्थियों के कार्य एवं अभिव्यक्ति की सराहना, अवसर प्रदान करना, सहयोग हेतु प्रेरित करना, उनके कार्य में न्यूनतम हस्तक्षेप एवं पूर्ण स्वतंत्रता, उनकी मातृभाषा का सम्मान, अनुभव का सम्मान आदि विभिन्न तथ्यों का ध्यान रखा जाना चाहिए।

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर आप प्रारम्भिक कक्षा के विभिन्न विषयों के शिक्षण को रोचक एवं प्रभावी बना सकते हैं। भाषा, गणित, पर्यावरण अध्ययन, इन सभी विषयों के सीखने—सिखाने में कला के विभिन्न स्वरूपों को शामिल किया जा सकता है।

उदाहरण के तौर पर नीचे दिये उदाहरण को देखें जो हिन्दी विषय के एक पाठ से सम्बंधित सीखने की योजना का भाग है।

सीखने की योजना

विषय – हिन्दी, पाठ – चंदा मामा

प्रथम चरण (समय 30 मिनट)

शिक्षार्थियों को चाँद से संबंधित अपने पूर्व अनुभव यथा सुनी हुई कविता, कहानी, लोक गीत या लोरी सुनाने का अवसर प्रदान किया जाएगा । शिक्षार्थियों को अपने अनुभव के आधार पर चाँद का चित्र बनाने तथा रंग भरने को कहा जाएगा। इसके लिए उनको सादा कागज, पेंसिल, मोम और पेंसिल रंग दिया जाएगा। शिक्षार्थी अपने अनुभव और कल्पना से चित्र बनाएँगे और रंग भरेंगे। इस क्रम में शिक्षार्थियों को प्रोत्साहित किया जाएगा। उनके अनुभवों का सम्मान करते हुए उनके काम और अभिव्यक्ति को सराहा जाएगा जिससे शिक्षार्थी खुल कर अपने अनुभवो को साझा कर सके। शिक्षार्थियों द्वारा किए गए कार्यो की प्रदर्शनी कक्षा में लगाई जाएगी जिससे कि सभी शिक्षार्थी एक–दूसरे के कार्य और अनुभवों को देख और साझा कर सके।

द्वितीय चरण (30 मिनट)

इस चरण मे दी गई कविता चंदा मामा को पूरे हाव भाव एवं सस्वर, लय के साथ प्रस्तुत किया जाएगा। शिक्षार्थी भी पूरे हाव–भाव और लय के साथ कविता का सस्वर वाचन करेंगे। यह प्रक्रिया शिक्षार्थियों की रुचि और भागेदारी के अनुसार कई बार दुहराई जाएगी। इसके बाद चंदा मामा पर आधारित स्थानीय परिवेश मे प्रचलित लोक गीत, लोरी जिसकी चर्चा शिक्षार्थी कक्षा के आरंभ मे कर चुके हैं कि हाव भाव और लय के साथ शिक्षार्थियों द्वारा व्यक्तिगत या छोटे समूह में प्रस्तुत की जाएगी। शिक्षार्थियों द्वारा प्रस्तुत लोक गीत, लोरी में शिक्षक भी भाग लेंगे। साथ–ही शिक्षक द्वारा भी चाँद मामा से संबन्धित गीत, लोक गीत या लोरी का गायन किया जाएगा। इसी क्रम में वैसे अक्षर जिनकी आवृति पाठ में बार–बार हुई है तथा पूर्व में पहचान किए गए उद्देश्यों के अनुरूप शिक्षार्थियों को सीखना है, से संबन्धित फ्लैश कार्ड शिक्षार्थियों के समक्ष प्रदर्शित किया जाएगा। फ्लैश कार्ड अक्षरों से संबन्धित होंगे। साथ–ही फ्लैश कार्ड वैसी वस्तुओं के चित्र के भी होंगे जो उन अक्षरों से संबन्धित है (कम से कम तीन)। फ्लैश कार्ड में अक्षरों से संबन्धित वस्तुओं के चित्र शिक्षार्थियों के परिवेश से होंगे। जैसे 'च' अक्षर वाले फ्लैश कार्ड के साथ चम्मच, चश्मा, चाक आदि के चित्र होंगे। अक्षर और उससे संबन्धित वस्तु का फ्लैश कार्ड उस समय दिखाया जाएगा जब कविता के प्रस्तुति के समय किसी शब्द में उस अक्षर की आवृती हो रही हो। जैसे – चंदा शब्द के आने पर 'च' का फ्लैश कार्ड, मामा शब्द के आने पर 'म' का फ्लैश कार्ड, प्याली, थाली शब्द के आने पर 'ल' का फ्लैश कार्ड, थाली शब्द के आने पर 'थ' का फ्लैश कार्ड, आदि आदि। इस तरह बार बार कविता के गायन के क्रम मे संबन्धित अक्षरों के प्रदर्शन से शिक्षार्थियों मे बोलने और सुनाने की क्षमता के विकास के साथ साथ अक्षरो की समझ भी बनेगी।

कला अनुभव को दूसरे विषयों से जोड़ने की कला

उपरोक्त कला अनुभव को आसानी से अन्य विषयों के साथ जोड़ा जा सकता है। जैसे गणित में दूर–पास की अवधारणा का विकास, जब शिक्षार्थी कविता का गायन करेंगे। साथ–ही चन्द्रदशा (चाँद की विभिन्न कलाओं) को बनाते समय गोलाकार, अर्ध गोलाकार जैसी आकृतियों की समझ बना सकेंगे। एक और अनेक की अवधारणा का विकास किया जा सकेगा।

पर्यावरण अध्ययन के संदर्भ मे आसपास के परिवेश और उसमे पाई जानेवाली वस्तुओं और उनकी उपयोगिता की जानकारी दी जा सकेगी। अँग्रेजी भाषा मे चंदा मामा से संबन्धित छोटे छोटे Rhymes के द्वारा अँग्रेजी के शब्द सिखाया जा सकेगा ।

विभिन्न कला सामग्रियों का शिक्षण में प्रयोग

विभिन्न विषयों की विषयवस्तु के संदर्भ में सीखने की योजना एंव क्रियान्वयन अपने स्कूली परिदृश्य के सन्दर्भ में यदि हम कला की बात करें तो स्वतन्त्र विषय के रूप में सबसे पहले इसके प्रदर्शनकारी या प्रस्तुतिपरक रूप पर ही ध्यान जाता है और बच्चों/विद्यार्थियों के लिए इस कला के कौशल को विकसित करना मुख्य माना जाता है। इसकी शुरुआत प्राथमिक कक्षाओं से ही हो जाती है जबकि वहां पर आवश्यकता इस बात की अधिक है कि बच्चों को कला की अपनी भाषा गढ़ने दें और अपने ढंग से समझने दें। दूसरे विषयों को सिखाने के माध्यम के रूप में कला का प्रतीकात्मक रूप में उपयोग करने के साथ–साथ कला के अनुभव के द्वारा सीखने की बात समझनी होगी। स्कूलों में कला की उपयोगिता को हम प्रायः तीन नज़रों से देखते हैं:

- स्वतंत्र विषय के रूप मे
- अन्य स्कूली विषयों को सीखने के माध्यम के रूप में तथा
- जीवन–कौशल विकसित करने के अवसर के रूप में

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 ने स्कूलों में कलाओं के महत्व को बखूबी रेखांकित किया है। उसी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत स्वाध्याय सामग्री को प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रशिक्षु कला के महत्व को समझें, सीखने–सिखाने में उसकी संभावनाओं से परिचित हों और इस माध्यम से अपने स्कूल को सीखने की, सृजन की, अभिव्यक्ति की लोकतान्त्रिक और रोमांचक जगह के रूप में विकसित कर सकें। कला एवं शिल्प स्वयं में सृजनात्मकता का प्रतीक है और प्रारम्भिक स्तर के विद्यार्थियों में सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करने एवं दिशा देने की इसमें अपार संभावनाए हैं। साथ–ही कला एवं शिल्प का प्रयोग इस स्तर के अन्य विषयों यथा भाषा, गणित, पर्यावरण अध्ययन आदि में भी किया जा सकता है जिसके माध्यम से इन विषयों को और रोचक बनाया जा सकता है। हम सभी कला एवं शिल्प की वस्तुओं के प्रति स्वाभाविक रूप से आकर्षित होते हैं। बच्चों में तो यह गुण और स्वाभाविक होता है। वे स्वयं ही अपनी कल्पनाओं के आधार पर विभिन्न कलाकृतियों को गढ़ते रहते हैं। विद्यालय एवं अपने समुदाय में होनेवाले विभिन्न आयोजनों व उत्सवों में भी कलाओं का विशेष स्थान होता है। इन संदर्भों को यदि हम विद्यालय के सीखने–सिखाने की प्रक्रिया से जोड़ दें तो विद्यालयी

पाठ्यचर्या में बाल केन्द्रित अधिगम एवं संदर्भगत अधिगम की संकल्पनाओं का समावेश स्वतः ही हो जाएगा। प्रत्येक क्षेत्र एवं संस्कृति की अपनी अद्विवितीय वस्तुएँ, कला व प्रतिभाएँ होती है। अलग–अलग क्षेत्रों एवं संस्कृतियों से आए विद्यार्थी स्वयं के अनुभवों से कला को जोड़कर दर्शा सकते हैं। इस प्रकार न सिर्फ विविध कलाओं व कौशलों का आदान–प्रदान होता है बल्कि विविध संस्कृतियों व समुदायों के प्रति ज्ञान व संवेदनशीलता भी बढ़ेगी। आगे चलकर इन्हीं विद्यार्थियों में से कई अपने रोजगार के लिए किसी विशेष कला को चुन सकते हैं।

कला एवं शिल्प को विद्यालयी पाठ्यचर्या का सक्रिय अंग बनाने से बच्चों में होनेवाले विकास के संदर्भ में राष्ट्रीय फोकस समूह के आधार पत्र 'हस्तशिल्पों की धरोहर' ने निम्नलिखित कौशलों का उल्लेख किया है:–

- विद्यार्थियों को उनके पर्यावरण के साथ संबंधों की सराहना और एक–दूसरे की परस्पर निर्भरता का कौशल।
- सामाजिक कौशल – सहनशीलता, समझ एवं अपनी दुनिया को और समृद्ध करने की दिशा में असमानता का मूल्यांकन। इसमें हाशिए पर पहुंचे तथा कथित समूहों का सशक्तीकरण शामिल है।
- सूचना प्रक्रिया कौशल – प्रासंगिक सूचनाओं को ढूंढ़ निकालना और उन्हें संग्रहित करना, उनकी तुलना करना एवं संपूर्ण तथा आंशिक पहलुओं के संबंधों की व्याख्या करना।
- तार्किक कौशल – विचारों के लिए तर्क देना, व्याख्या के लिए यथार्थ भाषा का इस्तेमाल करना।
- पूछताछ कौशल – प्रश्न पूछना, क्रियाकलापों को योजनाबद्ध करना, विचारों में सुधार करना।
- रचनात्मक कौशल – अभिव्यक्ति कलाएं, व्यक्तिगत अभिव्यक्ति के विभिन्न तरीके तलाशना और स्कूली परियोजनाओं तथा व्यापार में शामिल होना।
- उद्यमिता कौशल – इस तरह की अभिवृति को प्रोत्साहित करते हैं जिसमें व्यक्ति बदलाव से आनन्दित होता है, जोखिम प्रबंधन का अभ्यास करता है और स्वयं की गलतियों से सीखता है।
- कार्य संबंधी संस्कृति।

(स्रोतः एन.सी.ई.आर.टी. (2009), हस्तशिल्पों की धरोहरः राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र. पृष्ठ सं0 5)

क्षेत्रीय कलाओं व हस्तशिल्पों के संसाधनों का इस्तेमाल कई तरीकों से शिक्षा प्रणाली को बेहतर बनाने में किया जा सकता है। इन कलाओं को सिर्फ अलग विषय के रूप में ही नहीं पढ़ाया जाना चाहिए बल्कि इसे इतिहास, सामाजिक एवं पर्यावरण अध्ययन, भूगोल, कला एवं अर्थशास्त्र जैसे विषयों के अध्ययन का हिस्सा भी बनाया जाना चाहिए क्योंकि यह भारतीय संस्कृति, सौंदर्य, क्षेत्रीय विविधता आदि को धारण किए हुए शैक्षिक स्रोत भी है जिससे उन विषयों को समझने में मदद मिल सकती है। एक शिक्षक के लिए इन संसाधनों का अपने विषय को रोचक बनाने में विशेष प्रयोग किया जा सकता है। साथ–ही बच्चों के लिए भी इस माध्यम से सीखना एक अलग व

जीवन्त अनुभव होगा। क्षेत्रीय कलाओं एवं हस्तशिल्पों का प्रयोग विभिन्न विषयों में किस प्रकार किया जा सकता है, इसके संदर्भ में कुछ प्रमुख बातों को आगे दिया जा रहा है।

भाषा में कला समेकित शिक्षा

प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण के मुख्य उद्देश्यों में भाषाई कुशलताओं (सुवोपली) के साथ–साथ कल्पनाशीलता, सृजनशीलता, संवेदनशीलता आदि भाषिक क्षमताओं का विकास भी है। कला समेकित शिक्षा उल्लिखित कुशलताओं एवं क्षमताओं की वृद्धि का सशक्त माध्यम है, यथा बातचीत के अवसर उपलब्ध कराना, कहानियों का निमार्ण एवं विकास, तुकबन्दियाँ एवं कविताएँ इत्यादि इसके विकास के अवसर उपलब्ध कराते हैं। जहाँ तक भाषिक कुशलताओं के आखिरी कौशल लेखन कौशल की बात करें तो इसकी भी शुरूआत बच्चे–बच्चियों के कार्य–अनुभव के प्रस्फुटन के रूप में ही होता है जिसे शिक्षाशास्त्र की भाषा में शुरूआती लेखन या घसीटा लेखन कहा जाता है। आइए कुछ गतिविधियों को देखते हैं।

गतिविधिः– भाषिक कुशलताओं का विकास, रचनात्मक क्षमताओं का विकास, कल्पना–चिंतन आदि को उपलब्ध कराना, इत्यादि।

कला अनुभव एवं सामग्रीः शिक्षार्थियों द्वारा स्वतंत्र रूप से चित्रों का निमार्ण एवं उनका वर्गकक्ष में प्रदर्शन।

कक्षायी कार्य

- चित्रों पर बातचीत
- चित्रों पर कहानी रचना
- चित्रों के आधार पर तुकान्त शब्दों (राइमिंग वर्डस) से संबंधित खेल
- कविताओं की रचना
- लेख/निबंध रचना आदि।

इस गतिविधि का आयोजन किसी भी प्राथमिक कक्षा में कर सकते हैं। यथा आवश्यक घंटियों को निर्धारित किया जा सकता है। वर्गकक्ष विनियमन के क्रम में उद्देश्यों की अधिकता अधिगम एवं प्रक्रिया दोनों को बोझिल बना सकता है।

प्राथमिक कक्षाओं में भाषा की पाठ्यपुस्तकों को ध्यान में रखकर ऐसी गतिविधियों का आयोजन 'भाषा सीखना' आसान एवं मनोरंजक बना सकता है।

अंग्रेजी शिक्षण में कला समेकित अधिगम के सृजनात्मक प्रयोग

कला समेकित अधिगम विभिन्न कलाओं के माध्यम से हमारे सीखने की प्रक्रिया को रोचक, आनंददायी एवं ग्राह्य बनाती है। आइए, एक उदाहरण के तौर पर देखते हैं दृ वर्ग प्ट की अंग्रेजी पाठ्यपुस्तक BLOSSOM (Part-(4) में Lesson-6 THE BOY HOW CRIED WOLF की अवधारण को स्पष्ट करने के लिए हम अभिनय एवं पुतली के माध्यम से प्रस्तुत कर वर्ग कक्ष को प्रभावी एवं जीवंत बना सकते है। सर्वप्रथम हम एक

बालक के मुखौटे को तैयार करेंगे। साथ–ही भेड़िया एवं ग्रामीण के मुखौटे को तैयार कर एक समाचार पत्र से बने कागज की छड़ी पर चिपका देंगे। अब उक्त पाठ की नाटकीय प्रस्तुति इन तैयार छड़ पुतली के माध्यम से किया जा सकता है। इसके लिए किसी चादर या कपड़े का एक पर्दा, दो बच्चे की सहायता से डालते हैं तथा इसके पीछे कुछ बच्चे बनाए गए विभिन्न पात्रो के छड़ पुतली को कहानी के अनुसार संचालित करते हुए पाठ्यपुस्तक के लिखे गए संवाद को पात्रों के अनुरूप आवाज बदल कर बोलते हैं। इस सम्पूर्ण प्रस्तुति को बच्चे बहुत ही मजे लेकर देखते हैं और पाठ्यपुस्तक के अंग्रेजी संवाद को आसानी से समझ जाते हैं। इस प्रक्रिया में बच्चों का सुनने और बोलने की दक्षता का विकास होता है। इस विधि से पाठ्यपुस्तक में दिए गए अन्य पाठों का रोचक प्रस्तुति किया जा सकता है जिससे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया रोचक एवं प्रभावी हो जाती है।

गणित एवं कला समेकित शिक्षा

गणित शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में कला का समावेश

सामान्यतः गणित को एक निरस एवं कठिन विषय माना जाता है। बच्चे तो बच्चे, शिक्षक भी इसके शिक्षण से दूर भागते हैं। वर्ग–कक्ष में गणित शिक्षण एक यंत्रवत चलने वाली प्रक्रिया बन कर रह गयी है। इसके अवधारणात्मक पहलु पर बिना विचार किये हुए सिर्फ कौशल पर ध्यान दिया जाता है जो बच्चों को गणित के प्रति अन्य विषयों की तरह लगाव पैदा नहीं कर पाता। यह विचारणीय है कि गणित शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में यदि कला विधियों को समेकित किया जाय तो इसके शिक्षण में पर्याप्त सरसता ओर रोचकता आ सकती है जो बच्चों के अधिगम प्रक्रिया को तीव्र कर सकेगी।

कक्षा 4 की अध्याय 8 के अन्तर्गत सममिति (Symmetry)की अवधारणा, व्याख्यान विधि से बताना अपेक्षाकृत कठिन होगा यदि हम बच्चों को दर्पण चित्र (Mirror Image) की कलात्मक गतिविधि कराते हैं तो बच्चे स्वतः ही सममिति की अवधारणा समझ जाते हैं। इस प्रक्रिया में बच्चों को कुछ सफ़ेद एवं काले चार्ट पेपर दिए जाते हैं तथा उन्हें निर्देश दिया जाता है कि सफ़ेद A4 साइज के आधे पेपर के बराबर काले रंग के चार्ट पेपर में किसी भी आधी आकृति काटकर शेष बचे हुए हिस्से में चिपकाये। इस प्रकार बनने वाली सम्पूर्ण आकृति सममितीय आकृति हो जाती है तथा यह एक कला सृजन की प्रक्रिया बनती है जिसमें बच्चा अपनी कलाकृतियों का सृजन करते हुए स्वतः सममिति (Symmetry) की अवधारणा, सममितीय अक्ष आदि की समझ पक्की कर लेता है। इस कला प्रक्रिया को अन्य विषयों के शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में भी उपयोग किया जा सकता है।

चीजों के बीच रिश्तों को समझना गणित की बुनियादी बात है। इससे बच्चें पैटर्नों के साथ–साथ स्थान, सीमा, दिशा और आवर्तन की अवधारणाएँ पहचानना शुरू कर देते हैं। पैटर्नों एवं अवधारणाओं की ये समझ गणित और माप की बुनियाद बनती है।

रंग, आकार और आकृति के हिसाब से छाँटने व्यवस्थित करने, तुलना करने और मेल करने पर बच्चें चीजों को ध्यान से देखना सीखते हैं। वे चीजों के बीच समानताओं और भिन्नताओं को पहचानने का कौशल विकसित करते हैं। इसी प्रकार दाएँ–बाएँ, ऊपर–नीचे, उत्तर–दक्षिण, आधा मोड़ तथा पूरा मोड़ जैसी शब्दावली से न सिर्फ परिचित होते है बल्कि इनकी अवधारणाओं को भी समझते हैं। आइए एक गतिविधि द्वारा इन्हें समझने की कोशिश करते हैं –

गतिविधि–1

- सभी बच्चों को कागज का जहाज बनाने के लिए कहें।
- बच्चे जहाज को विभिन्न रंगों से सजाएंगे तथा उस पर अपना नाम लिखेंगे।
- जहाज बनाने के बाद बच्चे कक्षा से बाहर आकर मैदान में एक लकीर खीचेंगे।
- सभी बच्चें लकीर पर खड़ा होकर अपना जहाज उड़ायेंगे।
- जहाज द्वारा तय की गयी दूरी को बच्चे डेग, हाथ, बित्ता आदि गैर मानक इकाई से माप करेंगे तथा अपने माप को नोट करेंगे।
- पुनः मानक इकाई जैसे ईंच, फीट, मीटर से सभी लकीर और जहाज के बीच की दूरी की माप लेंगे।
- पुनः कक्षा में जाकर विभिन्न छात्रों द्वारा ली गयी माप की तुलना करने, जोड़ने घटाने, सबसे अधिक दूरी, सबसे कम दूरी दोनों के बीच का अन्तर, औसत दूरी आदि निकालकर चर्चा कर सकते हैं।

गतिविधि–2

- सभी बच्चे कागज की पतंग बनायें।
- पतंग को विभिन्न रंगों से सजाए अथवा कोलाज का रूप दें।
- पतंग बन जाने के बाद पतंग की लंबाई, चौड़ाई तथा विकर्ण की माप लेने को कहें।
- पुनः पतंग की परिमिति तथा क्षेत्रफल निकालने को कहें।
- बच्चों द्वारा बनायी गई पतंग की परिमिति, क्षेत्रफल, विकर्ण आदि की तुलना करें।

पर्यावरण अध्ययन और कला

पर्यावरण शिक्षण में कला समेकित अधिगम के सृजनात्मक प्रयोग

कला समेकित अधिगम के माध्यम से पर्यावरण अध्ययन के लगभग सभी पाठों को सरल, रोचक और ग्राह्य बनाया जा सकता है। इससे दृश्य कला के विभिन्न माध्यमों को सीखने का आधार बनाया जा सकता है। जैसे – चित्रकला, कोलाज, ब्लॉक पेंन्टिग, थम्ब पेन्टिग, मुर्तिकला एवं छोटे–छोटे घरौंदों के माध्यम से बच्चों को सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में सहजता से शामिल किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर वर्ग 5 भाग–3 पर्यावरण और हम किताब के अध्याय–5 ‘‘ऐतिहासिक इमारत

के अन्तर्गत हमारे प्रदेश के विभिन्न ऐतिहासिक स्मारकों पर्यटन स्थलों के चित्रों को बच्चों से बनवाकर, बने या छपे हुए चित्रों को संग्रहित कर चार्ट पेपर पर कोलाज के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है। इस प्रकार पर्यावरण अध्ययन के सभी पाठों को कला के विभिन्न माध्यमों द्वारा इसे सहज एवं रोचक बनाया जा सकता है। कला के माध्यम से पर्यावरण को जानना समझना और उससे होकर गुजरना एक नया और स्थाई अनुभव प्रदान करता है।

मिट्टी को देखकर किसका मन नहीं मचलता होगा। और बात जब बच्चों की हो तो मिट्टी में खेलना उनका पसंदीदा खेल रहा है। इसी मिट्टी सें खेलते–खेलते कब बच्चे उनसे कब कोई आकृति का निमार्ण करना शुरू कर देते है इसका पता उन्हें भी नहीं चलता। कैसे अनजाने में उनकी कल्पना आकार लेती है यह उनके चेहरे की चमक और गर्व की भाव देख कर समझा जा सकता है।

बच्चों द्वारा मिट्टी से आकृति बनाते बनाते उनमें उनका संवेदी विकास, गत्यात्मक कौशल, आत्म सम्मान, आत्माभिव्यक्ति, समस्या को सुलझाने के कौशल तथा अनुशासन और गर्व की भावना का विकास होता है।

जब विद्यालय में वर्ग कक्ष में बच्चों को ऐसा मौका दिया जाता है तो वे गीली मिट्टी को कोंचते हैं, मसलते हैं, तोड़ते–मरोड़ते हैं, उसे रगड़कर गोल करते हैं। यह उनके लिए ऐसा मौका है जब उन्हें विद्यालय में गीले या गन्दे होने को प्रोत्साहित किया जाता है और बच्चे इस माहौल में अपनी ओर से अपना सम्पूर्ण देने के लिए होड़ लगा देते हैं।

जब बच्चों की अँगुलियाँ मिट्टी के साथ हरकत करती हैं तो मिट्टी इशारे पर ढ़लनी शुरू हो जाती है। बच्चों में आत्मविश्वास आने लगता हैं कि आगे कमान मेरे हाथ में हैं। उन्हें डर नहीं लगता क्योंकि मिट्टी से कुछ गढ़ने में हुई गलतियाँ को बार–बार सुधारा जा सकता है। हाँ, यह मिट्टी की प्रकृति है जिससे बच्चों में अपनी गलतियों को तत्परता से ठीक करने की क्षमता विकसित हो जाती है।

यहाँ हम यह कह नहीं सकते कि मिट्टी की कला में उत्पाद की तुलना में प्रक्रिया अधिक महत्त्वपूर्ण है, जो खोज और सृजन का आनन्द प्रदान करता है। यहाँ उच्च सक्रियता स्तर वाले बच्चों के साथ–साथ विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए भी अवसर होता है।

गतिविधिः

- बच्चों को छोटे–छोटे समूह में बाँट दें।
- सभी समूह को अपना घर, पशुओं का घर, पक्षियों के घर इत्यादि का चित्र बनाने को कहें।
- घरों को विविध रंगों, फूलों, पत्तियों से सजाने को कहें।
- चित्र बन जाने के बाद उन्हें समूह में निम्नांकित प्रश्नों पर बात करने को कहें:–

1. हमने किसका घर बनाया है?
2. इसमें कौन–कौन रहते हैं?

3. इस तरह के वास्तविक घर बनाने में किन–किन सामग्रियों का उपयोग होता है?
4. वे सामग्रियाँ कहाँ से प्राप्त की जाती है?
5. क्या इन सामग्रियों के बिना घर बनाया जा सकता है?
6. हम, पशु या पक्षी घर क्यों बनाते हैं?
7. घर को साफ–सुथरा रखना क्यों आवश्यक है ?

चर्चा के बाद सभी समूहों की प्रस्तुति की जायेगी।

कक्षा परियोजनाओं एवं विद्यालयी गतिविधियों में कला एवं शिल्प का प्रयोग

- पोस्टर
- नक्शे
- विद्यालय में नाटक के मंचन के लिए मुखौटे, पोशाक तथा मंच
- नमूने तैयार करना
- विद्यालयी साज–सज्जा
- कागज के थैले, हस्तनिर्मित कागज
- स्थानीय शिल्पों एवं मानव निर्मित वस्तुओं से स्कूल का संग्रहालय विकसित करना
- विद्यालय में डिजाइनों मोटिफ्स एवं अन्य वस्तुओं का अभिलेखागार तैयार करना

विज्ञान के शिक्षण–अधिगम में क्षेत्रीय कलाओं एवं हस्तशिल्पों की भूमिका

- ओरिगामी (कागज मोड़कर साज–सजावट की जापानी कला)
- संतुलन और अनुपात
- सामग्रियों के रासायनिक गुण
- औजार एवं तकनीक
- तपाना/पकाना एवं ढालना

भूगोल एवं पर्यावरण अध्ययन के शिक्षण–अधिगम में क्षेत्रीय कलाओं एवं हस्तशिल्पों की भूमिका

- स्थानीय कच्चे माल की उपलब्धता पर आधारित स्थानीय हस्तशिल्प परंपराओं का प्रादुर्भाव स्थानीय सामग्रियों का इस्तेमाल
- खनिज एवं वनस्पति रंग
- जाल बुनाई, डाई, ब्लॉक प्रिटिंग का इस्तेमाल
- पत्थर, लकड़ी, बाँस की उपलब्धता से पारंपरिक घरों का निर्माण
- हस्तशिल्प से संबंधित जातियों का संरक्षण तथा उनके जीवन यापन की समझ

इतिहास विषय के शिक्षण–अधिगम में क्षेत्रीय कलाओं एवं हस्तशिल्पों की भूमिका

- निरंतरता एवं परिवर्तन का उदाहरण
- मानव निर्मित वस्तुओं के जरिए सामाजिक जीवन की व्याख्या
- लोगों के इतिहास का हिस्सा
- स्वतंत्रता आंदोलन में खादी की भूमिका
- घरों, पोशाकों, रहने/जीवन के तौर तरीकें
- कला संरक्षक के रूप में मंदिर एवं दरबार
- हथकरघा एवं औद्योगिक क्रांति
- सिंधु घाटी सभ्यता

साहित्य के शिक्षण–अधिगम में क्षेत्रीय कलाओं एवं हस्तशिल्पों की भूमिका

- किवदंतियों व लोक गीतों, आदि
- हस्तशिल्प एवं हथकरघा का साहित्यिक उल्लेख

विद्यालय की दैनिक गतिविधियों के संदर्भ में कला

विद्यालय की दैनिक गतिविधियाँ विद्यालय में सीखने के माहौल, अवसर चुनौतियाँ आदि उपलब्ध कराती है। यह शिक्षक एवं शिक्षार्थियों के बीच विद्यालय में समूह कार्य की संस्कृति विकसित करने के साथ, रूचि के मुताबिक कला अनुभव संबंधित गतिविधि में शामिल होने की तत्परता, शिक्षार्थियों के क्षमता– विकास, वर्गकक्ष के अन्दर या बाहर इनके उपयोग, विभिन्न सामान्य या विशेष अवसरों पर आयोजन एवं प्रबंधन आदि से संबंधित समझ एवं उपयोग का अवसर उपलब्ध कराती हैं। ऐसी गतिविधियाँ शिक्षार्थियों में सृजनात्मकता, नवाचार, सीखने के असीम अवसर, इत्यादि उपलब्ध कराते हुए विद्यालयी एवं कक्षायी माहौल को अधिगम के अनुकूल बनाने में सफल होती है।

आइए कुछ दैनिक गतिविधियों को समझते हैं –

आइस ब्रेकरः– आइस ब्रेकर एक ऐसा मनोरंजक अभ्यास है जो जड़ता को तोड़ते हुए अन्तःक्रियात्मक, सृजनात्मक एवं आनन्ददायी माहौल के निर्माण में सहायक होता है। आईसब्रेकर झिझक और अन्य व्यवहारगत बाधाओं को दूर करने में तथा किसी खास परिस्थिति को विभिन्न दृष्टिकोण से देखने की समझ विकसित करने में मददगार होता है। जहाँ आइस–ब्रेकर एक ओर प्रतिभागियों में त्वरित अभिव्यक्ति के लिए आत्मविश्वास उत्पन्न करता है वही दूसरी ओर यह समूह भावना, आपसी मेलजोल और अन्तरवैयक्तिक कौशलों का भी विकास करता है।

उदाहरण के तौर पर, वर्ग कक्ष में उपलब्ध कोई भी सामग्री लें एक बच्चे से कहें कि उस सामग्री/पदार्थ के वास्तविक कार्य के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार से उपयोग करें। उदाहरण स्वरूप कलम का उपयोग बाँसुरी के रूप में करना, किताब/कॉपी का उपयोग टी0वी0/रेडियो के रूप में करना, इन्स्ट्रूमेन्ट बाक्स का उपयोग मोबाईल के रूप में करना आदि। बच्चों से कहें कि वो उस पदार्थ/सामग्री के साथ वर्गकक्ष में मूक अभिनय करें और बाकी बच्चे यह पहचानेंगे कि कौन–सा कार्य हो रहा है।

चेतना सत्रः— विद्यालयों में चेतना सत्र के साथ—ही विद्यालयी गतिविधियाँ औपचारिक रूप से शुरू होती हैं। सामान्यतः चेतना स़त्र मे प्रार्थना को समूह गायन के साथ इसे पूरा मान देने की परंपरा रही है। प्रार्थना या प्रेरणा गीत के अलावा कहानी, समाचार वाचन, आज के विचार जैसी गतिविधियाँ आयोजित भी होती हैं या वर्गकक्ष में होने वाली गतिविधियों का चर्चा चेतना स़त्र से कोई जुड़ाव नहीं होता है। आवश्यकता है वर्गकक्ष की कुछ चुनी हुई गतिविधियों का जुड़ाव चेतना सत्र की गतिविधियों से की जाय। इससे चेतना सत्र एवं वर्गकक्ष की गतिविधियाँ अलग—अलग न होकर एक—दूसरे की अनुपूरक होंगी और सीखने के आयामों का विस्तार होगा।

चेतना सत्र की गतिविधियों में निरन्तर बदलाव भी आवश्यक है। जैसे, बच्चों के खड़े होने के पैटर्न में बदलाव, प्रार्थना/प्रेरणागीत को बदल—बदलकर गाना, चेतना सत्र की गतिविधियों का निर्धारण बच्चों के समूह द्वारा किया जाना आदि विविधता पूर्ण कार्य चेतना सत्र की रोचकता और प्रासांगिकता को बढ़ाते हैं। बच्चों के खड़े होने के पैटर्न पर कक्षा के विषयों से जोड़कर बातचीत की जा सकती है। इसी तरह प्रार्थना/प्रेरणागीत के भाव तथा उपयोगिता पर भाषा की कक्षा में बात की जा सकती है। बच्चों को नई—नई प्रार्थना/प्रेरणागीत की रचना करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

अन्य दैनिक गतिविधियाँः— मिड—डे—मिल, बाल सभा, अन्तर विद्यालयी प्रतियोगिता, विशेष अवसरों पर आयोजनों जैसी गतिविधियाँ विद्यालयों में आयोजित की जा सकती हैं।

मिड—डे—मिलः— मिड—डे—मिल के सफल आयोजन हेतु बच्चे कला से संबंधित निम्न कार्य कर सकते हैंः—

- हाथों की सफाई पर जोर देने के लिए चित्र बनाना एवं स्लोगन लिखकर जगह—जगह पर लगाना।
- भोजन बर्बाद नहीं करने की सलाह देते हुए कार्टून बनाना एवं स्लोगन लिखकर लगाना।
- जूठे एवं बचे भोजन को इधर—उधर न फेंककर एक जगह इक्कठा कर पशु—पक्षियों को देने के लिए जागरूकता फैलाने हेतु पोस्टर लगाना।
- बच्चों को स्वयं के बैठने के लिए चटाई निर्माण के लिए प्रोत्साहित करना। इसके लिए फटे कपड़े, पॉलिथिन एवं अन्य बेकार की चीजों का उपयोग किया जा सकता है।

बाल—सभा/अन्तर विद्यालयी प्रतियोगिता

- विषय वस्तु का चयन बच्चे करेंगे
- बच्चे विद्यालय के सौंदर्यीकरण की योजना बनाएँ।
- नाटक, मूक—अभिनय, रोल—प्ले आदि का प्रदर्शन किया जाए।
- इसमें संगीत का कार्यक्रम तथा स्वास्थ्य एवं स्वच्छता से संबंधित विषय पर कार्यक्रम करेंगे।

- रंगोली, चित्रकला, गीत, संगीत, विविध प्रकार के खेल प्रतियोगिता का आयोजन।
- चित्र, कोलाज, शिल्प आदि की प्रदर्शनी का आयोजन।
- कविता/निबन्ध लेखन प्रतियोगिता।
- संगीत के लिए स्थानीय सामग्री का उपयोग।

गतिविधि

- आप उपरोक्त गतिविधियों के अतिरिक्त किन–किन गतिविधियों को शामिल करना चाहेंगे? उन गतिविधियों को विषयवस्तु से किस प्रकार जोड़ा जा सकता है?
- उपरोक्त कार्य के संदर्भ में अपने अध्ययन केन्द्र पर कुछ गतिविधियों को प्रस्तुत करें।

विद्यालय के भवन, जगह, समय और गतिविधि में कला अनुभव के समावेश के तरीकेः

शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को सुगम और रोचक बनाने में कला अनुभव का विशेष महत्व को समझने की कोशिश की है। आइए विद्यालयी शिक्षण योजना और समय सारणी में इसे सार्थक रुप से समेकित करने का प्रयास करते हैं। सामान्यतः यह देखा जाता है कि विद्यालयी शिक्षण व्यवस्था में कला शिक्षण के लिए कला अनुभव प्राप्त करने हेतु कोई स्थान नहीं होता है। जिस प्रकार गणित, भाषा, एवं पर्यावरण विषयों के शिक्षण को महत्व देते हुए शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की योजना में स्थान दिया जाता है, कला अनुभव के क्रियाकलापों के लिए ऐसा कोई समय और योजना नहीं बनाया जाता। यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि बच्चे कला अनुभव की विभिन्न प्रक्रियाओं में रुचिपूर्वक संलग्न होकर विभिन्न विषयों को सुगमतापूर्वक सीखते हैं। साथ–ही विषयों की अवधारणात्मक समझ भी पक्की हो जाती है। कई शिक्षाविदों ने शिक्षण प्रक्रिया में कला के समावेश को प्रभावी माना है। प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में कला अनुभव एक सशक्त माध्यम है, इसमें कोई शंका नहीं है। आपने अनुभव किया होगा कि बच्चे कई प्रकार के कला अनुभव की प्रक्रिया स्वतः किया करते हैं, जैसे गुड्डे–गुड़ियों का ब्याह, चोर सिपाही का स्वांग, बालू का घरौंदा, कागज की नाव, बड़ों का नकल उतारना आदि। सच तो है कि बच्चे इन क्रियाकलापों में आनंद तो प्राप्त करते ही हैं साथ–ही जीवन के जीने का अधिगम स्वतः प्राप्त करते जाते हैं। हमें भी एक शिक्षक होने के नाते, विद्यालय एवं विद्यालय के बाहर किये जानेवाली कला अनुभवों की योजना बनानी चाहिए जो बच्चों को स्वतः अधिगम की प्रक्रिया में जोड़ दें। जैसे अपने आसपास रहने वाले शिल्पकारों को अपने शिल्प की वस्तुओं के निर्माण का कार्यशाला आयोजित करना। प्राकृतिक वातावरण में प्रकृति का अवलोकन करवाना। अजायबघर (म्यूजियम), चिड़ियाघर आदि स्थानों का भ्रमण कराना। इतना ही नहीं हो सके तो मान्य विषयों के शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में कला के क्रिया–कलापों का सार्थक एवं उचित समावेश करने की योजना बनाना। मेरा मानना है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में कला और सौंदर्यबोध को समावेशित करने से बच्चों के सीखने का दर बढ़ती है साथ ही विद्यालय में बच्चों की रुचि भी बढ़ती है।

शिक्षा का मतलब समग्र विकास से है, समग्र विकास के लिए यह ज़रूरी है कि शिक्षा की विधि अथवा पद्धति भी समग्र हो, अपने में समग्रता लिए हो। जब हम कक्षाकक्ष में सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के बारे में बात करते हैं तो हम उस में भी समग्रता चाहते हैं। हमारे आसपास के वातावरण में समझ अलग–अलग विषयों में विखंडित नहीं है अपितु उस में एक समेकन है। इस संदर्भ में हम पत्तों का उदाहरण ले सकते हैं। आप चाहें तो उस पर चर्चा करते हुए भाषा की एक पाठ योजना बना सकते हैं। पत्तों के रंग, रूप, शैली, आकार एवं उसके उपयोग के ऊपर बात करते हुए उसे पर्यावरण अध्ययन की पाठ योजना में डाल सकते हैं या फिर पत्तों के साथ काम करते हुए आप पत्तों के द्वारा एक कलात्मक अभिव्यक्ति की ओर बढ़ सकते हैं। अब कलात्मक अभिव्यक्ति में आप चाहें तो पत्तों की मदद से एक कोलाज बनवा सकते हैं, पत्तों की छाप लेकर उस से कोई चित्र बनवा सकते हैं आदि। कहने का अर्थ यह है कि किसी वस्तु/ प्रक्रिया/ स्थान/ व्यक्ति आदि के विषय में एक सम्पूर्ण समझ बनाने के लिए हम उसे अलग–अलग विषय आदि में नहीं बांधते।

इसी प्रकार कक्षा में जब हम कला अनुभव की बात करते हैं तो वहां भी हम उसे समग्रता में देखते हैं। जिस प्रकार कला हमारी ज़िंदगी से कटी हुई न होकर हमारे ज़िंदगियों में गूंथी हुई है, उसी प्रकार कला को अनुभव से अलग–थलग न होकर कक्षा कक्ष में होने वाली तमाम प्रक्रियाओं का एक भाग बनाना होगा। अमूमन विद्यालयों में ये देखा जाता है कि किस प्रकार कला किसी एक उत्सव विशेष की घटना बन कर रह जाती है, या तो वह वार्षिक उत्सव में होने वाली प्रस्तुति बन जाती है या फिर किसी प्रतियोगिता विशेष में प्रदर्शन करने वाली कौशल बन जाती है। जब हम ये बात करते हैं कि कला जीवन जीने का एक तरीका है तो ये ज़रूरी है कि किस तरह हम कक्षा में भी कला अनुभव को एक प्रक्रिया की तरह देखें, न कि एक उत्पाद के रूप में सामने आने वाली प्रस्तुति की तरह।

एक शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह कला अनुभव के लिए योजनाबद्ध तरीके से अपने लक्ष्यों की संप्राप्ति करे।

- आवश्यकतानुसार दैनिक, साप्ताहिक, मासिक और वार्षिक कला अनुभव की योजना विद्यालय स्तर पर बनायें तथा बच्चों के समूह निर्माणकर अलग–अलग कार्य देकर कला अनुभव के लक्ष्यों की संप्राप्ति करें।
- शैक्षिक भ्रमण का आयोजन करवाना अत्यंत लाभप्रद होगा यदि शिक्षक भ्रमण के साथ–साथ गाइड के माध्यम से भ्रमण वाले स्थान के बारे में जानकारी दिलवाएं तथा संग्रहालय की भी सैर कराएं। ये आवश्यक है कि बच्चों को संग्रहालय में रखी गई वस्तु के बारे में बताया जाए। यदि कला एवं शिल्प संग्रहालय विद्यालय के आसपास अवस्थित हो तो पाठ–योजना के अंतर्गत बच्चों को वहाँ ले जाने की नियमित योजना बनानी चाहिए जिससे बच्चों को कला से संबंधित प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होगा तथा साथ–ही कला के प्रति प्रेरित भी होंगे। पाठ–योजना से जोड़ने पर विषय–विशेष को सरलता व सहजता से समझने में भी मदद मिल सकेंगे।

- शैक्षिक भ्रमण तथा जीवन से जुड़े अन्य अनुभवों को बच्चों की इच्छा एवं सहजता के अनुसार कला के विभिन्न माध्यमों का प्रयोग करते हुए अभिव्यक्त और साझा कराया जाए।
- समय–समय पर बच्चों के द्वारा निर्मित कला एवं शिल्प की वस्तुओं की विद्यालय एवं संकुल स्तर पर प्रदर्शनी लगाने की व्यवस्था की जानी चाहिए तथा उन्हें प्रोत्साहित भी किया जाना चाहिए।
- वर्ष भर के कला अनुभवों के आधार पर विद्यालय में एक वार्षिक कला–महोत्सव का आयोजन किया जाना चाहिए, जिसमें विभिन्न प्रकार की कला विधाओं जैसे दृश्य एवं प्रदर्शन कला का समायोजन हो।
- विद्यालयों में समय–समय पर कला से जुड़ी विभिन्न कार्यशालाओं का भी आयोजन किया जाए, जिसमें विभिन्न विधाओं के स्थानीय, क्षेत्रीय एवं स्थापित लोक समकालीन व शास्त्रीय कलाकारों से बच्चों को मिलवाया जाए तथा उनकी कला से बच्चों को परिचित होने का मौका दिया जाए।
- विद्यालय एवं घर के आसपास पड़ी अनुपयोगी वस्तुओं को कला अनुभव तथा अन्य किसी विषय से जोड़कर विभिन्न उपयोगी एवं सजावटी वस्तुओं का निर्माण किया जा सकता है।
- प्रारंभिक स्तर पर शिक्षक अपनी समझ और अनुभव के अनुसार अन्य विषयों के साथ कला को सीखने–सिखाने के एक माध्यम के रूप में समावेश करें।

सीखने की योजनाः लर्निंग प्लान

वर्ग–5वीं

विषय – हिंदी

पाठ का नाम – अंधेर नगरीः एकांकी

सीखने के उद्देश्यः भाषा की समझ, विद्यार्थियों में भिन्न भिन्न सन्दर्भों में भाषा उपयोग एवं, सौन्दर्य परक पहलुओं को परख सकने की क्षमता का विकास

पाठ से सम्बंधित पूर्व ज्ञानः–

विद्यार्थी एकांकी की कथावस्तु से परिचित थे, सामान्य पठन एवं सन्दर्भ आधारित संवाद पठन की योग्यता विकसित थी, विद्यार्थियों को नाटकीय मंचन किस प्रकार होता है का पूर्वज्ञान था।

विधि – रोल प्ले

कला अनुभव की प्रक्रियाः अनुमानित समय (40 मिनट)

प्रथम चरण – रोल प्ले हेतु राजा के लिए मुकुट, सिपाहियों के लिए टोपी, बाज़ार हेतु सामग्री, तराजू, नारायण दास, गोवर्धन दास के लिए माला आदि का विद्यार्थियों द्वारा निर्माण किया गया।

सामग्री—अखबार, गोंद, कुछ रंगीन कागज़ इत्यादि

प्रॉप्स (रंगमंच सामग्री) बनाने की प्रक्रिया में विद्यार्थियों के हाथों की मांसपेशियों के विकास में सहायक होती हैं, इससे चित्रांकन, रंगों को भरना, लेखन आदि कार्य में सहूलियत होगी। साथ—ही उनके सौन्दर्यबोध और चीज़ों को बनाने के लिए सामग्री की उचित मात्रा, आकार आदि तय करने या अनुमान लगाने की कुशलता विकसित होगी। इस तरह की गतिविधियां विद्यार्थियों की चिंतन कार्यशैली आदि के आकलन का भी अवसर देती है।

दूसरा चरण –

रोल प्ले की पूर्व तैयारी – विद्यार्थियों के बीच पात्रों का विभाजन उनकी इच्छा अनुसार किया गया। सन्दर्भ एवं परिस्थिति के मुताबिक़ कथावस्तु के अनुसार संवाद प्रेषण पर बातचीत की गयी। मूल एकांकी के संवादों पर चर्चा की गयी। विद्यार्थियों को संवाद रटने से मुक्त किया गया। कथा—वस्तु, सन्दर्भ एवं परिस्थिति के अनुसार बिना रटे संवाद बोलने हेतु प्रेरित किया गया। हाँ, उन्हें यह छूट दी गयी कि वे सुविधानुसार भाषा एवं शब्दों का चयन कर सकते हैं अर्थात मानक एवं मातृभाषा की कोई बाध्यता नहीं होगी। कई बार रिहर्सल भी की गयी। इस दौरान आवश्यकता अनुसार विद्यार्थियों द्वारा नाटक के सीन या डायलाग में किये जा रहे बदलावों को प्रोत्साहित किया गया।

मंचन के दौरान –

विद्यार्थियों ने नाटक को प्रभावी तरीके से खेला। मातृभाषा और हिंदी के मेल से पूरी एकांकी बहुभाषिक परिदृश्य उत्पन्न करने में सफल रही। रोल प्ले के दौरान विद्यार्थियों ने आंचलिक शब्दों का संदर्भानुसार प्रयोग किया, प्रसंग की प्रभावोत्पादकता बढाने के लिए हंसी, क्षोभ, डर, ख़ुशी, विस्मय आदि भाव मुद्राओं का प्रयोग किया गया जो शब्द एवं संवाद पर भारी दिखे। उनके संवाद में सहजता और आत्मविश्वास दोनों बेहतरीन थे।

तीसरा चरण – अगला कार्य दिवस – अनुमानित समय 40 मिनट

चार समूह बनाये गए। सभी समूह को संवाद के कुछ हिस्से दिए गये जिनका विश्लेषण शब्द चयन, वाक्य संरचना और संवाद कौशल के आलोक में करना था। विद्यार्थियों को संवाद में अपने अनुसार परिवर्तन की स्वतंत्रता दी गयी थी। यह पूरी गतिविधि रोल प्ले के अवलोकन पर आधारित थी।

- बाज़ार के दृश्य के संवाद
- राजा के दरबार में फरियादी, कल्लू, बनिया, कारीगर, चूनेवाला, भिश्ती, कसाई, गडरिया और कोतवाल के संवाद
- सिपाहियों द्वारा पकड़े जाने पर सिपाही गोवर्धनदास के संवाद
- एकांकी के अंत में नारायण दास एवं गोवर्धनदास के संवाद

विद्यार्थियों की प्रस्तुति में यह बात मुखर हो कर निकली कि सन्दर्भ एवं परिस्थिति के हिसाब से शब्दों का चयन, वाक्य संरचना और संवाद प्रेषण संभव होता है। पहले

समूह ने बाज़ार के बारे में कहा जहाँ दर, कीमत, महंगा, सस्ता, सब्जी, ग्राहक, दुकानदार जैसे शब्दों की भरमार रही तो वाक्य विन्यास अधूरा लेकिन अर्थपूर्ण था। जैसे – का दाम? (क्या मूल्य है?), कैसे, देबअ? (दीजियेगा) आदि शब्द पूरे वाक्य का स्वरुप लिए हुए थे। संवाद अनौपचारिक थे। इसी तरह की बात अन्य समूह ने भी की थी। राजा के सामने संवाद, शब्द, वाक्य आदि सभी सधे और शिष्ट थे।

- दरअसल यही भिन्न भिन्न सन्दर्भों में भाषा उपयोग की क्षमता है। बलाघात कैसे शब्द विशेष पर जोर देकर अर्थ बदल देता है, यथा–फांसी पर मैं चढूगा! (सामान्य)
- फांसी पर मैं चढूगा! (बलाघात में)– अर्थात फांसी पर मैं नहीं चढूगा!
- इसकी बानगी रोल प्ले में देखने को मिली। यह भाषिक कुशलता अभिव्यक्ति को सटीक, रोचक एवं प्रभावी बनाती है। दरअसल यह समझ साहित्यिक रचनाओं की समझ एवं सृजन में काफी सहायक होती है। जब इस तरह की रचनाएँ सामने होती हैं तो व्यक्ति स्वयं से संवाद करके आगे बढ़ता है।

कला अनुभव को दूसरे विषयों से जोड़ना –

गणित – एकांकी में 'साढ़े तीन सेर' की चर्चा है। वहां से हम भिन्न की समझ पर बात कर सकते हैं। वर्ग 5 के गणित के पाठ्यक्रम में भी भिन्न की समझ एवं उसके अनुप्रयोग पर बात की गयी है। सेर, पाव आदि अमानक इकाइयों पर भी बात की जा सकती है।

पर्यावरण अध्ययन – नाटक में कारीगर, कोतवाल जैसे भिन्न–भिन्न प्रकार के रोजगार एवं उनकी प्रकृति की चर्चा है जिन पर पर्यावरण अध्ययन की कक्षा में चर्चा कि जा सकती है। टका और सेर एक विशेष कालखंड की इकाई के रूप में अध्ययन एवं उनके क्रमिक विकास पर चर्चा कर सकते हैं और यह उनकी परियोजना कार्य का भी हिस्सा हो सकता है।

विज्ञान – मानक एवं अमानक इकाइयों की समझ, किलोग्राम, ग्राम, मीटर आदि पर चर्चा की जा सकती है।

सीखने–सीखाने में कला अनुभव के प्रभावी समावेश हेतु शिक्षक एंव विद्यालय की भूमिका

आज की स्कूली व्यवस्था के बारे में सोचा जाए तो यह बात विदित होती है कि कुछ विद्यालयों में स्थान की उपलब्धता एक समस्या है। जहां पर 5 कक्षाओं को दो कमरों तक सीमित कर दिया जाए, वहां पर स्थान के बारे में सोचना वाजिब है। ऐसे में अगर कला अनुभव के संदर्भ में सोचें, तो हमारे दिमाग़ में सवाल उठकर आ सकती है कि जब बच्चों के लिए बैठकर पढ़ने की जगह आसानी से उपलब्ध नहीं हो पा रही हो वहां पर बच्चों के लिए कला अनुभव के लिए जगह कैसे मुहैया कराई जाए। यह विचार करना आवश्यक होगा कि कला अनुभव के लिए विद्यालय में किसी विशेष प्रकार के स्थान एवं व्यवस्था की आवश्यकता होनी चाहिए। यहां पर प्रकाश एवं हवा की उचित व्यवस्था हो और बच्चों के साफ और समतल फर्श हो जिसका इस्तेमाल

बच्चे आराम से कर सकें। अब चुनौती ये है कि किस प्रकार उस जगह को और उपयुक्त और सहज बनाया जाए। जगह को सहज बनाने के लिए विभिन्न सामग्री हमारी मदद कर सकती है। जगह के चुनाव में बच्चों की सुरक्षा अहम है और साफ सफाई भी। जगह का चुनाव करते हुए इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि बच्चों को किसी प्रकार की परेशानी न हो और अगर वो ज़मीन पर बैठकर काम करना चाहे तो इस बात की भी उन्हें सुविधा हो। विद्यालयों में कला–अनुभव के लिए किसी विशेष प्रकार के स्थान एवं व्यवस्था की आवश्यकता नहीं है। कक्षाकक्ष में बच्चों के द्वारा ही आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रस्तुतियाँ और प्रदर्शनों के लिए व्यवस्था करवाई जा सकती है। जैसे – प्रदर्शन कला के लिए किसी भी एक स्थान को बच्चों की सहजतानुसार मंच की तरह प्रयोग किया जा सकता है और आवश्यकता पड़े तो पुरानी वस्तुओं – साड़ी, दुपट्टा, चादर, कुर्सी, मेज इत्यादि का प्रयोग कर के बच्चों की मदद करते हुए अस्थाई रूप से स्थान को निर्मित भी किया जा सकता है। इससे केवल स्थान निर्माण ही नहीं होगा बल्कि ये भी कला अनुभव का एक माध्यम बनेगा। इसी प्रकार दृश्य कलाओं के प्रदर्शन के लिए भी कक्षा और विद्यालयों की दीवारों का इस्तेमाल किया जा सकता है। साथ–ही विभिन्न अनुपेयागी एवं पुरानी वस्तुओं के प्रयोग से अस्थाई व्यवस्था की जा सकती है। स्थान एवं व्यवस्था की तरह ही विभिन्न कलाअनुभवों से जुड़ी सामग्री के लिए भी अपने आसपास एवं प्रकृति में उपस्थित वस्तुओं आदि का प्रयोग किया जा सकता है। सामग्री के ऊपर बात करें तो हमें लगता है कि इतनी महंगी सामग्री हम कक्षा में कैसे ला सकते हैं? बच्चों के लिए सामग्री व्यवस्था के इस के अलावा हमारे पास और भी तरीके हैं। पहली बात तो ये है कि कोई भी सामग्री महंगी न हो क्योंकि इस सब सामग्री के साथ बच्चों को काम करना है और बार–बार काम करना है। काम करते वक्त ये भी मुनासिब है कि चीज़ें अस्त–व्यस्त हो और सामग्री टूटे भी। अगर सामग्री महंगी होगी, तो हमें शायद दुख भी हो और हम शायद बच्चें को डाँट भी दें। कठिनाई यह होगी कि या तो हम शिक्षक उस सामग्री को उठाकर डिब्बे में बंद कर देंगे और या फिर हम बच्चों को इतना डरा देंगे कि वो सामग्री का इस्तेमाल करने में ही हिचकने लगें। दोनों ही स्थितियों में हम ऐसा नहीं कर रहे होंगे जिसके लिए हमने कला अनुभव के बारे में सोचा होगा। बात छोटी है पर उसका प्रभाव ज्यादा पड़ सकता है। अब एक बात तो यह तय हो गई है कि वैसी सामग्री का हम चुनाव करें जो ज्यादा महंगी न हो और दूसरी बात यह है कि उस सामग्री को बनाने में अगर बच्चों की भागीदारी हो, तो फिर बात ही कुछ और हो। कला अनुभव में इस्तेमाल आने वाली ऐसी बहुत सारी सामग्री है जो बच्चों के साथ मिल–बैठकर कक्षा में बनाई जा सकती है। उदाहरण के तौर पर रंगों को ले लीजिए। आपको ऐसे बहुत सारे प्रकृतिक रंग मिल जाएंगे जो आप बच्चों के साथ बैठकर आराम से बना सकते हैं। आप हल्दी से रंग बना सकते हैं, चुकंदर से, गेंदे के फूल से आदि। रंग बनाने की अलग–अलग कई विधियां हैं, जो कुछ बच्चे खुद भी करते होंगे। आप पेंट–ब्रश का निर्माण एक तिली और रुई की मदद से कर सकते हैं। किसी भी तरह के कला अनुभव के लिए एक बहुत ज़रूरी वस्तु है, पुराने अखबार। पुराने अखबार आपको विभिन्न तरह से काम आ सकते हैं, जहां वो अलग–अलग तरह की कलाकृति बनाने के काम आएंगे, दूसरा वो आपको साफ–सफाई, रंग आदि ज़मीन पर न लगे, इसमें भी मदद करेंगे। एक पुराना कपड़ा और पानी की व्यवस्था भी होनी

चाहिए। अगर आपके पास ये सामान हैं तो आप कला अनुभव के लिए तैयार हैं। आप रंग, ब्रश, अखबार, कपड़े के अलावा और भी अलग–अलग सामान जो अनुपयोगी–सा लगे, उसका संकलन करके रख सकते हैं जिसका उपयोग आप अलग–अलग समय पर अलग–अलग गतिविधि के लिए कर सकते हैं।

नाटक एवं दृश्य कला के लिए विद्यालय और घर के आसपास स्थित पेड़–पौधों, मेज–कुर्सी, दरी, अनुपयोगी वस्तुओं, अखबारों, चॉक, कोयला, मिट्टी, कंकड़–पत्थर, कपड़ों, खिलौनों, प्राकृतिक रंगों आदि का सृजनात्मक रूप से प्रयोग किया जा सकता है। जिससे मंच सज्जा, मंच सामग्री, वेशभूषा, मेक–अप, मुखौटे, चित्र, कोलाज आदि का निर्माण किया जा सकता है। संगीत और नृत्य के लिए वातावरण में स्थित विभिन्न ध्वनियुक्त वस्तुओं का इस्तेमाल करते हुए बच्चों की समझ और अनुभव के अनुसार पाठ्यपुस्तक में स्थित कहानी–कविता को लेकर ताल और लय का निर्माण किया जा सकता है और ताल और लय के अनुसार काल्पनिक या जीवन से जुड़े गीत और कविता का भी निर्माण किया जा सकता है। बच्चों द्वारा उनकी समझ, इच्छा और अनुभव के आधार पर नये–नये वाद्य यंत्रों का निर्माण करवाया जा सकता है और ध्वनि कोलाज आदि का निर्माण किया जा सकता है। उसमें नृत्य, अथवा अंग संचालन को भी शामिल किया जा सकता है। इसमें नृत्य का मतलब किसी खास प्रकार की नृत्य शैली में नहीं है बल्कि शारीरिक संचालन के द्वारा अभिव्यक्ति से है। इन सभी प्रक्रियाओं को सफल रूप से करने के लिए कक्षा एवं विद्यालय का वातावरण बच्चों के अनुसार सहज, सुगम, भयमुक्त और लोकतांत्रिक बनाना आवश्यक है जहाँ सृजनात्मकता, अन्वेषण, प्रयोगात्मकता एवं जाँच–पड़ताल के लिए उपयुक्त जगह हो। शैक्षिक भ्रमण के अंतर्गत संभव हो तो कभी–कभार बच्चों को इन सभी कलाओं से जुड़ी प्रस्तुतियों को दिखाने के लिए ले जाया जा सकता है और विद्यालय में भी इसकी व्यवस्था की जा सकती है। आप ये सोच सकते हैं कि कला अनुभव और भ्रमण का आखिर क्या जोड़ है? हम क्यों भ्रमण की बात कर रहे हैं? चलिए एक किस्सा सुनते हैं। कक्षा 10 की बात है। बच्चों को कागज, पेंसिल और रंग निकालने के लिए कहा। फिर बच्चों को यह निर्देश दिया गया कि जो चित्र आपको बहुत पसंद है, जो आपके दिमाग में उसी समय आ रहा हो उसे 5 मिनट में बनाकर दिखाएँ। समय सीमा इसलिए कम रखी गई ताकि बच्चों के दिमाग में मनपसन्द चित्र को लेकर जो अवधारणाएं हैं वह कागज पर उतर आएँ। गतिविधि के बाद जो कलाकृतियाँ पन्ने पर उतरकर आयीं, उनमें से 70 प्रतिशत कलाकृतियाँ थी जिससे हम सब वाकिफ है। पन्ने के ऊपर के तरफ बने तीन पहाड़, पहाड़ों के बीच में से निकलता पीला सूरज, पास से बहती नीली नदी, आसमाँ में उड़ते तीन पंछी, नदी के एक तरफ घर, घर के पास पेड़ और नदी के दूसरी तरफ एक मंदिर और मंदिर पर लगा एक तिकोण झंडा। और कहीं किसी चित्र में शायद आपको तैरती हुई मछलियाँ मिल जाये। लगभग 70 प्रतिशत बच्चों का पसंदीदा चित्र होगा। अब हम अगर अपने बारे में सोचें तो हो सकता है कि पाँच मिनट में बनाने के लिए हमारे दिमाग में भी यही चित्र सुझे। पर ऐसा क्यों है? यह सोचने का सवाल है। जब 70 प्रतिशत लोगों की कोई भी पसंद एक नहीं हो सकती। चाहे खाना हो, किताब हो, रंग हो आदि तो फिर भला पसंदीदा चित्र और उसे बनाने की शैली में एकरुपता क्यों? यह सवाल हमने बच्चों से भी किया। जानना चाहा कि जब वे चित्र बना रहे थे तो उनके दिमाग में क्या आ रहा था? बच्चों ने

बताया कि वे प्रकृति के बारे में सोच रहे थे तो यह चित्र उनके दिमाग में आ गया। एक और बात है यह गतिविधि मैंने किसी पहाड़ीवाले क्षेत्र में की हो ऐसा जरुरी नहीं।

यह गतिविधि अलग–अलग जगह पर अलग–अलग समय में अलग–अलग समूह जिनमें शिक्षक भी शामिल थे कराया और हर जगह एक ही नतीजा निकला। यह सवाल सोचने वाला है कि आखिर सब जगह आपको एक ही जैसे चित्र क्यों मिलते हैं? हम अगर एक अच्छे कला अनुभव के बारे में बात करें तो उसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि हर व्यक्ति को अपना एक नजरिया बनाने का मौका मिले और वह अपने अनुसार कागज पर लकीरों और रंगों से अभिव्यक्त कर पाएँ। विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति ही कला अनुभव का मुख्य उद्देश्य है जो तीन पहाड़ों वाली तस्वीर हमारे दिमाग में आती है इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि बचपन में हमें ऐसा ही चित्र बनाना सीखाया गया हो इसलिए हम सब ऐसा ही चित्र बनाते चले आ रहे हैं। शैक्षिक भ्रमण बच्चों को अपना नजरिया ढूँढने में मदद करती है। अपने आसपास की होनेवाली अलग–अलग वस्तुओं एवं घटनाओं के बारे में अपना नजरिया बनाने में हमें मदद करना चाहिए। विभिन्न स्थानीय या क्षेत्रीय कलाओं से जुड़े लोक एवं शास्त्रीय कलाकारों से समय–समय पर भेंट और संवाद कराया जा सकता है, साथ–ही, विशेष कलाकार द्वारा कार्याशाला आदि के ज़रिये अनुभव भी प्रदान किया जा सकता है। इससे न केवल बच्चों को अपने व्यक्तित्व के विकास में मदद मिलेगी वरन् उन से सामजिकता की भावना का भी विकास होगा और साथ–ही स्थानीय लोक एवं शास्त्रीय कलाओं और उनसे जुड़े कलाकारों के बारे में जानकारी मिलेगी, सांस्कृतिक विरासत को समझ सकेगें तथा इनके प्रति सम्मान की भावना की प्रेरणा मिलेगी।

समेकन

इस इकाई में हमने समझा कि कला समेकित शिक्षा, सीखने–सिखाने की वैसी प्रक्रिया है जिसमें कला को एक माध्यम के रूप में उपयोग किया जाता है। हमने यह भी समझा कि कला समेकित शिक्षा के अंतर्गत विभिन्न कलाओं से सम्बंधित समग्रियों एवं विधाओं जैसे चित्रकला, मूर्तिकला आदि कई प्रकार के शिल्प जैसे मुखौटे बनाना या अन्य सामग्रियों से कई कलात्मक वस्तुओं का निर्माण तथा प्रदर्शन कलाओं में नाटक, नृत्य, गीत, संगीत इत्यादि को विषयों के साथ जोड़ कर बच्चों को आनन्ददायी वातावरण में रोचक तरीके से समझाया जा सकता है। इसके महत्व को समझते हुए हमने सीखने की योजना में कला समेकित शिक्षा की अवधारणा को शामिल करने के विभिन्न पहलुओं को भी समझा।

''बच्चे की कला में सबसे सुन्दर उसकी 'ग़लतियाँ' होती हैं। जितनी अधिक मात्रा में ये ग़लतियाँ होती हैं, उतना ही आकर्षक उनका काम होता है। जितना ही शिक्षक उन्हें हटाने की कोशिश करता है, उतना ही बच्चे का काम फ़ीका, निर्धन और व्यक्तित्वहीन हो जाता हैं।''– फ्रांज चीज़ेक

(विलहैल्म वियोला की 'चाइल्ड आर्ट' नामक पुस्तक से, युनिवर्सिटी ऑफ लन्दन प्रेस लि., 1945 पृ. 33)

मूल्यांकन के प्रश्न

1. कला समेकित शिक्षा क्या है? इसकी क्या उपयोगिता क्या होनी चाहिए।
2. आप स्वयं कला को अपने शिक्षण के साथ जोड़ पाने में कितना सक्षम हैं?
3. बच्चों के संज्ञानात्मक विकास में कला की क्या उपयोगिता है? उदाहरण देते हुए समझाएं।
4. कुछ ऐसे कला समेकित गतिविधियों का उदाहरण दें जिसके माध्यम से आप अपनी कक्षा में बच्चों को सक्रिय बनाने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।
5. कुछ ऐसे कला समेकित गतिविधियों का उदाहरण दें जिसके माध्यम से आप अपनी कक्षा में समूह भावना को प्रोत्साहित कर सकते हैं।
6. क्या कला समेकित शिक्षा के माध्यम से शिक्षक का कार्य आसान हो जाता है? क्यों या क्यों नहीं।

आप प्रारम्भिक स्तर की कक्षा के पाठ्यपुस्तकों पर आधारित कुछ सीखने की योजना का निर्माण करें तथा उनका क्रियान्वयन भी करें।

इकाई– 5

कला समेकित शिक्षा में आकलन एवं मूल्यांकन

अवधारणात्मक समझ

आइए एक ऐसी परिस्थिति की कल्पना करें, जहाँ एक बच्ची पूरा दिन अपने से किए कलात्मक कार्य को निहार रही है। उसने कला की कक्षा में बिताए हर क्षण के मज़े लिए। हर गतिविधि में हिस्सा लिया जहाँ उसे ज़रा भी यह चिन्ता नहीं थी कि बाकी लोग उसके काम को देखकर क्या सोचेंगे। उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी 'आत्म संतुष्टि'। समझ में तब आता है जब शिक्षक एक–एक कर सब बच्चों की रचना को इकट्ठा कर उन पर 'ग्रेड' देने लगता है। हम समझ सकते हैं कि इससे बच्ची की सीखने की उत्सुकता पर क्या प्रभाव पड़ा होगा और इससे उसके कला से अनुभव को क्या दिशा मिलेगी। मूल्यांकन की समझ बनाने के लिए हमें मूल्यांकन के उद्देश्यों को समझना होगा। मूल्यांकन को सीखने की प्रक्रिया का एक अभिन्न और महत्वपूर्ण हिस्सा मानना होगा। बिना इसके शिक्षण अधूरा है। मूल्यांकन को यह समझने का माध्यम बनाना होगा कि बच्चे ने क्या–क्या सीखा और अभी और क्या सीखने की ज़रूरत है। एक समय था जब अधिगम (या सीखना) मात्र बच्चों की ही ज़िम्मेदारी थी। पर हाल की खोज और शोध ने यह माना कि हर बच्चा सीख पाने में सक्षम है। आपने अपनी भाषा के पर्चे में इस बात पर विमर्श किया होगा कि कोई बच्चा किस तरह से भाषा की प्रणाली में दक्षता हासिल कर लेता है। इस तरह हम कह सकते हैं कि ज़रूर कोई अन्य कारक भी हैं जो कि सीखने में मदद करते होंगे या उसे बाधित करते होंगे। इसी संदर्भ में, मूल्यांकन हमें यह समझने में मदद करती है कि किन–किन क्षेत्रों में बच्चे को सीखने में कठिनाई आती है या वे कौन से कारक हैं जो बच्चे के अधिगम में बाधा बन रहे हैं। हम यह कह सकते हैं कि मूल्यांकन का उद्देश्य बच्चे ने कितना सीखा, यह जाँचना नहीं अपितु, बच्चे के सीखने का अनुभव व सीखने के प्रयास का मूल्यांकन होना चाहिए।

मूल्यांकन निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। इसका तात्पर्य है – बच्चों की प्रगति दर्शाने वाले विभिन्न मापदण्डों पर जानकारी एकत्रित करना जिससे बच्चे की सीखने की मात्रा की भी समझ बन सके। हम बच्चे के सीखने में प्रगति की जानकारी को संकेत के रूप में देखें तो बच्चों के प्रयास को और भी सार्थक बनाने में मदद मिलेगी।

हमने सम्पूर्ण शिक्षा के संदर्भ में कला शिक्षा की अहमियत के बारे में समझ बनाई। अब हमें यह जानना होगा कि कला किस तरह बच्चे के शिक्षण प्रक्रिया के लिए अनिवार्य है। कला हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा तो है ही, मानव संस्कृति के लिए बेहद ज़रूरी एक ज्ञान–प्रणाली (नॉलेज सिस्टम) है। कला ने मानव के पुराने इतिहास को बड़ी सहजता से संभाले रखा व मानव संस्कृति की सुव्यवस्थित जानकारी भी दी है। कला में ही सभी ज्ञान–प्रणालियाँ सम्मिलित हैं और कला किसी भी संस्कृति का एक प्रभावशाली माध्यम है।

कला शिक्षा का उद्देश्य है व्यक्ति को वस्तु, प्रकृति के प्रति संवेदनशील बनाना, जिससे उसे उसके उपयोग और संरक्षण के प्रति जबावदेह बनाया जा सके, प्रकृति में बिखरे सौन्दर्य को महसूस करें तथा सौन्दर्य बोध विकसित कर सकें। अन्तः और बाह्य कलात्मक बोध को विकसित करें तथा आत्मीय संबंध स्थापित कर सकें।

अब बात आती है कि इस विकास को परखा कैसे जाए। यहाँ के संदर्भ में परखने की प्रक्रिया को, परीक्षाओं को, मानसिक तनाव से जोड़कर देखा जाता है। कला और मानसिक तनाव का कोई आपसी संबंध नहीं है। यहाँ तक कि कोई भी सीखने की प्रक्रिया तनावग्रस्त स्थिति में नहीं हो सकती। यहाँ हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि हमें मूल्यांकन क्यों करना चाहिए और किस तरह मूल्यांकन को रचनात्मक, अर्थपूर्ण और तनावमुक्त बनाया जा सकता है जिससे बच्चों में सीखने की प्रक्रिया प्रबल हो सके।

हम सभी बच्चों के बारे में चिंतित हैं और इसलिए हम सबका सरोकार इस बात से है कि प्रत्येक विद्यालय का परिवेश ऐसा हो जहाँ हर बच्चे को सीखने के भरपूर अवसर मिले। बच्चों की शिक्षा से जुडे सभी लोग, विशेषकर शिक्षक इस संबंध में अपने आपको बहुत ही जिम्मेदार मानते हैं। ऐसा उनकी इच्छाओं से जाहिर होता है कि वे सभी बच्चों को उनके गुण और रूचियों के विकास में मदद के लिए तत्पर हैं। वे उन्हें विश्वास के साथ अपनी जिन्दगी का सामना करने के लिए तैयार करना चाहते हैं। शिक्षकों का काफी समय इसी बात का पता लगाने में निकल जाता है कि बच्चे स्कूल में कैसा कर पा रहे हैं। बहुत से शिक्षक आकलन को अपने स्कूल की रोज़मर्रा की महत्वपूर्ण गतिविधि के रूप में देखते हैं।

शिक्षक इसके लिये बहुत से कारण गिनाते हैं – एक महत्वपूर्ण कारण यह जानना है कि बच्चों को जो कुछ भी सीखना है, क्या वे सीख पा रहे हैं? दूसरी वजह एक अवधि विशेष में बच्चों को प्रगति के बारे में जानकारी प्राप्त करना है। तीसरी वजह, जिसको सिर्फ शिक्षक ही नहीं, बल्कि हम सभी बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं, कि बच्चे की भिन्न–भिन्न विषयों/क्षेत्रों में क्या उपलब्धियाँ रहीं। ऐसा शायद इसलिए कि बच्चों को अच्छी क्वालिटी (गुणवत्ता) वाली शिक्षा देना चाहते हैं और महसूस करते हैं कि ऐसा तभी संभव हो सकता है जब टेस्ट और परीक्षाओं के जरिए पढाए गए विषयों में बच्चों की उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जाए। परीक्षणों का अपना एक उददेश्य है पर यदि हम वास्तव में बच्चों को बेहतर तरीके से सीखने में मदद करना चाहते हैं तो हमें इस बात को खास तौर से समझने की जरूरत है कि जाँच/परीक्षाओं में बच्चे द्वारा प्राप्त किए गए अंक और ग्रेड बच्चों की प्रगति या सीखने के बारे में क्या कुछ विशेष बता पाते हैं। इसके अलावा आकलन या मूल्यांकन के महत्व को निम्न बिन्दुओं से जाना जा सकता है :–

- बच्चों के व्यक्तिगत और विशेष जरूरतों को पहचानने में।
- उपर्युक्त तरीकों के आधार पर अध्यापन और सीखने की स्थितियों की योजना बनाने में।
- कोई बच्चा क्या कर सकता है और क्या नहीं, उसकी किस चीज में रूचि है, वह क्या करना चाहता है और क्या नहीं, इन सबके प्रति समझ बनाने में।
- बच्चों को कुछ प्राप्त कर पाने, पूर्णता की भावना के विकास के लिए प्रोत्साहित करने में।
- बच्चे के प्रगति के प्रमाण तय (कमजोर पक्ष और मजबूत पक्ष का पता करना) कर पाने में और इन सूचनाओं को अभिभावकों और दूसरों तक सकारात्मक रूप से सम्प्रेषित कर पाने में।
- बच्चों के मूल्यांकन के प्रति व्याप्त भय को दूर करने और उन्हें स्व–मूल्यांकन के लिए प्रोत्साहित करने में।
- प्रत्येक बच्चे के सीखने और विकास में मदद करने तथा सुधार की संभावनाएं खोजने में।

जैसा कि पहले भी चर्चा की गई है, कला से तात्पर्य केवल उस रचना से नहीं है, बल्कि हर उस प्रक्रिया से है जिससे बच्चा किसी भी कला के निर्माण की प्रक्रिया से गुज़रता हैं। हमने पढा कि बच्चा कला को अपने अनुभवों से निर्मित संदर्भ में ग्रहण करता है। जीवन के हर पड़ाव पर बच्चे की कला के प्रति रुचि बदलती रहती है। बच्चे किस तरह कला को अभिव्यक्ति के माध्यम के रुप में प्रयोग करते हैं – यह जानना भी ज़रूरी है। एक ही उम्र के कई बच्चों का अनुभव भी एक–दूसरे से भिन्न होंगे जो उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति में दिखाई देगा। प्रत्येक बच्चों में दुनिया को देखने का एक अपना नज़रिया होता है। कक्षा में इस नज़रिए पर ग़ौर करने की और क़द्र करने की ज़रूरत है।

अब हर बच्चे की व्यक्तिगत भिन्नताओं व उसके कला के साथ अनुभव में भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए, मूल्यांकन पद्धति को उन सभी उपकरणों से लैस होना होगा जो सभी दृष्टिकोणों से बच्चे की कला को समझ सके।

आंकलन की प्रक्रिया को अपनाते हुए निम्नलिखित बातों को दिमाग में रखा जाना चाहिए–		
प्राथमिक		**उच्च प्राथमिक**
▪ अवलोकन करना सीखना ▪ सहज (spontaneity) और मुक्त अभिव्यक्ति ▪ भिन्न–भिन्न तरह की गतिविधियों में हिस्सा लेने के लिए रुचि दिखाना ▪ सामूहिक कार्य ▪ प्रत्येक बच्चे की भागीदारी		▪ छात्रों की भागीदारी ▪ सामाजिक अंतःक्रिया ▪ कला और डिज़ाइन के मूलभूत तत्व व सिद्धान्त (principle) की समझ व उनके प्रति संवेदनशीलता का विकास ▪ जिस माध्यम का प्रयोग किया हो, उसमें महारत ▪ अलग–अलग माध्यमों में प्रयोग

किसी एक मूल्यांकन पद्धति के बारे में चर्चा करने से पहले हम जिन मापदण्डों की नींव रखी जा सके। वे इस प्रकार हैं –

- **मूल्यांकन बच्चे के लिए न होकर, शिक्षक के लिए है**

मूल्यांकन बच्चे के लिए नहीं है, बल्कि शिक्षक के लिए है। इससे शिक्षकों को इन बातों पर समझ बनाने में मदद होती है कि बच्चों के सीखने की प्रक्रिया क्या होती है। बच्चे को क्या चुनौतिपूर्ण लग रहा है। बच्चे कितना सीख पाये हैं। शिक्षण योजना में किस तरह की सुधार की आवश्यकता है, विभिन्न स्तर के बच्चों को किस तरह से सिखाया जाए, बच्चों के रूचि–अरूचि का पता लगाना, बच्चों के कल्पनात्मक क्षमता, सृजनात्मक क्षमता, अभिनय क्षमता, रचनात्मक क्षमता आदि विभिन्न पहलुओ का पता लगाने के लिए शिक्षक को बच्चों का मूल्यांकन करना पड़ता है।

कोई परीक्षा नहीं

मूल्यांकन पद्धति का तात्पर्य परीक्षा से नहीं है। परीक्षा का अर्थ है कि बच्चों को मजबूरन किसी विषय या थीम पर सीमित समय में प्रदर्शन करने को कहना। एक सार्थक मूल्यांकन के लिए इसकी ज़रूरत नहीं है। मूल्यांकन के उपकरण ऐसे होने

चाहिए जो बच्चों के सीखने के अनुभवों को समग्रता में जाँच सकें, वह भी स्वच्छन्द और सीखन–सिखाने लायक (Conducive) वातावरण में।

- **प्रक्रिया आधारित/प्रक्रिया केंद्रित –**

जैसा कि पहले भी कहा गया है, मूल्यांकन रचना का नहीं, रचना करने की प्रक्रिया का होना चाहिए। सही मायने में बच्चे का अधिगम उसके कला से अंतक्रिया के दौरान अनुभवों, कुछ नया रचने का प्रयत्न, चुनौतियों से साक्षात्कार और फिर उनका हल ढूँढने में है, न कि अन्त में प्राप्त होने वाली रचना में। सृजन ही कला का केन्द्र नहीं है, बल्कि दुनिया की तरफ एक सृजनात्मक और कलात्मक दृष्टिकोण विकसित करना है।

- **मूल्यांकन के पैमाने –**

मूल्यांकन विभिन्न पैमानों पर बच्चों में विकास को जाँचता है। ये पैमाने वे कौशल हो सकते हैं जिन पर वह गतिविधि आधारित है। इस मापदण्ड का आधार पिछला बिन्दु है जहाँ इस बात पर जोर दिया गया कि मूल्यांकन प्रक्रिया का होना चाहिए, न कि रचना का। अब मूल्यांकन के लिए सम्पूर्ण प्रक्रिया को चरणों में जोड़ना होगा। इससे उन समस्याओं के बारे में समझ बनेगी जिनका बच्चों से अक्सर साक्षात्कार होता है और आगे के लिए योजना बनाने में भी मदद होगी।

- **प्रतिस्पर्धा केन्द्रित नहीं है** –

मूल्यांकन का उद्देश्य प्रतिस्पर्धा नहीं है। जैसा कि हमने पहले भी चर्चा किया हैं कि हर बच्चा अपने आप में विशेष/विशिष्ट होता है। इसलिए एक की तुलना दूसरे से करना निर्रथक है। हर बच्चा अनुभवों की एक कड़ी से गुज़र रहा होता है जिससे उसका नज़रिया विकसित होता है। इस बात का ख्याल मूल्यांकन करते दौरान होना ज़रूरी है। मूल्यांकन कुछ ऐसा होना चाहिए जो बच्चे के विकास को उसी के विशिष्ट परिप्रेक्ष्य में माप सके। हर बच्चा अपनी रफ्तार से चीज़ों को ग्रहण करता है व सीखता है। मूल्यांकन के प्रति ऐसी समझ बच्चे को अपनी तरह व अपनी गति से सीखने का अवसर देगी।

- **सतत् और निरंतर हो –**

आंकलन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है कि मूल्यांकन सतत् हो व निरंतरता में हो। मूल्यांकन 'वन टाइम' परीक्षा न होकर उस पूरे समय का रिकॉर्ड हो जब बच्चा नई चुनौतियों से जूझता है, प्रयास करता है और इस दौरान कई छोटी–बड़ी मूर्त–अमूर्त उपलब्धियाँ पाता है। इन सब के अलावा बच्चा हर समय कुछ–न–कुछ सीख रहा होता है उसका अवलोकन नियमित रूप से करना उसका रिकार्ड रखना और आवश्यकतानुसार प्रतिपुष्टि देना। यह कार्य नियमित (प्रत्येक दिन) होना चाहिए जिससे बच्चे के प्रगति के स्तर के बारे में आसानी से पता लगाया जा सकता हैं।

- **साथी का मूल्यांकन –**

स्व–मूल्यांकनः– कोई भी मूल्यांकन पद्धति बिना स्व–मूल्यांकन व साथियों के मूल्यांकन के बिना अधूरी है। यहाँ एक वाज़िब सवाल उठता है कि उसी उम्र के और उसी संज्ञानात्मक स्तर के बच्चे कैसे अपनी सह–पाठियों का मूल्यांकन कर सकेंगे। इसलिए, यहाँ यह समझने की ज़रूरत है कि 'साथी का मूल्यांकन' की अहमियत क्या है। सबसे पहले तो यह शिक्षक को यह समझने का अवसर देता है कि कोई बच्चा दूसरे बच्चे को, कई मायने में, हमसे बेहतर समझता है और इस नज़रिए से वो उसे सकारात्मक और निर्माणात्मक प्रतिक्रिया देगा। इसके अलावा, इस अभ्यास से कक्षा में

सहयोग–आधारित शैक्षिक वातावरण बनाने में मदद मिलेगी। इससे फिर साथी–समूह में अध्ययन को प्रोत्साहन मिलेगा।
स्व–मूल्यांकन तो किसी भी कारगर शिक्षण प्रक्रिया के लिए ज़रूरी है। सीखने वाले के लिए अपने सीखने के बारे में जागरूक होने से मदद मिलती है। इससे बच्चा जीवन भर अपने सीखने का स्वयं ही मूल्यांकन कर पाने में सक्षम हो जाता है। स्व–मूल्यांकन से संचालन व निर्देशन के माध्यम से बच्चे खुद को और अपनी परिस्थितियों को बेहतर समझ पाते हैं। कला शिक्षण में तो इसकी अहमियत जितनी समझी जाए कम है। क्योंकि कला और सौंदर्य के प्रति हर किसी का नज़रिया व्यक्तिगत होता है। अभिव्यक्ति और उसकी समझ भी भिन्न होती है। इसीलिए बच्चों के नज़रिये की समझ होना बहुत ज़रूरी है।

- **प्रतिक्रिया व योजना –**

प्रतिक्रिया को जब तक आगे की योजना में समायोजित नहीं किया जाता, तब तक मूल्यांकन की प्रक्रिया अधूरी है। मूल्यांकन का उद्देश्य सीखने को परखना नहीं बल्कि सीखने को प्रोत्साहित करना है। ऐसा कारगर रूप से करने के लिए बच्चों को मूल्यांकन के आधार पर प्रतिक्रिया देना बहुत ज़रूरी है। इस तरह बच्चे (learner) और शिक्षक (mentor) सीखने के बेहतर अवसर व माध्यम तलाश सकते हैं। साथियों, सह–पाठियों की प्रतिक्रिया भी इस प्रक्रिया में शामिल हैं। इस मूल्यांकन से निकलने वाले निष्कर्ष योजना के कार्य को ठोस आधार देते हैं।

मूल्यांकन संबंधी सूचनाओं का इस्तेमाल

मूल्यांकन संबंधी सूचनाओं का इस्तेमाल निम्न तरीके से किया जा सकता हैः–

1. **रिपोर्टिंग और प्रतिपुष्टि** (Feedback) **के लिएः–**

सीखने की प्रक्रिया के दौरान जब मूल्यांकन साथ–साथ चल रहा होता है तब शिक्षकों के पास बच्चों के बारे में बहुत–सी सूचनाएँ जुट जाती हैं। सूचनाएँ दर्ज कर लेने एवं उनका विश्लेषण कर लेने के बाद यह जान लेना जरूरी होगा कि इनका क्या किया जाए? इस बात से आप सहमत होंगे कि सामान्यतः सभी विधालयों में बच्चों के सीखने और प्रगति के मूल्यांकन से जुडी सूचनाएँ एक रिपोर्ट कार्ड के माध्यम से दी जाती है। ये रिपोर्ट कार्ड एक प्रकार से भिन्न–भिन्न विषयों में बच्चों के प्रदर्शन और निष्पादन की एक तस्वीर विद्यालयी सत्र में आयोजित टेस्टों, परीक्षाओं में प्राप्त अंकों और ग्रेडों के आधार पर प्रस्तुत करते हैं।
इसमें कोई संदेह नहीं है कि शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों का जो मूल्यांकन किया जाता है और इस संबंध में वे जो भी रिकार्ड रखते हैं, वे सभी शिक्षको को मदद करते हैंः–

- यह समझने में कि बच्चे किस तरह और कितना सीख पा रहे हैं।
- स्वयं की शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को उन्नत करने में उपयोगी।
- प्रत्येक बच्चे की सीखने की प्रक्रिया को समुन्नत करने के उद्देश्य से उन्हें और अधिक अर्थपूर्ण अवसर तथा अनुभव प्रदान करने की दिशा प्रदान करते हैं।

2. **शिक्षकों के लिए**

शिक्षक की प्रतिबिंबात्मक टिप्पणी प्रगति पत्रक बनाने में मदद करेगी। प्रगति पत्रक एक निश्चित अवधि में बच्चे की प्रगति से संबंधित स्पष्ट तस्वीर प्रदान करने में सहायक

सिद्ध होगा। इसी स्थिति में शिक्षक द्वारा बच्चों के सीखने की दिशा को अर्थपूर्ण बनाया जा सकता है और समझ तथा कौशल प्राप्ति के निम्न स्तर के उच्च एवं जटिल स्तर की ओर पहुंचाया जा सकता है। इस तरह से हमें इस बात की समझ बनाने में भी मदद मिलती है कि बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में क्या–क्या कठिनाइयां आ रही हैं और इन कठिनाइयों तथा अन्तरों का समाधान किस तरह से ढूँढा जा सकता है। प्रतिपुष्टि ही वह माध्यम है जिसके जरिए शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में परिवर्तन लाया जा सकता है।

प्रतिपुष्टि के संबंध में महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि शिक्षक द्वारा दी जाने वाली रिपोर्ट में क्या–क्या होना चाहिए। बच्चे द्वारा की गई प्रगति का उल्लेख निम्न तरिके से किया जा सकता हैं :–

- ❖ विषय क्षेत्रों में ए, बी, सी ग्रेड देना। ये ग्रेड बच्चे के अधिगम तथा प्रदर्शन के उस विस्तार की ओर ध्यान दिलाएंगे जो तीन स्तरीय सूची द्वारा दर्शाया जाता हैं।
- ❖ बच्चे द्वारा किए गए कामों का संग्रह और उनका प्रदर्शन बच्चे की सीखने के प्रति समझ बनाने में मददगार होगा।
- ❖ बच्चे के व्यक्तित्व के भिन्न–भिन्न पहलुओं पर ध्यान केंद्रित किया जा सकता हैं।
- ❖ ग्रेड के साथ–साथ बच्चे के सीखने के तरीकों के बारे में गुणात्मक बातें कही जा सकती हैं।
- ❖ बच्चे द्वारा किए गए कामों का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता हैं।
- ❖ बच्चे के सीखने की प्रक्रिया के मजबुत पक्ष को और अधिक उभारकर तथा उन पहलुओं पर विशेष ध्यान देकर जहां पुनर्बलन की आवश्यकता है। इत्यादि

3. बच्चों को संप्रेषित करना:–

अध्यापन में जब बच्चे बहुत सी गतिविधियों में संलग्न होते हैं तब शिक्षक अनौपचारिक रूप से प्रतिपुष्टि देते रहते हैं। बच्चे शिक्षकों, दूसरे बच्चों या समूहदार/जोडीदार की कार्य प्रणाली का अवलोकन करते समय स्वयं की गलतियां भी दूर कर लेते है और समुन्नत भी करते रहते हैं। सीखने के संदर्भ में स्थिति समस्याजनक तब हो जाती है जब रिपोर्ट केवल यह दर्शाती है कि बच्चे सही तरह से कर नहीं पाते, यानी उनकी अक्षमताओं और असफलताओं की ही व्याख्या की जाती है। इस तरह की रिपोर्ट बच्चों को हतोत्साहित/निरूत्साहित करती है। शिक्षकों को निम्न तरह की व्याख्या रिपोर्ट कार्डों में करनी चाहिए:–

- ❖ प्रत्येक बच्चे से उसके कार्यों (रचना) के बारे में बातचीत करें, कौन–कौन सा काम अच्छी तरह से किया गया है, कौन–सा नहीं और कहाँ–कहाँ सुधार की जरूरत है।
- ❖ बच्चे को अपना–अपना पोर्टफोलियों देखने तथा वर्तमान में (हाल ही में) किए गए कार्यों (रचना) की तुलना पुराने कार्यों (रचना) से करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।
- ❖ बच्चे व शिक्षक दोनों मिलकर इस बात की पहचान करें कि बच्चों को किस तरह की मदद की आवश्यकता हैं।
- ❖ काम करने की प्रक्रिया के दौरान या बाद में भी सकारात्मक व रचनात्मक टिप्पणियाँ ही देनी चाहिए।

4. अभिभावकों के साथ बाँटना:–

सामान्यतः सभी अभिभावक को यह जानने में रूचि रहती है कि उनका बच्चा विद्यालय में कैसा कर रहा है, उसने क्या–क्या सीखा है, दूसरे बच्चे किस तरह का प्रदर्शन कर रहे हैं एक निश्चित समयावधि के भीतर उनके बच्चे की क्या प्रगति हुई है। आमतौर पर शिक्षक यह महसूस करते है कि उन्होंने अभिभावकों को उनके बच्चों की प्रगति के बारे में भली–भाँति बता दिया है ''अच्छा कर सकता है'', ''अच्छा'', ''खराब'', ''अधिक प्रयास करने की जरूरत है'', किसी भी अभिभावक के लिए इन टिप्पणियों की क्या सार्थकता हैं? क्या इस तरह की टिप्पणियाँ किसी तरह की स्पष्ट सूचना प्रदान कर सकती हैं कि उनका बच्चा क्या कर सकता है और क्या सीख चुका है। अभिभावकों के लिए टिप्पणियाँ स्पष्ट व सरल भाषा में कुछ निम्न प्रकार से दिया जा सकता हैः–

- बच्चे क्या–क्या कर सकते हैं? क्या करना चाह रहे हैं? और क्या करने में उसे कठिनाई होती है?
- बच्चे को क्या–क्या करना पसंद है और क्या नहीं?
- बच्चों द्वारा किए गए कामों के नमूने, गुणात्मक कथन, मात्रात्मक प्रतिपुष्टि के साथ प्रस्तुत किए जा सकते हैं।
- बच्चों ने किस तरह से सीखा (प्रक्रिया) और सीखने में कहाँ–कहाँ कठिनाई का सामना किया?
- बच्चों के कार्यों की चर्चा अभिभावकों से करना जो उनकी सफलता और सुधार के क्षेत्रों की दिखाने में मदद कर सके।
- अभिभावकों के साथ चर्चा करना कि बच्चों की किस तरह से मदद कर सकते हैं और घर पर उन्होंने किस तरह का अवलोकन किया है।
- बच्चे की उन्नति/प्रगति को ग्राफ (लेखा चित्र) के माध्यम से प्रस्तुत कर सकते हैं, जिसे समझना बच्चों व अभिभावकों के लिए सरल होगा।

5. शिक्षक के कार्यों की प्रतिपुष्टिः–

मूल्यांकन शिक्षक के द्वारा किए गए कार्यों का प्रतिपुष्टि (feedback) भी पेश करता है तथा इससे शिक्षक अपने कार्यों का मुल्यांकन निम्न सवाल के द्वारा कर सकते हैंः–

- क्या मेरे बच्चे पूरी तरह गतिविधियों में संलग्न हैं और ठीक तरह से सीख पा रहे हैं? यदि नहीं तो वे किस स्तर पर हैं?
- क्या मैं बच्चों की भिन्न–भिन्न जरूरतों को समझ सकता हूँ? यदि हाँ, तो उन जरूरतों की समझ के आधार पर मैं क्या करने वाला हूँ?
- क्या कुछ ऐसे बच्चे हैं जो पहले स्तर तक पहुँचने में कठिनाई अनुभव कर रहे हैं? उन्हें प्रेरित तथा उत्साहित करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए?
- बच्चों को एक स्तर से अगले स्तर तक ले जाने के लिए मुझे अपनी अध्यापन प्रक्रिया को उन्नत करने के लिए क्या करना चाहिए?
- मैं बच्चों को स्व–आकलन के लिए कैसे प्रेरित कर सकता हूँ?
- मुझे किन–किन क्षेत्रों में कठिनाइयाँ आती हैं? (बच्चों का समूह बनाने में, बच्चों की उम्र और स्तर के अनुसार गतिविधियों का चयन करने में, सामग्री की कमी व अनुप्युक्तता पर, आदि)
- मुझे और किस तरह की सहायता की जरूरत है? मुझे कौन इस तरह की मदद दे सकता/सकती है?
- बेहतर अध्यापन अधिगम अभ्यासों के लिए और क्या–क्या प्रयास किए जा सकते हैं?

आकलन एवं मूल्यांकन के संकेतकः अर्थ, दृश्य कला एवं प्रदर्शन कला के संदर्भ में –

बच्चे जब कला में भाग ले रहे होते हैं तो उसमें उनके अनेक अनुभव शामिल होते हैं, इसलिए कला में उनके आकलन में समग्रता होनी चाहिए। इसके लिए बच्चे द्वारा बनाई या तैयार की गई कला की प्रक्रिया और उत्पाद का अन्तिम रूप में दोनों का आकलन करना आवश्यक है तभी बच्चे के सीखने के बारे में कोई राय बनाई जा सकती है। प्रक्रिया के अंतर्गत हम कई तरह का अवलोकन कर सकते है जैसे बच्चे की खोजी प्रवृति, किसी काम को जारी रखने की कोशिश, अपने काम को आत्मसात करने का गुण, अपनी कला के माध्यम से अपने विचार और भावना व्यक्त कर पाना, अपने और दूसरों के प्रति जागरूकता होना, सृजनशीलता का परिचय देना, अपने और दूसरे के अनुभवों को विश्लेषित करना और कलात्मक उत्पाद या प्रस्तुतियों के गुण–दोष बता पाना, कला का आकलन मुख्यतः प्रक्रिया आधारित है इसलिए बच्चे द्वारा किए जा रहे अवलोकन, अन्वेषण, सहभागिता और अभिव्यक्ति निर्णायक तत्व बन जाते हैं। कोई गाना याद हो जाना या कोई नाटक तैयार करके दिखना आकलन का आधार नहीं हो सकता क्योंकि उसमें सीखने के कई सोपान अनदेखे रह जाते हैं।
यहाँ कला में अवलोकन के लिए कुछ संकेतक दिए गए हैं और साथ–ही उनके बढते स्तर भी दिए जा रहे हैं। ये संकेतक सभी प्रकार की कलाओं के लिए समान रूप से प्रयोग नहीं किये जा सकते हैं। अलग–अलग सेकंतकों का अलग–अलग गतिविधि या कक्षा में प्रयोग करना ज्यादा व्यावहारिक होगा। एक–हीं कक्षा या एक ही अवधि में आवश्यक नहीं हैं कि कोई बच्चा तीनों स्तरों में हो यह तीनों स्तरों एवं संकेतकों निम्न टेबल में दर्शाए गए हैं।

संकेतक	स्तर एक	स्तर दो	स्तर तीन
सहभागिता (Engage)	व्यस्त लेकिन अधिक ध्यान नहीं	पूरे ध्यान से	आनंदपूर्वक
समझ (Perceive)	ध्यान लगाना	मगन हो जाना	बारीकियों पर ध्यान देना
अभिव्यक्ति (Express)	अनुकरणात्मक	प्रयोगात्मक	अनूठा अनुपम/सृजनात्मक मौलिकता
चिंतन, विचार निर्माण (Reflect/To think deeply)	वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक	विचारशील	पुनर्रचनात्मक

प्रतिक्रिया (Response)	डदासीन	निरूत्सुक	विश्लेषणात्मक
मूल्य (Value)	मान्य	मूल्य का महत्व स्वीकार	समर्पित

दिए गए संकेतक शिक्षक की कई तरह से मदद कर सकते हैं जैसेः—

- सीखने की निरन्तरता को ध्यान में रखते हुए बच्चों के सीखने की बेहतर समझ और उसे केन्द्र में रखना।
- पर्यवेक्षण, अधिगम और प्रगति को रिपोर्ट करने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करते हैं।
- अभिभावकों, बच्चों और कई दूसरों के लिए बच्चों की प्रगति को आसान तरीके से समझने के लिए संदर्भ बिंदु की तरह कार्य करते हैं।

इन संकेतकों के आधार पर गुणात्मक टिप्पणियाँ भी तैयार की जा सकती हैं — बच्चों द्वारा किए गए कार्य के प्रति यह कितना उपयुक्त है — स्वीकार्य, महत्वपूर्ण और रूचिकर। बहुधा यह देखा जाता है कि शिक्षार्थी को 'अ' या 'ब' के द्वारा उसके उत्तर/प्रतिक्रिया को चिह्नित किया जाता है शिक्षार्थी के साथ किसी भी तरह की अंतःक्रिया किए बगैर।

दृश्यकला एवं प्रदर्शन कला में मूल्यांकन के लिए संकेतक का उपयोग

प्रत्येक बच्चे में अपने विचारों को व्यक्तिगत अभिव्यक्ति प्रदान करने की कुछ अंतर्निहित योग्यताएं होती है। अतः बच्चे की अभिव्यक्ति को मुख्य निष्कर्ष समझा जाता है। लेकिन इस दृष्टिकोण का जटिल पक्ष यह है कि बच्चों के अनुभव व विचारों की भिन्नता के कारण एक ही विषय पर की गई अभिव्यक्ति में भिन्नता देखने को मिलती है। साथ—ही शिक्षक की दृष्टि भी अलग—अलग हो सकती हैं जैसे — सौंदर्य बोध, रंग योजना और सृजनशीलता के बारे में प्रत्येक व्यक्ति का दृष्टिकोण अलग—अलग होता हैं इसी प्रकार प्रदर्शन कला में शिक्षक को अलग—अलग शैली या तरीका पसन्द आ सकता हैं जो बच्चे के आकलन को प्रभावित कर सकता है। आकलन में जटिलता तब और बढ़ जाती है जब उसमें परस्पर तुलना करने के लिए भी कोई आधार नहीं होता प्रदर्शन कला के अन्तर्गत भी प्रत्येक बच्चे का अपना तरीका, अपनी पसन्द, आदि की विशेषता होती है। अतः यहाँ हर बच्चे की उनकी सृजनात्मकता का भी विश्लेषण करते हुए उसके समग्र प्रभाव को देखा जाना चाहिए। साथ—ही उम्र के आधार पर अवलोकन, ध्यान केन्द्रन, प्रदर्शन एवं प्रस्तुति की क्षमता के साथ उसकी संलग्नता एवं रूचि को भी आकलित किया जाना चाहिए। प्राथमिक स्तर पर बच्चों का कला—कौशल कार्य के दौरान आयु अनुसार स्वभाविक रूप से बढ़ता जाएगा उसको बढ़ाने के प्रयास व उसको जाँचने पर जोर नहीं देना चाहिए नहीं तो कला कार्यों में संलग्न बच्चों का आनन्द गायब हो जाएगा।

विशेष तौर पर कलाओं के संदर्भ में कला प्रक्रिया का अत्यन्त महत्व है। बने हुए चित्र का जितना महत्व है उससे अधिक महत्व चित्र बनाने का है और उस दौरान बच्चों के मनोभाव, मनःस्थिति, अनुभूति, दृष्टिकोण, समझ, उनकी जागरूकता, कौशलों का प्रयोग, विश्लेषण का तरीका, समालोचना आदि तत्व जो कि चित्र बनाने की प्रक्रिया के दौरान

ही देखे जा सकते हैं उनका भी आकलन किया जाना चाहिए। इसी प्रकार प्रदर्शन कला के विभिन्न विधाओं के अन्तर्गत प्रदर्शन करने की प्रक्रिया के दौरान ही उसकी विशेषताओं, गुणवता का आकलन किया जा सकता है या ये कहें कि प्रदर्शन कला का अस्तित्व प्रदर्शन कला की प्रक्रिया के दौरान ही जीवन्त रूप से देखा जा सकता है। बच्चे की मनःस्थिति, मनोभाव, अनुभूति, प्रदर्शन का तरीका, शैली, प्रदर्शन में बौद्धिकता का इस्तेमाल, जागरूकता, कौशल का प्रयोग, सौन्दर्य का सृजन, कला सृजन आदि को प्रक्रिया के दौरान ही देखा जाना चाहिए। यह समझते हुए कि कला की प्रकृति के अनुसार प्रक्रिया के दौरान ही अपनी विशिष्ट एवं जीवन्तता दिखाई देती है। इसलिए कलाओं के मामले में प्रक्रिया के दौरान सतत् अवलोकन, आकलन की दृष्टि से अपेक्षाकृत और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

दृश्यकला और प्रदर्शन कला में बच्चे के सीखने के दौरान व उसके द्वारा अभिव्यक्ति के आधार पर अवलोकन करते हुए शिक्षक अधिगम के अन्य कई क्षेत्रों का आकलन भी कर सकते हैं। लेकिन यह उनकी दृष्टि पर निर्भर करेगा कि उनकी दृष्टि कितनी विकसित हुई है। मूल्यांकन के संदर्भ में व्यापक दृष्टि का निर्माण तभी हो सकता है जब शिक्षक लम्बे समय तक कला शिक्षा से जुड़े रहे एवं स्वयं के स्तर पर नियमित रूप से कला सृजन, चिंतन एवं अध्ययन करते रहे।

दृश्यकला में मूल्यांकन हेतु दो संकेतकों को चुना जा सकता हैः–

पहला मूल्यांकन संकेतक – सहभागिता

दूसरा मूल्यांकन संकेतक – अभिव्यक्ति

पहला मूल्यांकन संकेतक– सहभागिता

पहला मूल्यांकन संकेतक – सहभागिता को जानने के लिए हमें बच्चे का अवलोकन कार्य के दौरान करना होगा जिसमे देखना होगा कि बच्चा गतिविधि में शारीरिक व मानसिक रूप से जुड़ पा रहा है या नहीं। गतिविधि के दौरान बच्चों के जुड़ाव में सहभागिता के तीन स्तरों (जैसा कि टेबल संख्या–2 में दिया गया हैं) को देखा जा सकता है।

स्तर 1 – व्यस्त लेकिन अधिक ध्यान नहीं

स्तर 2 – पूरे ध्यान से

स्तर 3 – आनंदपूर्वक

आंशिक रूचि से लेकर आनन्द के साथ सहभागिता तक के इस प्रयास को शिक्षक कला कालांश में कार्य के दौरान बच्चों की गतिविधि पर यदि पैनी नजर रखें तो कार्य के सुचारू होने से समाप्त होने तक सहभागिता के उपयुक्त लक्षणों को देखा जा सकता है और अवलोकन के दौरान ही बच्चे की स्थिति को अपनी डायरी/रजिस्टर में समीक्षात्मक टिप्पणी के रूप में लिख सकते हैं।

दूसरा मूल्यांकन संकेतक– अभिव्यक्ति

विधालयों में बच्चों द्वारा अभिव्यक्ति अनुकरण से लेकर मौलिकता के मध्य कई चरणों से गुजरती है। अब देखना यह है कि इस स्तर पर बच्चा स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए मस्तिष्क में संगृहीत दृश्य कला बिम्बों को नये रूप, विचार के साथ सृजनात्मक अभिव्यक्ति करता है या पिछले कार्य शैली में कुछ नये प्रयोग करते हुए अभिव्यक्ति करता है या फिर दूसरों की कृति से प्रेरित होकर उसे हूबहू बनाने में रूचि रखता हैं। अभिव्यक्ति के विभिन्न स्तरों को ध्यान में रखते हुए मूल्यांकन किया जा सकता है–
स्तर 1 – अनुकरणात्मक
स्तर 2 – प्रयोगात्मक
स्तर 3 – अनुठा अनुपम/सृजनात्मक मौलिकता

पहला तरीका यह है कि कला कालांश के दौरान अवलोकन करते हुए पैनी नजर से अभिव्यक्ति के स्तर को जाना जा सकता है और दूसरा तरीका है कि बच्चों के कार्य पत्रक का पोर्टफोलियो तैयार करना जिसमें दिनांक के हिसाब से कार्यपत्रकों को क्रमबद्ध ढ़ंग से रखा गया हो जिससे पोर्टफोलियो देखने पर भी बच्चे के कार्य की प्रगति देखी जा सके। सृजनात्मकता को जाँचने के लिए बच्चों के चित्र पर कार्य के उपरान्त कक्षा में उसी समय बातचीत करते हुए विचार को समझा जा सकता है जिसका कार्य के संधारण के आधार पर पता नहीं लग पाता। इसी प्रकार प्रयोगात्मक अभिव्यक्ति वाले बच्चे के कार्य का पता भी अवलोकन के आधार पर ही लगाया जा सकता है। लेकिन अनुकरणात्मक अभिव्यक्ति का आकलन संधारित कृतियों के आधार पर किया जा सकता है और कार्य के दौरान अवलोकन के आधार पर भी किया जा सकता है।

प्रदर्शनकला में मूल्यांकन हेतु तीन संकेतकों को चुना जा सकता हैं:–

पहला मूल्यांकन संकेतक– सहभागिता
दूसरा मूल्यांकन संकेतक– अभिव्यक्ति
तीसरा मूल्यांकन संकेतक– प्रतिक्रिया

पहला मूल्यांकन संकेतक– सहभागिता
स्तर 1 – व्यस्त लेकिन अधिक ध्यान नहीं
स्तर 2 – पूरे ध्यान से
स्तर 3 – आनंदपूर्वक

बच्चे की सहभागिता का आकलन कक्षा कक्ष में कार्य करने के दौरान ही देखा जा सकता है। शिक्षक जब कोई गीत/कविता खुद गाकर बच्चों को भी साथ–साथ गाने के लिए कह रहे होंगे और बच्चे गा रहे होंगे, उसी समय बच्चों की उस गीत में सहभागिता को आंका जा सकता है कि बच्चे आनन्द के साथ उस गतिविधि में शामिल होकर भी आनन्द नहीं ले पा रहे हैं या फिर कुछ बच्चों को कम रूचिकर लग रही हैं। शिक्षक उसी समय बच्चों का अवलोकन करते हुए अपनी डायरी में बच्चों के लिए

टिप्पणी दर्ज कर सकते हैं। जब संगीत की दूसरी गतिविधि करवाएंगे उस समय भी शिक्षक को यही प्रक्रिया अपनानी होगी। टेप द्वारा भी संगीत सुनाकर बच्चों का अवलोकन किया जा सकता है व उसी समय बच्चे की सहभागिता को दर्ज किया जा सकता है। अगर कक्षा में बच्चे ज्यादा हैं तो आधे–आधे बच्चों को भी संगीत सुनाकर अथवा गवाकर अवलोकन किया जा सकता हैं।

दूसरा मूल्यांकन संकेतक– अभिव्यक्ति

स्तर 1 – अनुकरणात्मक

स्तर 2 – प्रयोगात्मक

स्तर 3 – अनुठा अनुपम/सृजनात्मक मौलिकता

इस बिन्दु का मूल्यांकन करने के लिए शिक्षक को प्रत्येक बच्चे का अलग–अलग सुनना होगा तभी यह जाना जा सकेगा कि सुर, लय, धुन, शब्द, भाव के प्रति बच्चे की सजगता की स्थिति किस तरह की है। बीच में शिक्षक अलग गीत गाकर भी यह जाँच कर सकते है कि बच्चा संगीत के मूल तत्वों के प्रति कितना सजग है या कुछ बदलकर गाने पर भी यह जाना जा सकता हैं।

तीसरा मूल्यांकन संकेतक– प्रतिक्रिया

प्रदर्शन कला में मूल्यांकन के इस क्षेत्र के अन्तर्गत सांगीतिक ज्ञान की समझ के क्षेत्र पर काम करना अर्थात् प्रकृति में विविध प्रकार की ध्वनियों/लय को सुनना, उनका विश्लेषण करना एवं उनमें भेद करना है। इसके अलावा संगीत सुनकर अनुभव करना उस पर सोचना, समझने की कोशिश करना, संगीत की सराहना करना एवं सुनकर प्रतिक्रिया करना शामिल है। इस क्षेत्र से सम्बन्धित स्थिति बच्चे में देखने के आधार पर उदाहरण के साथ विस्तार से टिप्पणी लिखी जानी चहिए। प्रतिक्रिया के विभिन्न स्तरों को ध्यान में रखते हुए मूल्यांकन किया जा सकता हैः–

स्तर 1 – उदासीन, निरूत्सुक

स्तर 2 – सम्बध, रूचि रखने वाला

स्तर 3 – विश्लेषणात्मक

प्रदर्शन कला की विभिन्न विधाओ (संगीत, नृत्य, रंगमंच) पर शिक्षक बच्चों से विस्तार से बातचीत कर सकते है, उन विधाओं की विशेषताओं को बताते हुए उसके सौन्दर्य पर बच्चे का ध्यान ले जा सकते है ताकि बच्चे सुनना, समझना एवं उसकी सराहना करना सीखें, विभिन्न विधा के ज्ञान की समझ के क्षेत्रों पर भी साथ–साथ काम कर सकते हैं। इस कार्य का आधार विभिन्न विधा को सुनना, देखना, समझना, करना व प्रकृति में विभिन्न विधा के विभिन्न तत्वों के उपर बच्चे का ध्यान ले जाने पर आधारित हो सकता है। इसमें शिक्षक बच्चों से विभिन्न प्रकार के प्रश्न कर सकते है जिससे उनकी प्रतिक्रिया को नोट किया जा सकें।

कला में मूल्यांकन के विभिन्न उपागमों एवं तकनीकों की समझ

कला में मूल्यांकन के लिए निम्नलिखित उपागम एवं तकनीक का उपयोग किया जा सकता हैः–

1. **अवलोकन (Observation):–** बच्चों के बारे में जानकारी प्राकृतिक परिवेश में इकट्ठी करनी चाहिए। शिक्षार्थी के बारे में कुछ सूचनाएं शिक्षक के पढ़ाने के

दौरान किए गए अवलोकन के आधार पर प्राप्त की जा सकती है। कुछ सूचनाएं विघार्थियों के पूर्व नियोजित और अर्थपूर्ण अवलोकन पर भी आधारित हो सकती हैं। अवलोकन, समय की अवधि विशेष में भिन्न–भिन्न गतिविधियों और परिवेशों में किया जाना चाहिए। अवलोकन निम्नलिखित चार तरीकों से किया जा सकता हैं–

- **सीधे/प्रत्यक्ष अवलोकन–** जब बच्चे कार्य कर रहे हो तब।
- **अप्रत्यक्ष अवलोकन–** इस तरह का अवलोकन बच्चों के द्वारा किये गए कार्यों के प्रपत्र जैसे पोर्टफोलियों, प्रदत्तकार्य, परियोजना कार्य आदि के द्वारा किया जा सकता हैं।
- **अनौपचारिक अवलोकन–** इस तरह का अवलोकन जब बच्चे कार्य कर रहे होते है तो बच्चों से बातचीत कर सकते है कि कैसे वे अपनी समझ को प्रदर्शित करेंगें। इस तरह की बातचीत में दूसरे बच्चे भी भाग लेते है इससे शिक्षक को प्रत्येक बच्चे का व्यक्तिगत अवलोकन करने का मौका मिलता है।
- **औपचारिक अवलोकन–** औपचारिक अवलोकन क्षमता आधारित होता है जिसमें मिट्टी से कुछ बनाना, लकड़ी से कुछ बनाना, अनुपयोगी वस्तुओ से कोई सामग्री बनाना आदि। इसमें प्रक्रिया व उत्पाद दोनों का अवलोकन किया जा सकता हैं।

2. **प्रदत्तकार्य (Assignments):–** कक्षा कार्य तथा गृहकार्य के रूप में विषय–वस्तु/प्रकरण (थीम) आधारित कार्य करवाए जाने चाहिए। यह खुले अंत वाले (Open Ended) (विकल्प सहित) या संरचनात्मक भी हो सकते है। पाठ्यपुस्तकों से बाहर के प्रसंगों पर भी आधारित हो सकते हैं। बहुत अधिक गृहकार्य या कक्षा कार्य नही दिया जाना चाहिए जो कि आजकल बहुत सामान्य है और प्रचलन में है। प्रदत्त कार्यों की प्रकृति इस तरह की होनी चाहिए कि विघार्थी उन्हें स्वयं कर सकें।

3. **परियोजनाएँ (Projects):–** एक सत्र में बहुत–सी परियोजनाएँ करवाई जा सकती है, आमतौर पर इन परियोजनाओं के माध्यम से आँकड़ों का संग्रह और विश्लेषण किया जाता है, थीम पर आधारित सीखने की प्रक्रिया में परियोजनाएँ महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। इनकी प्रकृति और कठिनाई कुछ इस प्रकार होनी चाहिए कि विद्यार्थी इसे स्वयं कर सकें। परियोजनाओं में प्रयुक्त सामग्री विद्यालय, आस–पड़ोस या घर से ही ली जानी चाहिए, सामग्री के लिए अभिभावकों पर अतिरिक्त आर्थिक भार नहीं डालना चाहिए।

4. **पोर्टफोलियो (Portfolio) (विद्यार्थी फाइल):–** समय की एक निश्चित अवधि में विद्यार्थी द्वारा किए गए कार्यों का संग्रह, ये रोज़मर्रा के काम भी हो सकते हैं या फिर शिक्षार्थी के कार्य के उत्कृष्ट नमूने भी हो सकते हैं। इसमें सभी तरह के कागज/विषय वस्तुओं को शामिल करने की जरूरत नहीं है अन्यथा प्रबन्ध करना मुश्किल हो जाएगा। पोर्टफोलियों में बच्चें द्वारा किए कार्य को रखने के साथ उस पर प्रतिबिंबात्मक टिप्पणियाँ कर देनी चाहिए। जिससे बाद में कभी प्रतिक्रियाओं के संबंध में निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

5. **चेक लिस्ट (Checklist)** (जाँच सूची):– किसी खास व्यवहार/क्रिया के बारे में सुव्यवस्थित तरीके से दर्ज किए गए उल्लेख किसी भी खास पहलू की तरफ

ध्यान आकर्षित करने में मदद करते हैं। चेक लिस्ट बनाते समय यदि उसमें टिप्पणी का कॉलम/स्थान रखा जाए तो वह सूचनाओं को व्यापक रूप दे सकता है। इसका उपयोग आकलन के दूसरी विधियों के साथ सहायक के रूप में किया जा सकता हैं।

6. **रेटिंग स्केल (Rating Scales) (श्रेणीबद्ध पैमाना):–** इसका इस्तेमाल विद्यार्थी के काम की गुणवता दर्ज करने और निर्धारित मानदण्डों के आधार पर गुणवता तय करने के लिए किया जा सकता हैं। समग्र रूप से तैयार रेटिंग स्केल एक अकेले काम के एक अंश का पूरा आकलन कर सकता है। अवलोकन करते समय संवेदनशील बने, समय की भिन्न–भिन्न अवधियों और अलग–अलग गतिविधियों तथा परिवेश में अवलोकन किया जाना चाहिए ताकि विकास के विभिन्न पहलुओं का आकलन किया जा सकें। इस दौरान बच्चों के अनुभव को भी नोट किया जा सकता है व उपचारात्मक टिप्पणियाँ भी दी जा सकती हैं।

7. **घटना वृत्तांत व संचयी रिकार्ड (Anecdotal records):–** इस उपागम का उपयोग बच्चे के जीवन में हुई महत्वपूर्ण घटनाओं, जिनका अवलोकन किया गया हो के वर्णनात्मक रिकार्ड प्रस्तुत करने में किया जा सकता हैं। कक्षा में घटित होन वाली बहुत रूचिकर/मजेदार घटनाओं का वर्णन इसमें किया जा सकता है। इसमें घटनाओं का वर्णन ही किया जाना चाहिए टिप्पणी देने या अपना मत रखने से बचना चाहिए।

8. **प्रदर्शन (Display):–** इसका उपयोग बच्चे द्वारा किए गए कार्यों को प्रदर्शित करने के लिए किया जा सकता हैं। कार्यों के प्रदर्शन के लिए उपयुक्त स्थान का चुनाव शिक्षक अपनी सुविधानुसार कर सकते है जहाँ पर दृश्य कला का प्रदर्शन आसानी से हो सके। प्रदर्शन कला के प्रदर्शन के लिए विद्यालय का कोई भी उपर्युक्त जगह का चुनाव किया जा सकता है। इससे बच्चे को कला का प्रदर्शन करने का मौका मिलेगा और शिक्षक इस प्रदर्शन के आधार पर मूल्यांकन कर सकतें हैं।

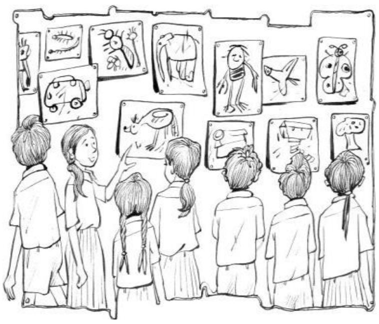

9. **साक्षात्कार (Interview):–** बच्चे के साथ साक्षात्कार करने से शिक्षक बच्चे की समझ, अनुभव, व्यवहार, रूचि, प्रेरणा और सोच की प्रक्रिया को समझ सकते हैं। बच्चे का साक्षात्कार मूल्यांकन के विभिन्न उपागम/तकनीक का उपयोग करते समय किया जा सकता है, जैसे – अवलोकन करते समय, रेटिंग स्केल भरते समय, जाँच सूची का उपयोग करते समय और स्व–मूल्यांकन करते समय। छोटे बच्चों के साथ साक्षात्कार आसान और सरल तरीके से किया जा सकता है जिसमे कठिनाई स्तर कम हो और जो इन्हें आसानी से समझ आ सकें।

गतिविधि

अपने अध्ययन केन्द्र पर निम्नलिखित प्रश्नों पर चर्चा करें:–

- ➢ मूल्यांकन से प्राप्त सूचना शिक्षक के लिए उपयोगी होता है तो वह इसका उपयोग अपने कार्यों में किस प्रकार कर सकता हैं?
- ➢ कला शिक्षा में मूल्यांकन तकनीक की कितनी उपयोगिता हैं? व्याख्या कीजिए।

- कला विधा के किसी एक विषय पर अपने कक्षा में किसी पाँच बच्चों का एक अवलोकन रिपोर्ट तैयार कीजिए।
- कला शिक्षा मूल्यांकन में प्रदर्शन तकनीक का उपयोग किस प्रकार किया जा सकता हैं? अपने अनुभव के आधार पर एक लेख तैयार कीजिए।

पोर्टफोलियो बनाना (प्रायोगिक): महत्व, रख–रखाव

पोर्टफोलियो एक तरह से सभी विधार्थियों का अलग–अलग व्यक्तिगत फाइल होता है जिसमें एक वर्ष की एक निश्चित अवधि में विधार्थी द्वारा किए गए कार्यों का संग्रह होता है। ये रोज़मर्रा के काम भी हो सकते हैं जैसे बच्चे द्वारा बनाया गया चित्र, कोलाज, वर्कशीट, आर्ट एण्ड क्राफ्ट, ओरीगेमी आदि या फिर इनमें से शिक्षार्थी द्वारा किये गये कार्य के उत्कृष्ट नमूने भी हो सकते हैं। इसमें सभी तरह के कागज/विषय वस्तुओं को शामिल करने की जरूरत नहीं है अन्यथा प्रबन्ध करना मुश्किल हो जाएगा। पोर्टफोलियों में बच्चें द्वारा किए कार्य को रखने के साथ उस पर प्रतिबिंबात्मक टिप्पणियाँ कर देनी चाहिए। जिससे बाद में कभी प्रतिक्रियाओं के संबंध में निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

पोर्टफोलियो से सभी बच्चों के रिकार्ड आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं और इस प्रकार उपलब्ध रिकार्ड से बच्चे के किसी भी कौशल या ज्ञान के विकसित होने की तस्वीर स्पष्ट होती जाती है। बच्चे इसके माध्यम से अपनी स्वयं की प्रगति और अधिगम के बारे में दूसरों को बताने में सक्षम हो सकते हैं। इसके माध्यम से बच्चे सीखने और अधिगम की प्रक्रिया के सबसे अधिक क्रियाशील सदस्य बन जाते है। पोर्टफोलियो के द्वारा शिक्षक को प्रत्येक बच्चे के अधिगम स्तर का पता आसानी से चल जाता है इस प्रकार यह शिक्षक को बच्चे के मूल्यांकन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

पोर्टफोलियो के लिए विषयवस्तु का चयन करते समय विद्यार्थियों की भागीदारी को भी प्रोत्साहित करना चाहिए साथ–ही विषयवस्तु के चयन के लिए इस्तेमाल किए गए मापदण्डों के बारे में भी सलाह लेनी चाहिए जिससे बच्चों का उस विषयवस्तु के प्रति सकारात्मक सोच विकसित हो सके। बच्चों के अधिगम स्तर के बढने के साथ–साथ पोर्टफोलियो में नयापन लाना चाहिए ताकि बच्चे का उबाऊपन का एहसास ना हो। संदर्भ के लिए विषयवस्तु पर लेबलिंग करना, उस पर प्रतिबिम्बात्मक टिप्पणी करना और उस पर संख्या डालना चाहिए ताकि सही रिकार्ड सही समय पर उपलब्ध हो सकें। पोर्टफोलियों के प्रत्येक रिकार्ड पर बच्चे के व्यवहार सम्बन्धी टिप्पणी लिखना चाहिए ताकि मूल्यांकन करते समय कोई कठिनाई ना हों और बच्चे के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकाल सके।

अभ्यास प्रश्न –

1. बच्चों का पोर्टफोलियो बनाना मूल्यांकन के लिए किस प्रकार उपयोगी होता है इस पर अपनी कक्षानुभव के आधार पर एक लेख तैयार कीजिए।

समेकन

बच्चों का आकलन, उन्होंने क्या ज्ञान अर्जित किया – स्कूल में लंबा समय बिताने के बाद होना चाहिए, न कि सालाना आधार पर। इससे बच्चों की सीखने की गति के प्रति अधिक सम्मान का भाव पैदा होगा। न्यूनतम अधिगम स्तर जैसी योजनाओं ने न केवल साल के अंत में आने वाले नतीजों के सख्त पालन पर जोर दिया बल्कि नतीजों को पाठ आधारित और संकीर्ण बना दिया है। पाठ्यचर्या की विशेषताओं का व्याख्या करते समय अगर शिक्षण विधि और आकलन को विभिन्न चरणों में देखा जाए तो पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों व सीखने की सामग्री के साथ जोड़ा जा सकता हैं तथा शिक्षक बच्चों के विकास की ऐसी योजना बना सकते हैं जो क्रमशः उनकी क्षमताओं, दक्षताओं व अवधारणाओं को पुख्ता बनाएगी।

प्रदत्त कार्य

1. अपने विद्यालय में एक चित्रकला प्रतियोगिता का आयोजन करें तथा बच्चों द्वारा बनायें गये चित्रों की प्रदर्शनी लगायें। बच्चों द्वारा बनायें गये चित्रों का आकलन आप किन–किन मापदण्ड़ों पर करेंगे और कैसे करेंगे एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।
2. किसी एक कला विधा में बच्चों के मूल्यांकन हेतु एक पोर्टफोलियों का निर्माण कीजिए। तथा यह भी बताइये कि इसकी मदद से कला में मूल्यांकन कितना प्रभावी हो सकता हैं।
3. आप अपने किसी एक कक्षा में संकेतको के आधार पर प्रदर्शनकला व दृश्यकला का मूल्यांकन कीजिए और पता लगाइए की क्या यह आपके लिए बच्चों के अधिगम स्तर के बारे में कोई जानकारी दे पाता है या नहीं इस पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

अभ्यास प्रश्न –

आप अपनी कक्षा के बच्चों का प्रदर्शन कला के किसी एक विधा में मूल्यांकन संकेतकों के आधार पर कीजिए और पता लगाइए की बच्चों के सीखने का स्तर क्या हैं इस पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

सन्दर्भ पुस्तकें और पाठ्यसामग्री

- शिक्षा का वाहन कला– देवी प्रसाद
- कला, संगीत, नृत्य एवं रंगमंच – राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 का आधार पत्र
- लर्निंग थ्रू आर्ट (Learning Through Art) – जेन साही
- लर्निंग थ्रू थिएटर (Learning Through Theatre) – टोनी जैकब
- शिक्षा में सृजनात्मक नाटक एवं कठपुतली नर्तन
- द मीनिंग ऑफ आर्ट – हर्बर्ट रीड
- आर्ट एज़ एक्सपीरियंस – जॉन डीवी
- Source Book on assessment for class I – V - NCERT 2008
- सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन स्त्रोत पुस्तिका
- बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2008 का आधार पत्र
- NCF 2005 Position Paper – Arts, Music, Dance and Theatre
- NCF 2005 Position Paper – Heritage of Handicrafts
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 का आधार पत्र

चित्रों के स्रोतः

- http://www.bihartourism.gov.in/art.html
- http://1001indian-handicrafts.blogspot.in/2008/02/jadupatua-paintings.html
- http://biharheritage.blogspot.in/2013/04/the-wonderful-thangka.html
- http://www.manjushaart.in/manjusha-art
- http://www.culturopedia.com/Painting/folkpainting.html
- http://biharheritage.blogspot.in/2013/03/sujani-primitive-handicraft-of-bihar.htm
- *http://www.craftandartisans.com/sikki-goldengrass-craft.html*

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (एस.सी.ई.आर.टी.),
महेन्द्रू, पटना, बिहार – 800 006